॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२१

महाकविभासप्रणीतं

स्वप्नवासवदत्तम्

'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—
आचार्य श्रीशेषराजशर्मा रेग्मीः
भूतपूर्व-प्राध्यापकः—
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,
वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

२१

महाकविभासप्रणीतं

स्वप्नवासवदत्तम्

'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

आचार्य श्रीशेषराजशर्मा रेग्मीः

भूतपूर्व-प्राध्यापकः—

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,

वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पोस्ट बाक्स नं० १२९

वाराणसी–२२१००१

तृतीय संस्करण १९८१

मूल्य ८–००

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),

पो० बाक्स नं० ६९

वाराणसी–२२१००१

मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

21



SWAPNAVĀSAVADATTAM

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited with

'CANDRAKALĀ' SANSKṚT-HINDĪ COMMENTARIES.

By

Acharya Shesharaj Sharma 'Regmi'

Former Professor

Banaras Hindu University, Tribhuvan University and Valmiki Sanskrit Mahavidyalaya, Nepal



CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

(Oriental Booksellers & Publishers)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 129
VARANASI 221001

Third Edition
1981
Price Rs. 8-00

Also can be had of
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(Oriental Booksellers & Publishers)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 69
VARANASI 221001

भूमिका

दृश्यकाव्यकार भास और उनके दृश्य-काव्य

कविवर भास संस्कृतके दृश्यकाव्योंमें संभवतः सर्वप्राचीन हैं। उनका इस क्षेत्रमें अनुपम स्थान है। कुछ वर्षोंसे पूर्व विद्वद्गण भासकी कृति स्वप्नवासवदत्तके और उनके नाममात्रसे परिचित थे। वह भी भासके परवर्ती महाकवि कालिदास, बाणभट्ट, वाक्पतिराज और जयदेव आदि विद्वानोंके उद्धरणोंसे भाससे तथा उनकी कृति स्वप्नवासवदत्तसे भी नाममात्रसे परिचित थे। इतनेसे ही भासका स्मरण किया जाता था। संस्कृत-साहित्यके अनुशीलन करनेवाले सहृदयोंके सौभाग्यसे विक्रम संवत्सर १९६६ से लेकर १९६९ के बीचमें म० म० गणपतिशास्त्रीकी चेष्टासे ट्रावन्कोर राज्यमें तञ्जौर पुस्तकालयसे केरललिपिमें १३ रूपकोंकी जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं और उन्होंने उन्हें प्रकाशित किया। तबसे भास और उनकी कृतियाँ संस्कृत-साहित्यमें चर्चाकी आधार हुईं। उन तेरहों रचनाओंमें उनके कर्ताके नाम नहीं थे परन्तु उन रचनाओंमें अन्यतम रचना स्वप्नवासवदत्त नाटकको अभिनवगुप्तने भासकी कृति मानी है, और राजशेखरकी—

'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥"

अर्थात् परीक्षकोंने भासके नाटकोंकी परीक्षाके लिए उन्हें अग्निमें डाल दिया, और तो जल गये परन्तु अग्निदेव स्वप्नवासवदत्तको नहीं जला सके। यह उक्ति भी उसमें प्रमाण है, इस तरह अन्य रूपकोंमें स्वप्नवासवदत्तकी रचनाके सादृश्यसे "तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते" इस उक्तिके अनुसार एककर्तृकताकी प्रतीति होनेसे पूर्वोक्त तेरह ही रूपक भासके हैं ऐसा माना गया।

भासनिर्मित रूपकोंके नाम हैं—१. प्रतिमानाटक, २. अभिषेकनाटक, ३. बालचरित, ४. उरुभङ्ग, ५. दूतघटोत्कच, ६. दूतवाक्य, ७. कर्णभार, ८. मध्यमव्यायोग, ९. पञ्चरात्र, १०. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ११. स्वप्नवासवदत्त, १२. अविमारक और १३. चारुदत्त।

भासके पूर्वोक्त रूपक उपजीव्य कथानकोंके अनुसार चार भागोंमें बाँटे जा सकते हैं।

१. रामायणमूलक रूपक—प्रतिमानाटक और अभिषेक ये दो माने गये हैं।

२. कृष्णकथामूलक रूपक—बालचरित, एकमात्र यही प्रसिद्ध है।

३. महाभारतमूलक—उरुभङ्ग, दूतघटोत्कच, दूतवाक्य, कर्णभार, मध्यमव्यायोग और पञ्चरात्र ये छः रूपक प्रख्यात हैं।

४. बृहत्कथामूलक—अर्थात् गुणाढ्यनिर्मित बृहत्कथाके कथानकके आधारपर प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त, अविमारक और चारुदत्त ये चार प्रसिद्ध हैं।

अब इन तेरहों रूपकोंके संक्षिप्त कथानक लिखे जाते हैं।

(१) प्रतिमा नाटक—

इसमें कुल सात अङ्क हैं। रामकी वनयात्रासे लेकर रावणके वधतककी घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। रामकी विरहव्यथासे निपीडित महाराज दशरथकी मृत्युके अनन्तर रघुवंशके देवमन्दिरमें उनकी भी मूर्ति रक्खी गई है। ननिहालसे लौटे हुए भरतने उक्त देवमन्दिरमें पितामह आदियोंके साथ पिता दशरथकी भी प्रतिमाको देखकर उनकी मृत्युको जाना। इसी प्रतिमाको लेकर नाटकका नाम "प्रतिमा नाटक" रक्खा गया है। इसमें रङ्गभूमिमें राजा दशरथकी मृत्युका प्रदर्शन किया है जो कि नाट्यशास्त्रके विरुद्ध है।

(२) अभिषेक नाटक—

इसमें छः अङ्क हैं। अभिषेक नाटकमें किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्डमें स्थित रामचन्द्रजीका चरित्र दिखाया गया है। लङ्कासे अयोध्यामें रामचन्द्रजीके आगमनके अनन्तर देवताओंने उनका राज्याऽभिषेक किया। इस प्रकार नाटकका "अभिषेक" नाम अन्वर्थ है। भासने रङ्गमञ्चमें वालीका वध दिखलाकर साहित्यपरम्पराका अतिक्रमण किया है।

(३) बालचरित—

कृष्णकथामूलक बालचरित नाटकमें पाँच अङ्क हैं। भगवान् श्रीकृष्णके जन्मदिवससे लेकर कंसवध तकका चरित इसमें वर्णित है। इसमें भी रङ्गस्थलमें युद्ध और कंसवधका दृश्य दिखाकर परम्पराका उल्लङ्घन किया गया है।

(४) पञ्चरात्र—

इस रूपकमें तीन अङ्क हैं। महाभारतके पात्रोंको लेकर इसकी रचना हुई है। दुर्योधन यज्ञ करता है, यज्ञके अन्तमें वह दक्षिणाके तौरपर द्रोणाचार्यको उनकी चाही हुई किसी भी वस्तुको देनेके लिए तत्पर होता है। तब द्रोणाचार्यने पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिए अपनी इच्छा जताई। अनन्तर शकुनिके परामर्शके अनुसार दुर्योधन पाँच रातोंके भीतर पाण्डवोंका समाचार लानेपर उन्हें आधा राज्य देनेके लिए सहमत होता है। इस बीचमें विराटके नगरसे आनेवाले दूतसे बलशाली सौ कीचकोंके वधका समाचार सुनकर "ऐसा कर्म भीमसेनके सिवाय और कोई भी नहीं कर सकता है" ऐसा विचार कर विराटनगरमें पाण्डवोंका पता लगनेकी संभावना कर भीष्मकी प्रेरणासे द्रोणाचार्यने दुर्योधनकी शर्तको मन्जूर किया। यज्ञमें न आनेके अपराधके बहानेसे विराटकी गायोंको हरण करनेके लिए भीष्म, द्रोण और दुर्योधन आदिने विराटके नगरमें प्रस्थान किया। गायोंको हरण करनेमें तत्पर होनेवाले उन लोगोंको बृहन्नलाके छद्मवेश

लेनेवाले अर्जुनने जीत लिया, निरुपाय होकर वे लोग भाग गये। अनन्तर अज्ञात वेशसे रहनेवाले पाण्डवोंको पहचानकर विराट उन लोगोंका सत्कार कर अर्जुनको अपनी पुत्री उत्तराको देनेके लिए उद्यत हुए। अर्जुनने उत्तराको अपने पुत्र अभिमन्युके लिए मन्जूर किया। तब युधिष्ठिरने उत्तरा और अभिमन्युके विवाहकी सूचना देनेके लिए विराटके पुत्र उत्तरको पितामह भीष्मके पास भेजा। इस प्रकार पाँच रातोंके भीतर पाण्डवोंका समाचार पाकर दुर्योधनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पाण्डवोंको आधा राज्य दे दिया। यह कथा कविकी कल्पनासे विजृम्भित है।

(५) मध्यमव्यायोग—

यह भी एकाङ्की है। इसमें पाण्डवोंके वनवाससमयमें भीमसेनके घटोत्कचसे एक वृद्ध ब्राह्मणके मध्यम पुत्रको छुड़ानेकी कथा है। मध्यम शब्द भीमसेन और ब्राह्मणके मध्यम पुत्रका बोधक है। इसका कथानक महाभारतके अनुसार नहीं है।

(६) दूतवाक्य—

यह एकाङ्की है। इसमें पाण्डवों और कौरवोंके संग्रामसे पहले श्रीकृष्णने पाण्डव-पक्ष लेकर दुर्योधनकी सभामें जो दौत्य किया था उसका वर्णन है। इसमें प्राकृत भाषाका प्रयोग नहीं किया गया है।

(७) दूतघटोत्कच—

एकाङ्की इस रूपकमें महाभारतके युद्धमें जब बहुतसे कौरवपक्षके वीरोंने अन्यायपूर्वक अर्जुनपुत्र अभिमन्युको मार डाला। तब श्रीकृष्णसे प्रेरित भीमसेनका पुत्र घटोत्कच दुर्योधन-की सभामें पाण्डवोंका दूत होकर पहुँचा। दुर्योधनने कहा—कृष्णको मेरा सन्देश कह दो कि "आप पाण्डवोंका पक्ष ले लें, मैं बाणोंसे आपको उत्तर दूँगा। कविने अपनी कल्पनासे ही इस अपूर्व रूपककी अवतारणा की है।

(८) उरुभङ्ग—

उरुभङ्ग भी एकाङ्की रूपक है। इसमें भीमसेनने गदायुद्धमें जो दुर्योधनके ऊरुका भङ्ग करके मार डाला था उसका वर्णन है। इसमें भी साहित्यपरम्पराका उल्लङ्घन है।

(९) कर्णभार—

कर्णभारमें एक ही अंक है। इसमें छलसे ब्राह्मणका वेश लेनेवाले इन्द्रको कर्णके अपने कवच और कुण्डलोंको देनेका वर्णन है।

(१०) अविमारक—

यह छः अङ्कोंका नाटक है। बृहत्कथाकी एक कथाके आधारपर इसकी रचना हुई है। चण्डभार्गव नामके अत्यन्त क्रोधी एक महर्षिके साल भर रहनेवाले शापसे पुत्र और पत्नीके साथ श्वपाकभावको प्राप्त सौवीरराज, कुन्तिभोजके नगरमें प्रच्छन्न रूपसे रहते थे। उनके पुत्र विष्णुसेनने अवि (भेड़) के रूप लेनेवाले एक दैत्यको मारनेसे "अविमारक"

ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की। अपने मामा कुन्तिभोजकी पुत्री कुरङ्गीको विष्णुसेनने मदोन्मत्त हाथीसे बचाया। इस प्रकार इस नाटकमें उन दोनोंका परिणय आदि वृत्तान्त वर्णित है।

(११) चारुदत्त—

इस रूपकमें चार अङ्क हैं। इसमें किसी व्यापारीके पुत्र चारुदत्तनामक एक उदार-प्रकृतिवाले ब्राह्मणका उज्जयिनीकी वसन्तसेना नामकी एक प्रसिद्ध सुन्दरी वेश्याके साथ प्रणयकी कथा है। मृच्छकटिकका उपजीव्य ग्रन्थ इसे ही मानते हैं। इस रूपककी जबतक प्राप्ति नहीं हुई थी तबतक संस्कृत-साहित्यमें शूद्रकप्रणीत मृच्छकटिकको प्रथम रूपक ग्रन्थ माना जाता था।

(१२) प्रतिज्ञायौगन्धरायण—

यह चार अङ्कोंवाला रूपक है। इसमें वर्णित घटना स्वप्नवासवदत्तकी घटनासे पहले घटित हुई थी। उज्जयिनीके राजा प्रद्योतने वत्सराज उदयनका अपनी पुत्री वासवदत्ताके साथ विवाह करानेके लिए छलसे आखेटके प्रसङ्गमें उनको पकड़कर बन्दी बनाया। राजा प्रद्योतने वासवदत्ताको वीणा सिखानेके लिए उदयनको अन्तःपुरमें रक्खा। यह छल जानकर वत्स-राजके मन्त्री यौगन्धरायणने अपने स्वामीको छुड़ानेके लिए प्रतिज्ञा की। इसीसे इस रूपकका नाम "प्रतिज्ञा" वा "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" रक्खा गया है। यौगन्धरायणने बड़े कौशलसे स्वयम् बद्ध होकर वासवदत्ताके साथ उदयनको वत्सराजमें पहुँचाया, इत्यादि घटनाएँ इसमें गुम्फित है। भासने इसे "प्रकरण" कहा है, अतः इसमें दश अङ्क अपेक्षित थे, परन्तु अभी चार ही अङ्क उपलब्ध हैं।

(१३) स्वप्नवासवदत्त—

यह छः अङ्कोंका नाटक है। कविवर्य भासके रूपकोंमें यह श्रेष्ठ माना जाता है। कथानककी दृष्टिसे यह प्रतिज्ञायौगन्धरायणका अवशिष्ट भाग है।

उज्जयिनीसे प्रद्योतकुमारी वासवदत्ताको हरण कर अपने राज्य वत्सराज्यमें लानेके अनन्तर राजा उदयन उनमें अतिशय आसक्त होकर राजकार्यमें गाफिल हो जाते हैं। फलस्वरूप वत्सराज्यका अधिक भाग उनका शत्रु आरुणि हर लेता है। तब उसको लौटानेके लिए मन्त्री यौगन्धरायणने मगधराजकी पुत्री पद्मावतीके साथ उदयनका विवाह करानेके लिए उपाय सोचा। राजा उदयनके शिकार खेलनेके लिए वनमें जानेपर यौगन्धरायणने रानी वासवदत्ताको मनाकर अपना तथा वासवदत्ताके अग्निमें जलकर मरनेकी वार्ता फैलाई। अनन्तर उन्होंने स्वयम् ब्राह्मणका वेश धारण किया, वासवदत्ताको अपनी बहन आवन्तिका बनाकर उन्हें राजकुमारी पद्मावतीके पास न्यास (धरोहर) की तौरपर रक्खा। तब उनके कौशलसे पद्मावतीके साथ राजा उदयनका विवाह हुआ। परन्तु विवाहके अनन्तर भी राजा पूर्वपत्नी वासवदत्ताको नहीं भूल सके। पतिके प्रणयको न पानेसे पद्मावतीको शिरोवेदना होती है। उनकी स्वस्थताकी खबर पाकर राजा

उदयन समुद्रगृहमें गये। वहाँ उनको न देखकर राजा उनकी शय्यामें सो गये। पद्मावती-की शिरोवेदनाका समाचार पाकर वासवदत्ता भी वहीं जाती है और सोये हुए राजाको पद्मावती समझकर शय्याके एक भागमें बैठ जाती है। राजा स्वप्नमें वासवदत्ताका नाम लेते हैं। तब वासवदत्ताको राजाकी प्रतीति होती है। वे लटके हुए राजाके हाथको शय्यामें रख देती है। राजा उदयन वासवदत्ताके स्पर्शसे उन्हें पहचान कर पकड़नेका उद्योत करते हैं; इसी बीचमें वासवदत्ता उनका हाथ छुड़ाकर भाग जाती है। इस बीचमें राजा उदयनके मन्त्री रुमण्वान् आरुणिको परास्त कर राजाका छीना हुआ राज्य लौटाते हैं। अनन्तर महासेन प्रद्योतके यहाँसे वासवदत्ताकी धात्री वसुन्धरा और कञ्चुकी उनका सन्देश और वासवदत्ता और उदयनके विवाहका चित्र ले आते हैं। पद्मावती वासवदत्ताका चित्र देखकर राजासे "ऐसी ही सूरत की स्त्री मेरे पास है" ऐसा कहती है और राजाके अनुरोधसे अवन्तिकाको बुलाती है। यौगन्धरायण भी उसी समय ब्राह्मण का छद्मवेश धारण कर बहनको लेनेके लिए आ जाते हैं। वासवदत्ताको देखकर धात्री वसुन्धरा पहचानती है और यौगन्धरायण भी राजाको सब वृत्तान्त बतलाते हैं। सब रहस्य खुल जाता है। मङ्गलमय परिणामसे सब प्रसन्न होते हैं। राजा सपरिवार उज्जयिनीमें प्रद्योतके पास जानेके लिए उद्यत होते हैं। यह नाटक भासके समस्त रूपकोंमें सबसे प्रख्यात और श्रेष्ठ रचना है। इसमें भी नाट्यनियमके विरुद्ध राजा उदयनके शयनका दृश्य दिखाया गया है।

इन तेरह रूपकोंके अतिरिक्त एक "यज्ञफल" नामका नाटक उपलब्ध हुआ है इसमें भासकी रचनाशैली परिलक्षित होती है। इसको भासकी रचना कहकर कुछ विद्वान् मानते हैं। इसमें पुत्रकी उत्पत्तिके लिये राजा दशरथके यज्ञका अनुष्ठान करनेका वर्णन है। इसमें सात अङ्क हैं।

भासकी लोकप्रियता और उनका समय

भासका सर्वप्रथम उल्लेख महाकवि कालिदास अपने मालविकाग्निमित्र नामके नाटककी प्रस्तावनामें सौमिल्लक और कविपुत्र नामके नाटककारोंके साथ किया है।

कविवर बाणभट्ट हर्षचरितमें लिखते हैं—

"सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥" (१-१६)

कविवर वाक्पतिराज अपने "गउडवहो" महाकाव्यमें लिखते हैं—

"भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहा वि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारिअन्देअ आणन्दो ॥"

स्वप्नवासवदत्तमें वासवदत्ताके अग्निदाहका विचित्र चित्रण करनेसे वाक्पतिराज भासको "ज्वलनमित्र" शब्दसे निर्देश करते हैं।

कविश्रेष्ठ दण्डी अपनी अवन्तिसुन्दरीकथामें लिखते हैं—

"सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥"

कविराज राजशेखर लिखते हैं—

"भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥"

अर्थात् परीक्षकोंने भासके सब रूपकोंको परीक्षा करनेके लिए अग्निमें डाल दिया और तो जल गये परन्तु स्वप्नवासवदत्तको अग्नि जला नहीं सके। स्वप्नवासवदत्त नामका नाटक परीक्षाग्निमें खरा (निर्दोष) उतरा यह तात्पर्य है।

उसी तरह कविशेखर राजशेखर अपने कविविमर्श नामके ग्रन्थमें (जो कि आजकल उपलब्ध नहीं है) लिखते हैं—

"भासो रामिलसोमलौ, वररुचिः, श्रीसाहसाङ्कः कवि-
र्मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः, स्कन्दः, सुबन्धुश्च यः ।
दण्डी, बाणदिवाकरौ, गणपतिः, कान्तश्च, रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वे वयम् ॥"

इस पद्यमें उल्लिखित सब कवियोंमें पूर्वनिर्देश कविवर भासका ही किया गया है।

इसी तरह नाटककार अलङ्कारिक कवि जयदेव अपने नाटक "प्रसन्नराघव" में—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः, कर्णपूरो मयूरो
भासोः हासः, कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः, पञ्चबाणस्तु बाणः,
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ (१-२२)

इसमें कविवर भासको कविताकामिनीके हासके रूपमें चित्रित किया है। स्थाली-पुलाकन्यायसे हमने संस्कृत-साहित्यके नामी गरामी प्रतिष्ठित कुछ विद्वानोंसे की गई भासकी प्रशस्तियोंका निदर्शन प्रस्तुत किया है। महाकवि कालिदासके समान भासके विषयमें भी अनेकों किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। भास ही धावक अर्थात् धोबी थे उन्होंने स्थाण्वीश्वराऽधीश हर्षवर्द्धनको स्वकृति नागानन्द देकर प्रचुर धनलाभ किया था ऐसी भी जनश्रुति है। भास ही घटकर्पर हैं जो कि विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें अन्यतम थे यह भी किसीका कहना है। किंवदन्तीपर निर्भर न होकर ऐतिहासिक ढङ्गसे विश्लेषण करनेपर कालिदासके ही ग्रन्थके आधारपर भास कवि कालिदासके पूर्ववर्ती हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पूर्वोक्त भासके बाणभट्ट आदि जितने भी प्रशंसक हैं वे सब कालिदासके पीछे हुए हैं इसमें भी किसीको आपत्ति नहीं हो सकती है। कालिदास विक्रमादित्यके

नवरत्नोंमें अन्यतम रत्न और सभाकवि थे यह बात न किंवदन्तीमात्रसे उनके विक्रमोर्वशीय त्रोटकमें सूत्रधारके नटीके प्रति कथित—

"आर्ये ! रसभावदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्याऽभिरूपभूयिष्ठा परिषत्, अस्यां च कालिदासग्रथितवस्तुना नवेनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः"।

इस वाक्यसे भी प्रमाणित होती है। विक्रमादित्य नवसंवत्सरके प्रतिष्ठापक और खृष्टसे ५७ वर्ष पूर्ववर्ती थे।

इसी तरह कालिदासके मालविकाग्निमित्रके—

"आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां
संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाऽग्निमित्रे।"

अर्थात् "राजा अग्निमित्रके संरक्षकत्वमें प्रजाओंका ईति (अतिवृष्टि और अनावृष्टि-आदि) का भय नहीं होगा" ऐसी आशा की जाती है। इस भरतवाक्यमें "अग्निमित्रे गोप्तरि" इस भावलक्षण सप्तमीके प्रयोगसे जाना जाता है कि कालिदासके समयमें राजा अग्निमित्र जीवित थे। ये अग्निमित्र शुङ्गवंशज पुष्यमित्रके पुत्र थे और इनका काल खृष्टसे पूर्व प्रथम शताब्दी है यह ज्ञातव्य है। इस बातका दूसरा साक्ष्य (गवाही)—

"संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम्।
चलणेण विक्कमाइत्तचरिअं अणुसिक्खिअं तिस्सा॥"

संस्कृतच्छाया—

"संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लाक्षाम्।
चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः॥"

सातवाहनकी प्राकृतभाषामयी गाथासप्तशतीकी यह गाथा दे रही है। इसमें विक्रमादित्यकी चर्चा है। सातवाहनवंशोद्भव हालने ७८ ई० पूर्वके लगभग राज्य किया था। इससे यह बात पूर्णरूपसे प्रमाणित होती है कि कालिदास विक्रमके आश्रित थे और वे खृष्टसे पूर्ववर्ती थे।

कालिदासके पूर्वोक्त मालविकाग्निमित्र नाटकके सूत्रधारके वाक्यसे भास कालिदाससे प्राचीन हैं इस तथ्यसे यह बात सिद्ध हुई कि भास विक्रमके प्रथमशतकसे पूर्ववर्ती हैं।

कौटलीय अर्थशास्त्रमें सैनिकोंको युद्धमें अग्रसर करनेके लिए राजाकी उक्तिमें ऐसे वचन उपलब्ध होते हैं—

"तुल्यवेतनोऽस्मि, भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यम्। मयाऽभिहितः परोऽभिहन्तव्य इति। वेदेष्वप्यनुश्रूयते "समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु सा ते गतिर्या शूराणा"मिति। अपीह श्लोकौ भवतः—

यान् यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति ।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः ॥ १ ॥
नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥ २ ॥ (४-२) ।

इस सन्दर्भमें जो दूसरा श्लोक है वह भासके प्रतिज्ञायौगन्धरायणसे उद्धृत है। इससे प्रतीत होता है कि भास कौटिल्यसे पहले हुए हैं। कौटिल्यका काल विद्वानोंने विक्रमसे ४५७ वर्ष पूर्व माना है। फलतः नाटककार भास विक्रमसे ४५७ वर्ष पूर्वके कौटिल्यसे भी पूर्ववर्ती हैं, इसमें कुछ भी सन्देह करनेकी गुञ्जाइश नहीं है। किं बहुना—भासने अर्थशास्त्रमें कौटिल्यका नाम न लेकर "बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्" ऐसा लिखा है। योगशास्त्रमें पतञ्जलिका नाम न लेकर "माहेश्वरं योगशास्त्रम्" ऐसा लिखा है इससे वे (भास) कौटिल्य और पतञ्जलिसे भी पूववर्ती हैं यह निर्विवाद है।

इसी तरह भरतकृत नाट्यशास्त्रकी आलङ्कारिक मान्यताओंका बहुतसे स्थलोंपर उल्लङ्घन देखनेके उदाहरण—जैसे भरतने "आर्यपुत्र" पदका प्रयोग पत्नीसे पतिके लिए कराया है, परन्तु भासने "राजाके लिए इस पदका प्रयोग किया है अतः भास भरतसे पूर्ववर्ती हैं। भासके ग्रन्थोंमें पाणिनीय मतके प्रतिकूल बहुतसे प्रयोगोंको देखनेसे वे पाणिनिके भी पूर्ववर्ती हैं यह भी माना जा सकता है। भासके पद्योंमें श्लोक छन्दकी प्रचुरता है, यह भी उनकी प्राचीनताका प्रमापक है।

भासने चौबीस रूपकोंका प्रणयन किया था ऐसी प्रसिद्धि है, परन्तु कालकी गतिसे अभीतक तेरह ही रूपक उपलब्ध हैं। वे भी सभी उनके हैं इस विषयमें भी विद्वानोंका बहुत मतभेद है।

उनके ग्रन्थोंसे जो उद्धरण जगह जगहपर मिलते हैं वे भी उनके मूलग्रन्थोंमें नहीं मिल रहे हैं। लिपिकर्ताकी त्रुटि ही शायद इसका हेतु है। कविवर भास वेद आदि शास्त्रोंमें निष्णात कर्मनिष्ठ ब्राह्मणवंशके अवतंसरूप प्रतीत होते हैं। उनकी रचनाओंसे जाना जाता है कि बहुत देशोंमें उन्होंने पर्यटन किया था। वे अपूर्व प्रतिभाके धनी थे यह बात निर्विवाद है। "हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्" ऐसी इनकी उक्तिसे अनुमान किया जाता है कि ये उत्तरभारतके रहनेवाले थे। उज्जयिनीकी चर्चा इनकी रचनामें अधिक देखनेसे संभव है कि ये उज्जयिनीके निवासी हों।

भासकी रचनामें अनेक रसोंका परिपाक देखा जाता है अतः वे कालिदास और भवभूतिसे भी इस विषयमें बढ़े चढ़े थे यह भी मानना पड़ता है। स्वाभाविकतापूर्वक अन्तर्जगत्‌के चित्रणमें ये कालिदाससे भी अधिक प्रवीण हैं यह विदित होता है।

मैं यहाँपर भास और कालिदासकी रचनाओंमें कुछ सादृश्यस्थलोंकी अवतारणा करने जा रहा हूँ, जिनसे प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास ऐसे विश्वविश्रुत कलाकारने भी बहुत जगहोंपर भासकी रचनाओंका अनुकरण किया है।

स्वप्नवासवदत्तमें भासने यौगन्धरायणसे कहलवाया है—

"पूर्वं त्वयाऽप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः॥ (स्वप्न० १-४)।

कालिदास मेघदूतमें यक्षसे कहलवाते हैं—

"नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवाऽवलम्बे
तत्कल्याणि ! त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्याऽत्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥ (मेघ० उत्तर० ४६)।

भासके प्रतिमा नाटकके—सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम"

इस वाक्यको महाकवि कालिदासने—

"'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाऽऽकृतीनाम्" (१-१७)।

इस वाक्यसे अभिज्ञान शाकुन्तलमें अर्थान्तरन्याससे अलंकृत कर दिया है।

अभिषे ..नाटकस्थित भासके—

"यस्यां न प्रियमण्डनाऽपि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान् न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात्।
वीजन्तो मलयाऽनिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमा
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम्॥" (३-१)।

इसी वचनका महाकवि कालिदासने शाकुन्तलमें—

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति पयो युष्मास्वपीतेषु या,
नाऽऽदत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥" (४-८)।

इस प्रकारसे अनुकरण किया है।

कविवरेण्य भासने बालचरितमें कंसके कारागृहमें वसुदेवको बालकपुत्रको अर्पण करनेके अवसरमें देवकीके मुखसे कहलवाया है—

"हृदयेनेह तत्राऽङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता"॥ (१-१२)।

महाकवि कालिदासने इसके अनुकरणमें शकुन्तलाको छोड़कर जाते हुए दुष्यन्तके मुखसे कहलाया है—

"गच्छति पुरः शरीरं, धावति पश्चादसंस्थितं चेतः।
चीनांऽशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥" (१-३०)।

कविवर भासने स्वप्नवासवदत्तमें ब्रह्मचारीके मुखसे वनको "यह तपोवन है" कहकर इस प्रकार निश्चय कराया है—

"विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥" (१-१२)

महाकवि कालिदासने इसका कैसे अनुहरण किया है—

"नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः"
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः॥ (अभि० १-१६)।

स्वप्नवासवदत्तमें कविवर भासने काञ्चुकीयके मुखसे संभपकको कहलवाया है—

"संभपक! न खलु न खलूत्सारणा कार्या, पश्य—"
"परिहरतु भवान्नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्।
नगरपरिभवान्विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति॥" (१-४)।

इसी तरह अभिज्ञानशाकुन्तलमें दुष्यन्तके मुखसे सेनापति को कहलवाया है—

"तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति, तथा निषेद्धव्याः। पश्य"—

"शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति॥" (२-७)।

कैसा सादृश्य है? परन्तु भासमें स्वाभाविकताका विकास है, कालिदासमें काव्यशिल्पका विकास है।

स्वप्नवासवदत्तमें भासने वासवदत्ताका घोषवती नामकी वीणाको पानेपर राजा उदयनसे उसे उपालम्भ दिलाया है—

"श्रुतिसुखनिनदे! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम्॥" (६-१)।

"अस्निग्धाऽसि घोषवति ! या तपस्विन्या स्मरसि—
श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥"
(६-२)।

इसी तरह महाकवि कालिदासने खोई हुई अँगूठीको पानेपर राजा दुष्यन्तके मुखसे उसे उलाहना दिखाया है—

तव सुचरितमङ्गुलीय ! नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन ।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु ॥ (अभि० ६-११)।
कथं नु तं बन्धुरकोमलाऽङ्गुलिं करं विहायाऽसि निमग्नमम्भसि ?
अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ? ॥" (६-१३)।

स्त्रियोंके पतिके सहगमनका वर्णन भासने इस प्रकारसे किया है—

"अनुचरति शशाऽङ्कं राहुदोषेऽपि तारा,
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं,
व्रजतु चरतु धर्मं, भर्तृनाथा हि नार्यः ॥" (प्रतिमा १-२५)।

कालिदासने इसका अनुकरण इस प्रकारसे किया है—

"शशिना सह याति कौमुदी, सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥"
(कुमारसम्भवम् ४-३३)

कहना नहीं पड़ेगा, यहाँपर कालिदाससे भासका ही उत्कर्ष देखा जाता है। भासकी रचनाओंके साथ कालिदासकी रचनाओंकी कैसी सदृशता है ? परन्तु अधिक अंशोंमें पूर्व कविमें स्वाभाविकताका प्रस्फुट सौन्दर्य है जो कि उपजीव्यताका परिचायक है। उत्तर कविमें अलङ्कारादिकी विचित्रता है जो कि उपजीवककी विशेषता है। अधिक क्या लिखें ? "भिन्न-रुचिर्हि लोकः" इतना ही कहकर इस विषयका उपसंहार करते हैं।

नाटककार भास भगवान् विष्णुके उपासक थे यह बात उनके ग्रन्थोंसे जानी जाती है। परन्तु वे साम्प्रदायिक नहीं थे यह भी उस तरह विदित हो जाती है। भासकी रचनाओंमें मूलरामायण और महाभारत आदि शास्त्र ग्रन्थोंके होनेपर भी उनमें मौलिक प्रतिभा पूर्ण रूपसे परिलक्षित होती है। कुछ अपवादोंको छोड़कर उनके रूपक रङ्गभूमिमें अभिनय करनेके लिए नितान्त उपयुक्त हैं यह भी परिस्फुट है।

भासके ग्रन्थोंमें नीतिबोधक पद्य भी यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। निदर्शनके तौरपर कुछ दिये जाते हैं—

"गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥" (स्वप्न० ४-१)

"काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां, मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥"
(प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् १-१८)।

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः?
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम्?
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां,
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः॥ (अविमारकम् १-१२)।

इसी पद्यके प्रथम पादको लेकर रचे गये कृष्णमिश्रका निम्नलिखित श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति, कोऽत्र दोषः?"

नाटककार भासकी विशेषता

भासके बहुतसे रूपकोंमें नान्दीपाठवाले पद्योंमें अप्रकट रूपमें नाटकके पात्रोंका संकेत किया गया है। चन्द्रालोककार जयदेवके मतमें इसमें मुद्राऽलङ्कार होता है। जैसे कि स्वप्न-वासवदत्तमें—

"उदयनवेन्दुसवर्णो वासवदत्ताऽबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्॥" (१-१)।

भासके समस्त रूपकोंमें भरतमुनिके "प्रस्तावना" वा "आमुख" के लिए "स्थापना" शब्दका प्रयोग किया गया है। उसमें न ग्रन्थकारके वा न ग्रन्थके ही नामका उल्लेख मिलता है।

भरतवाक्य प्रायः सभी रूपकोंमें समान है और उनकी समाप्ति प्रार्थनाके स्वरूपमें देखी जाती है। जैसे—"राजसिंहः प्रशास्तु नः" इत्यादि।

भासकी प्रायः समस्त कृतियोंमें अपाणिनीय प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं—

जैसे—"आपृच्छामि, उपलप्स्यति, काशिराज्ञः" इत्यादि।

संस्कृतके अन्य रूपकोंके समान भासके रूपक संयोगान्तमात्र नहीं हैं, भासनिर्मित ऊरुभङ्ग वियोगान्त है, जो कि भारतीय परम्पराके प्रतिकूल है। भासके रूपक वैदर्भीरीतिके अनुसार रचे गये हैं। उनकी भाषा प्राञ्जल और प्रायः समासरहित है। मनको मुग्ध बनानेवाली स्वाभाविकताका प्रवाह देखा जाता है। स्थान-स्थानपर अलङ्कार भी परिलक्षित होते हैं।

पात्रोंके चरित्र भी निर्मल और नीतिपर हैं। अश्लीलता दोष भी नहीं देखा जाता है। संस्कृत-साहित्यमें भासका अप्रतिम स्थान है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

आसन् यदा जननिका जनकस्तथैव
तौ सोदरौ प्रणयिनौ, बहुबन्धवश्च।
जाताः पुरा सुखमयाः समयास्तदा मे,
वृत्तोऽधुनाऽस्मि दुरदृष्टवशोऽवशिष्टः॥ १॥

भारोपमं श्वसनमद्य विषादभावा-
ज्जैवातृकत्वमपि हन्त! जुगुप्सितं मे।
अध्यापनाद्विवरणात् समुपासनाच्च
कालं नयामि, ललितां शरणं प्रयामि॥ २॥

साध्वीललाममणि "हेमकुमारि" देवी,
श्री "देवचन्द्र" सुकृती, तनुजस्तदीयः।
श्री "कृष्णपूर्ण" सहजो द्विजशेषराजो
व्याख्यां व्यधात् सुकृतिभासकृतौ नवीनाम्॥ ३॥

अर्यप्रवर्य "वृजजीवनदास" गुरु-
स्नेहप्रकर्षवशगाऽस्ति कृतिर्मदीया।
चेत्संभ्रमादिजनितोऽस्ति मम प्रमादः,
क्षाम्यन्तु तं सहृदया विनिवेदनं मे॥ ४॥

वाराणसी, ब्रह्मघट्टम्।
सं० २०३३ कार्तिकशुक्ल-
मङ्गलचतुर्थी।

विद्वद्विधेयः
शेषराजशर्मा

स्वप्नवासवदत्तमें नायकादि-निरूपण

स्वप्नवासवदत्तमें वत्सराज उदयन धीरललित नायक हैं।

नायकका सामान्यलक्षण है—

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजावैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥ सा० द० ३-३०।

धीरललितका लक्षण—

"निश्चिन्तो मृदुरनिश कलापरो धीरललितः स्यात्।" सा० द० ६-३४।

नायिका वासवदत्ता स्वकीया और मध्या हैं।

स्वकीया नायिकाका लक्षण—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया"। सा० द० ३-५७।

मध्या नायिकाका लक्षण—

"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता॥" सा० द० ३-५९।

दूसरी नायिका पद्मावती स्वकीया और मुग्धा है।

मुग्धा नायिकाका लक्षण है :—

"प्रथमाऽवतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥" सा० द० ३-५८।

उदयनका वासवदत्तामें करुणविप्रलम्भ रस है।

करुणविप्रलम्भ रसका लक्षण—

"यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः॥" सा० द० ३-२०९।

उदयनका पद्मावतीमें संभोग श्रृङ्गार रस है।

संभोग श्रृङ्गारका लक्षण—

"दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
यत्राऽनुरक्तावन्योन्यं सम्भोगोऽयमुदाहृतः"॥ सा० द० ३-२१०।

निर्वेद, दैन्य आदि व्यभिचारिभाव हैं। रति स्थायिभाव है। विदूषक आदि सहाय हैं।
रीति प्रायः वैदर्भी, गुण प्रायः प्रसाद हैं।

भासके नामसे प्रसिद्ध कुछ पद्य

बाला च साऽविदितपञ्चशरप्रपञ्चा
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताऽङ्गयष्टिः ।
लज्जां समुद्वहति सा सुरताऽवसाने
हा ! काऽपि सा, किमिव किं कथयामि तस्याः ॥ १ ॥

दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति सा, हृष्टे प्रहृष्टा तथा
दीने दैन्यमुपैति, रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ।
कालं वेत्ति, कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ॥ २ ॥

तुलना कीजिए—

"गृहिणी, सचिवः, सखी मिथः, प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ? ॥
(रघुवंश, अष्टमसर्गः) ।

पूर्वोक्त इन दो पद्योंके अतिरिक्त और भी पद्य हैं जो भासके कहे जाते हैं जो 'वृहच्छार्ङ्गधरपद्धति' 'सदुक्तिकर्णाऽमृत' और सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत हैं ।

स्वप्नवासवदत्तके सुभाषित

१. "कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ।"१-४
२. "प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।" (१-७) ।
३. सुखमर्थो भवेद्दातुं, सुखं प्राणाः, सुखं तपः ।
सुखमन्यद्भवेत्सर्वं, दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥" (१-१०) ।
४. "दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः, स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद्विमुच्येह बाष्पं प्राप्ताऽऽनृण्यं याति बुद्धिः प्रसादम् ॥" (४-६) ।
५. "गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥" (४-६) ।
६. "प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।" (६-७) ।
"कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले ? रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ।" ६-१० ।

इति शुभम् ।

पात्र-परिचय

(पुरुष-पात्र)

राजा—वत्सदेशके राजा उदयन ।

यौगन्धरायण—उदयनके मुख्यमन्त्री ।

रुमण्वान्—उदयनके दूसरे मन्त्री ।

वसन्तक—राजा उदयनके विदूषक (शृङ्गारसहायक) ।

ब्रह्मचारी—लावाणक ग्रामके छात्र ।

(१) काञ्चुकीय—मगधके राजप्रसादमें अन्तपुरके अधिकारी ब्राह्मण ।

(२) काञ्चुकीय—उज्जयिनीके राजप्रसादमें अन्तःपुरके अधिकारी ब्राह्मण ।

संभपक, भट—मगधराजके भृत्य ।

(स्त्री-पात्र)

वासवदत्ता—उदयनकी प्रथम पत्नी, उज्जयिनीके राजा प्रद्योतकी पुत्री ।

आवन्तिका—छद्मवेश धारण करनेवाली वासवदत्ता ।

पद्मावती—मगधराज दर्शककी बहन, उदयनकी द्वितीयपत्नी ।

अङ्गारवती—प्रद्योतकी रानी, वासवदत्ताकी माता ।

तापसी—मगजराज्यके तपोवनमें रहनेवाली तपस्विनी ।

मधुकरिका—
पद्मिनिका— } पद्मावतीकी सहचरियाँ ।

धात्री—पद्मावतीकी उपमाता ।

वसुन्धरा—वासवदत्ताकी धात्री ।

विजया—वत्सराजकी प्रतिहारी ।



॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीभासप्रणीतं

स्वप्नवासवदत्तम्

'चन्द्रकला'-व्याख्या-हिन्द्यनुवादटिप्पणीविलसितम्

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सुकृतनिकरलभ्यं भक्तिमात्रं यदीयं
वितरति विनतेभ्यः कल्पनाऽतीतभूतिम् ।
भवविभवसरूपं हैमवत्यास्तनूजं
करिवरवदनं तं नित्यमेवाऽऽनतोऽस्मि ॥ १ ॥

याभ्यां मयाऽलम्भि विवेकहेतु-
र्नरत्वरूपः स्पृहणीयभावः ।
प्राप्तौ ततो बोधमयः प्रकाशो
नमामि मातापितरौ गुरूंस्तान् ॥ २ ॥

अथ तत्र भवान् महाकविः कीर्तिप्रकाशो भासः सहृदयहृदयरञ्जनार्थं स्वप्नवासवदत्तं नाम नाटकमारभमाणः स्थापनामुपस्थापयति—नान्द्यन्त इति ।

नान्द्यन्त इति । नान्द्यन्ते=नाटकमङ्गलाचरणाऽवसाने सति । ततः =अनन्तरं, सूत्रधारः=प्रधाननटः, प्रविशति=प्रवेशं करोति ।

नान्द्यन्ते=नान्द्या अन्तः, तस्मिन् (ष० त०) । नाटकका लक्षण विश्वनाथ कविराज ऐसा कहते हैं—

(नाटकके मङ्गलाचरणकी समाप्तिके अनन्तर सूत्रधार प्रवेश करता है ।)

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्तावलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ बलस्य भुजौ त्वा पातामित्यन्वयः ॥ १ ॥

उदयेति। उदयनवेन्दुसवर्णौ=उद्गमनूतनचन्द्रसमानवर्णौ, आसवदत्ताऽवलौ =मदिरावितीर्णबलाऽभावौ, मदिरापाननिर्बलाविति भावः। पद्मावतीर्णपूर्णौ= कमलाऽवतारपूरितौ, कमलतुल्यकोमलाविति भावः। वसन्तकम्रौ=सुरभिमनोहरौ,

---

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राऽङ्काः परिकीर्तिताः ॥ ६-७-८-। इत्यादि ।

अर्थात् नाटकमें चरित्र प्रख्यात होना चाहिए, उसमें मुख सन्धि आदि पाँच सन्धियाँ अपेक्षित हैं। उसमें विलास समृद्धि आदि गुण और अनेक विभूतियाँ होती हैं। सुख और दुःखकी उत्पत्ति और अनेक रस होने चाहिए। उसमें पाँचसे लेकर दश अङ्क तक होने चाहिए इत्यादि। नाटकके आरम्भमें नान्दी-पाठ करना आवश्यक है। नान्दीका लक्षण है—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ ६—२४

देवता, ब्राह्मण और राजा आदियोंकी आशीवर्चनसे युक्त स्तुतिका प्रयोग करनेसे "नान्दी" कहते हैं। "पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।" (सा० द० ६—२५) इसके अनुसार यह अष्टपदा नान्दी है।

सूत्रधारः=सूत्रं धारयतीति, सूत्र—उपपदपूर्वक णिजन्त धृञ् धातुसे "कर्मण्यण्" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय हुआ है (उपपदसमास)। सूत्र (नाटक-बीज) को जो धारण करता है उसे "सूत्रधार" (प्रधान नट) कहते हैं।

उदयेति। उदयनवेन्दुसवर्णौ=नवश्चाऽसौ इन्दुः (क० धा०) उदये नवेन्दुः

सूत्रधार—उदय कालके नये चन्द्रके समान वर्णवाले, मदिरापानसे निर्बल, कमलोंके समान कोमल और वसन्त ऋतुके सदृश मनोहर, बलरामकी भुजाएँ आपलोगोंको रक्षा करें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव

तादृशौ बलस्य=बलरामस्य, भुजौ=बाहू, त्वां=सामाजिकसमूहं, पातां=रक्षताम् ॥ १ ॥

एवमिति । आर्यमिश्रान्=पूज्यश्रेष्ठान्, सामाजिकानिति भावः । एवम्=इत्थं;

(स० त०) । समानो वर्णो ययोस्तौ सवर्णौ (बहु०) । यहाँपर "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु" इस सूत्रसे समानके स्थानमें "स" भाव हो गया है । उदयनवेन्दुना सवर्णौ (तृ० त०) । आसवदत्ताऽबलौ=आसवेन दत्तम् (तृ० त०) । "आसवेन" यहाँपर लक्षणासे "आसवपानेन" ऐसा लक्ष्याऽर्थ निकलता है । बलस्य अभावः अबलम् "अव्ययं विभक्ति-समीप०" इत्यादि सूत्रसे अर्थाऽभाव अर्थमें अव्ययीभाव समास हुआ है । आसवदत्तम् अबलं ययोस्तौ (बहु०) । पद्मावतीर्णपूर्णौ=अवतरणम् अवतीर्णम्, अव—उपसर्गपूर्वक "तॄ प्लवनसंतरणयोः" इस धातुसे "नपुंसके भावे क्तः" इस सूत्रसे भावमें क्त प्रत्यय । पद्मस्य अवतीर्णम् (ष० त०), तेन पूर्णौ (तृ० त०) । वसन्तकम्रौ=वसन्त इव कम्रौ (उपमानपूर्वपद-कर्मधारय) । कमनशीलौ कम्रौ, "कमु कान्तौ" धातुसे "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः" इस सूत्रसे र प्रत्यय हुआ है । यहाँपर उपमान "वसन्त" में एकवचन और उपमेय "भुज" में द्विवचन होनेसे भग्नप्रक्रम नामका दोष हो गया है । भुजौ="भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः । पाताम्="पा रक्षणे" धातुसे लोट् । इस पद्यमें पदोंके विन्यासकी चतुरतासे नाटकके मुख्य पात्र उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक इनकी सूचना होनेसे मुद्राऽलङ्कार है, उसका लक्षण है—"सूच्याऽर्थसूचनं मुद्रा प्रकृताऽर्थपरैः पदैः ।" अर्थात् प्रकृत अर्थमें तत्पर पदोंसे सूचनीय अर्थोंकी सूचना जिसमें है उसे "मुद्रा" अलङ्कार कहते हैं । आर्या छन्द है । उसका लक्षण जैसे कि श्रुतबोधमें है—

"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

अर्थात् जिसके प्रथम चरण और तृतीय चरणमें बारह मात्राएँ, द्वितीय चरणमें अठारह मात्राएँ और चतुर्थ चरणमें पन्द्रह मात्राएँ हैं उसे "आर्या" कहते हैं ॥ १ ॥

एवमिति । आर्यमिश्रान्=आर्याश्च ते मिश्रास्तान् (क० धा०) । आर्यं

पूजनीय श्रेष्ठ (सामाजिक) जनोंको मैं ऐसे निवेदन करता हूँ । अरे ! मेरे निवेदनमें

श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

विज्ञापयामि=निवेदयामि । अये=आश्चर्यद्योतकमव्ययम् । किं नु खलु=किं कारणमस्ति । मयि=सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे=निवेदनाकुले सति, शब्द इव=ध्वनिः इव, श्रूयते=आकर्ण्यते, अङ्ग=भोः, पश्यामि=विलोकयामि ।

नेपथ्य इति । नेपथ्ये=वेशपरिवर्तनस्थाने, आर्याः=श्रेष्ठाः, उत्सरत=अपसरत, अस्मात्स्थानादिति शेषः ।

सूत्रधार इति । भवतु=अस्तु, विज्ञातं=विदितम् ।

पदका अत्रिस्मृतिके अनुसार अर्थ है—

"कर्तव्यमाचरन्काममकर्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आर्य इति स्मृतः ॥"

अर्थात् जो कर्तव्य करता है अकर्तव्य नहीं करता और प्रकृत (प्रस्तुत) आचारमें रहता है उसे "आर्य" कहते हैं । ऋ+ण्यत्=आर्यः । महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः ।" इत्यमरः । विज्ञापयामि=वि—उपसर्गपूर्वक "ज्ञा अवबोधने" धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लट्के मिप्का रूप है, "अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ" इस सूत्रसे पुक् आगम हुआ है । विज्ञापनव्यग्रे=विज्ञापने व्यग्रः, तस्मिन् (स० त०) । श्रूयते="श्रु श्रवणे" धातुसे कर्ममें लट्, प्रथम पुरुषका एक वचन । यक् होकर "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इस सूत्रसे दीर्घ हुआ है । अङ्ग=अथ सम्बोधनार्थकाः । "स्युः पाट् प्याडङ्ग हे हे भोः" इस अमरकी उक्तिके अनुसार संबोधनार्थक अव्यय है । पश्यामि="दृशिर् प्रेक्षणे" धातुसे लट्के मिप्का रूप है । यहाँपर दृश् धातु सामान्य ज्ञानके अर्थमें है । यह शब्द कहाँसे आ रहा है पता लग जाता है यह इसका भावार्थ है । (नेपथ्ये=वेश बदलनेके स्थानको "नेपथ्य" कहते हैं) । उत्सरत=उद्—उपसर्गपूर्वक "सृ" धातुके लोट् के मध्यम पुरुषका बहुवचन । तीन बार कहनेसे शीघ्रतासे छोड़नेका

आकुल होनेपर शब्दके समान सुनाई पड़ रहा है । महाशयो ! मैं देखता हूँ ।

(नेपथ्यमें)

हटिए हटिए महाशयो ! हटिए ।

सूत्रधार—अच्छा, जान लिया ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

अन्वयः—स्निग्धैः कन्याऽनुगामिभिः मगधराजस्य भृत्यैः तपोवनगतः सर्वो जनो धृष्टम् उत्सार्यते । इत्यन्वयः ।

भृत्यैरिति । स्निग्धैः=स्नेहयुक्तैः । कन्याऽनुगामिभिः = राजकुमार्यनुचरैः, मगधराजस्य=मगधभूपतेः, भृत्यैः=सेवकैः, भटैरिति भावः । तपोवनगतः= आश्रमप्राप्तः, सर्वः=सकलः, जनः=मानवः, धृष्टं=निःशङ्कं यथा तथा उत्सार्यते=दूरीक्रियते ॥ २ ॥

इति स्थापना ।

अर्थ द्योतित होता है ।

भृत्यैरिति । स्निग्धैः=स्निह् + क्तः । "स्निग्धस्तु वत्सलः" इत्यमरः । कन्याऽनुगामिभिः=कन्याम् अनुगच्छन्तीति तच्छीलाः कन्याऽनुगामिनः, तैः कन्या— उपपदपूर्वक अनु—उपसर्गपूर्वक "गम" धातुसे "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" इस सूत्रसे णिनि प्रत्यय, "उपपदमतिङ्" इस सूत्रसे उपपदसमास । ये दोनों पद "भृत्यैः" इसके विशेषण हैं । मगधराजस्य=मगधानां राजा मगधराजः, तस्य (ष० त०) । यहाँपर 'मगधराजन्' शब्दसे "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इस सूत्रसे समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है । तपोवनगतः=तपसो वनं तपोवनं, (ष० त०), तपोवनं गतः, "द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्ताऽऽपन्नैः" इस सूत्रसे द्वितीयातत्पुरुष समास हुआ है । धृष्टं=धृष्+क्तः, यह क्रियाविशेषण है । उत्सार्यते=उद्—उपसर्गपूर्वक सृ धातुसे णिच् होकर कर्ममें लट् हुआ है राजकुल-में स्त्रियोंमें परदेकी प्रथा होनेसे राजकुमारीके आगमनसे राजपुरुष लोगोंको हटा रहे हैं यह भावार्थ है । अनुष्टुप् छन्द है ॥ २ ॥

स्थापना=यह शब्द "आमुख" वा "प्रस्तावना" के स्थानमें प्रयुक्त है ।

स्नेहयुक्त और राजकुमारी (पद्मावती) के अनुसरण करनेवाले मगधेश्वरके सेवकोंसे तपोवनमें रहे हुए सबलोग ढिठाईसे हटाये जा रहे हैं ॥ २ ॥

(सूत्रधार निकलता है ।)

स्थापना ।

(प्रविश्य ।)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च)

उत्सारणं कुर्वतो भटद्वयस्य प्रवेशं प्रतिपादयति—प्रविश्येति । भटौ=योद्धारौ । तत इति । ततः = उत्सारणवाक्याऽनन्तरम् । परिव्राजकवेषः = पर्यटकवेष-धारि, यौगन्धरायणः = उदयनमुख्यमन्त्री, प्रविशति=प्रवेशं करोति । आवन्तिका-वेषधारिणी = अवन्तिदेशीयस्त्रीवेशधारणशीला, वासवदत्ता=उदयनमहिषी । प्रविशति ।

भरतके नाटचशास्त्रके अनुसार आमुख वा प्रस्तावनाका लक्षण साहित्यदर्पणमें इस प्रकार किया है—

"नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥" ६–३१-३२ ।

अर्थात् नटी (सूत्रधारपत्नी), विदूषक वा पारिपार्श्विक सूत्रधारके साथ जहाँ अपने कार्यसे उत्पन्न प्रस्तुत विषयको आक्षेप करने वाले विचित्र वाक्योंसे परस्पर वातचीत करते हैं उसे "आमुख" वा "प्रस्तावना" कहते हैं। उसके भी पाँच भेद होते हैं, जैसे कि—

"उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगाऽतिशयस्तथा ।
प्रवर्तकाऽवलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ॥" ६–३३ ।

अर्थात् उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगाऽतिशय, प्रवर्तक और अवलगित इस प्रकार प्रस्तावनाके पाँच भेद होते हैं। यहाँपर उन पाँच प्रकारके आमुखोंमें प्रवर्तक नामका आमुख है, जैसे कि उसका लक्षण है—

"कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम् ॥" सा० द० ६–३७ ।

(प्रवेश कर)

दोनों भट—(सिपाही)—हटो, हटो आर्यो ! हटो ।

(तब पर्यटकके वेषधारी यौगन्धरायण और अवन्तिदेशकी स्त्रीकी वेषधारिणी वासवदत्ता भी प्रवेश करते हैं) ।

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्त्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

यौगन्धरायण इति । कर्णं=श्रोत्रं, दत्त्वा=वितीर्य, शब्दश्रवणाऽर्थमिति

अर्थात् सूत्रधार जहाँपर प्रवृत्त कालको आश्रय करके वर्णन करता है और उसी कालके आश्रयसे पात्रका रङ्गशालामें प्रवेश होता है उसे "प्रवर्तक" कहते हैं। यहाँपर भी सूत्रधारके राजभटोंसे जनताके उत्सारण कालके वर्णनके अनुसार पात्रका प्रवेश होनेसे "प्रवर्तक" नामका आमुख वा प्रस्तावना है। यहाँपर भासने "आमुख" वा "प्रस्तावना" न लिखकर "स्थापना" शब्दका प्रयोग क्यों किया यह सन्देह उत्पन्न होता है। इनके समयमें संभवतः किसी अन्य ग्रन्थका ही प्रचार रहा होगा। भारतीय नाट्यशास्त्रका प्रचार नहीं होगा इसीलिए उन्होंने उस समय प्रचलित उस ग्रन्थके अनुसार "स्थापना" शब्दका प्रयोग किया होगा। इसी तरह नाट्यशास्त्रके अन्य नियमोंमें भी यही बात लागू होती है।

प्रविश्य=प्र+विश्+क्त्वा (ल्यप्)।

भटौ—"भटा योधाश्च योद्धारः"। इत्यमरः। यद्यपि भटका अर्थ योद्धा (लड़ाका) है, तो भी यहाँ संरक्षक सिपाहीके अर्थमें प्रयोग है। उत्सरत=उद्+सृ+लोट्+थ।

ततः=तस्मात् इति, तद् शब्दसे "पञ्चम्यास्तसिल्" इससे तसिल् प्रत्यय। परिव्राजकवेषः=परिव्रजतीति परिव्राजकः, परि-उपसर्गपूर्वक "व्रज गतौ" धातुसे "ण्वुल्तृचौ" इस सूत्रसे ण्वुल् प्रत्यय और 'वु'के स्थानमें "युवोरनाकौ" इस सूत्रसे 'अक' आदेश। परिव्राजक अर्थ यहाँपर संयासी नहीं हैं पर्यटक है। परिव्राजकस्य इव वेषो यस्य सः यहाँपर "सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ" इस सूत्रसे "सप्तमी" पदसे ज्ञापित व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हुआ है। आवन्तिका-वेषधारिणी=अवन्तिषु (मालवदेशेषु) भवा आवन्तिका, अवन्ति शब्दसे "तत्र भवः" इससे "काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ" इस सूत्रसे काश्यादिगणके आकृतिगण होनेसे ञिठ प्रत्यय और उसके स्थानमें "ठस्येकः" इससे इक आदेश होकर वृद्धि होकर टाप् होनेपर बनता है। आवन्तिकाया वेषः (ष० त०); तं धारयतीति तच्छीला, आवन्तिका वेष+धृ+णिच्+णिनिः, "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इससे स्त्रीत्वविवक्षामें ङीप्।

यौगन्धरायण—कुतः=कस्मात् इति, किम्+तसिल्, "कुति होः" इससे

यौगन्धरायण—(कान लगाकर) कैसे यहाँ भी हटाया जा रहा है? क्योंकि—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥ ३ ॥

भावः । कथं=केन प्रकारेण, इह अपि=अत्र अपि, तपोवनेऽपीति भावः । उत्सार्यते=उत्सारणं क्रियते । कुतः=कस्मात् ?

अन्वयः—धीरस्य आश्रमसंश्रितस्य वसतः वन्यैः फलैः तुष्टस्य मानार्हस्य वल्कलवतो जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते । भोः ! उत्सिक्तो विनयात् अपेतपुरुषः चलैः भाग्यैर्विस्मितः अयं कः निभृतम् इदं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ।। ३ ।।

धीरस्येति । धीरस्य=धैर्ययुक्तस्य, स्थिरचित्तस्येति भावः । आश्रमसंश्रितस्य=तपोवनाश्रितस्य, वसत=निवासं कुर्वतः, वन्यैः=अरण्योत्पन्नैः, फलैः=सस्यैः, कन्दमूलप्रभृतिभिरिति भावः । तुष्टस्य=प्रीतस्य, मानार्हस्य=सत्कारयोग्यस्य, वल्कलवतः=परिहितवल्कलस्य, एतादृशस्य, जनस्य=तपस्विलोकस्य, त्रासः=भयम्, उत्सारणादिति शेषः । समुत्पाद्यते=समुद्भाव्यते । भोः=हे भटाः !, उत्सिक्तः=गर्वितः, विनयात्=नम्रतायाः, अपेतपुरुषः=अपगतजनः,

---

किम्के स्थानमें "कु" आदेश । सब लोगोंके उपभोग्य वनमें भी कैसे लोगोंको हटाया जा रहा है यह वाक्यका अभिप्राय है ।

धीरस्येति । आश्रमसंश्रितस्य=आश्रमं संश्रितः, तस्य, "द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्तापन्नैः" इस सूत्रसे द्वितीयातत्पुरुष समास । वसतः=वसतीति वसन्, तस्य "वस निवासे" धातुसे लट्के स्थानमें "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाऽधिकरणे" इस सूत्रसे शतृ प्रत्यय । वन्यैः=वने भवानि वन्यानि, तैः, वन शब्दसे "तत्र भवः" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय । तुष्टस्य=तुषु+क्तः । मानार्हस्य=मानम् अर्हतीति मानाऽर्हः, तस्य मान-उपपदपूर्वक "अर्ह पूजायाम्" धातुसे "अर्हः" इस सूत्रसे अच् प्रत्यय (उपपदस०) । वल्कलवतः=वल्कले स्तो यस्य स वल्कलवान्, तस्य, "वल्कल" शब्दसे "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" इस सूत्रसे मतुप् प्रत्यय और मकारके स्थानमें "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" इस सूत्रसे

धैर्ययुक्त, तपोवनमें रहने वाले, वनके कन्दमूल फलोंसे सन्तुष्ट, सम्मानके योग्य और वल्कल धारण करनेवाले जनको भी भय पैदा किया जा रहा है । हे भटो ! गर्वी, नम्रतासे रहित भृत्यवाला, अस्थिर भाग्यसे आश्चर्य माननेवाला यह कौन-सा स्वामी शान्त इस तपोवनको हटानेकी आज्ञासे ग्रामके समान बना रहा है ॥ ३ ॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]
यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

उद्धतभृत्य इति भावः । एवं च चलैः=चञ्चलैः, अस्थिरैरिति भावः । तादृशैः भाग्यैः=सम्पत्तिशालितास्वरूपैरिति भावः । विस्मितः=आश्चर्यान्वितः, मादृशः सम्पन्नः कः स्यादिति आश्चर्यसमन्वित इति भावः । अयम्=एषः, कः=अधिपः, निभृतं=निश्चलं, शान्तमिति भावः । इदम्=एतत्, तपोवनम्=तापसाश्रमम्, आज्ञया=आदेशेन, उन्सारणविधानरूपेणेति भावः । ग्रामीकरोति=संवसथीकरोति, तपोवनमपि उत्सारणरूपकोलाहलेन ग्रामरूपतां प्रापयतीति भावः ।। ३ ।।

वासवदत्तेति । उत्सारयति=उत्सारणं करोति ।

यौगन्धरायण इति । भवति=पूज्ये ! आत्मानं=स्वम् ।

वकार आदेश हुआ है । त्रासः=त्रसनं, "त्रसी उद्वेगे" धातुसे "भावे" इस सूत्रसे घञ् प्रत्यय। समुत्पाद्यते=सम्+उद्-उपसर्गपूर्वक णिजन्त पद धातुसे कर्ममें लट्। उत्सिक्तः=उद्+सिच्+क्तः। अपेतपुरुषः=अपेताः पुरुषाः यस्य स (बहु०)। यहाँपर "देवदत्तस्य गुरुकुलम्" इस प्रकारका क्वाचित्क प्रयोग है। चलैः= चलन्तीति चलानि, तैः, 'चल' धातुसे "पचाद्यच्"। विस्मितः=वि+स्मि+क्तः। ग्रामीकरोति=अग्रामो ग्रामो यथा संपद्यते तथा करोति ऐसा विग्रह कर ग्राम शब्दसे "कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य कर्तरि च्विः" इस सूत्रसे "अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्" इससे अभूततद्भावमें "च्वि" प्रत्यय होकर "अस्य च्वौ" इस सूत्रसे अवर्णका ईत्व हुआ है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है, उसका लक्षण है—"सूर्याश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।। ३ ।।

वासवदत्ता—उत्सारयति=उत्+सृ+णिच्+लट्+तिप्।

यौगन्धरायणः—भवति=भातीति भवती, तत्सम्बुद्धौ। यहाँपर "भा" दीप्तौ धातुसे "भातेर्डवतुः" इस सूत्रसे डवतु प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें "उगितश्च" इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय हुआ है। "त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः" अर्थात् त्यदादिगणमें पठित शब्दका सम्बोधन नहीं होता है यह उत्सर्ग (सामान्य नियम) है कहनेसे कहीं-कहीं इसका अपवाद भी जाना जाता है।

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?
यौगन्धरायण—पूजनीये ! जो धर्मसे अपनेको हटा रहा है।

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सारइदव्वा होमि त्ति । [आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभवो । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः] ।

यौगन्धरायणः—'भुक्तोज्झित' एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

वासवदत्तेति । वक्तुकामा=परिभाषितुकामा । अहम् अपि=राजमहिषी अपि, उत्सारयितव्या=उत्सारणीया ।

यौगन्धरायण इति । एवम्=इत्थम्, अनिर्ज्ञातानि=अविदितानि । दैवतानि= देवाः अपि, अवधूयन्ते=तिरस्क्रियन्ते ।

यौगन्धरायण इति । अत्र भवत्या=पूजनीयया, एष विषयः=उत्सारणपूर्वको गमनरूपो विषयः, भुक्तोज्झितः=प्राक् अनुभूतः पश्चात्त्यक्तः । अत्र=विषये, चिन्ता=चिन्तनम् ।

वासवदत्ता—वक्तुं कामो यस्याः सा (बहु०), "तुं काममनसोरपि" इससे मकारका लोप । दैवतानि=देवता एव, "देवता" शब्दसे "प्रज्ञादिभ्यश्च" इस सूत्रसे स्वार्थ (प्रकृत्यर्थ) में अण् प्रत्यय हुआ है । "वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा, देवताः स्त्रियाम् ।" इत्यमरः । अवधूयन्ते=अव–उपसर्गपूर्वक् "धूञ् कम्पने" धातुसे कर्ममें लट् ।

वासवदत्ता—उत्पादयति=उद्+पद्+णिच्+लट्+तिप् । परिभवः= "अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया ।" इत्यमरः ।

यौगन्धरायण इति । भुक्तोज्झितः=प्राग् भुक्तः पश्चात् उज्झितः, "पूर्वकालैक- सर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इस सूत्रसे कर्मधारय समास ।

वासवादत्ता—आर्य ! मैं ऐसा नहीं कहना चाहती, क्या मैं भी हटाई जानेवाली हूँ ?

यौगन्धरायण—पूजनीये ! इसी तरह अपरिचित देवता तिरस्कृत होते हैं ।

वासवादत्ता—आर्य ! चलनेका परिश्रम (थकावट) भी वैसे खेदको उत्पन्न नहीं कर रहा है, जैसे कि यह तिरस्कार ।

यौगन्धरायण—यह विषय (लोगोंको हटाकर चलना) आपने भी अनुभव कर

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पूर्वं त्वया अपि एवम् गतम् अभिमतम् आसीत्। पुनः भर्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यसि। कालक्रमेण परिवर्तमाना जगतो भाग्यपङ्क्तिः चक्रारपङ्क्तिः इव गच्छति ॥ ४ ॥

पूर्वमिति। पूर्वं=पुरा, उज्जयिन्यां कौशाम्ब्यां वाऽवस्थानसमय इति भावः। त्वया अपि=भवत्या अपि, एवम्=ईदृशं, पद्मावत्या इवेति भावः। गतं=गमनं, भटकर्तृकोत्सारणसहितमिति तात्पर्यम्। अभिमतम्=अभीष्टम्, आसीत्=अभवत्। पुनः=भूयः, भर्तुः=स्वामिनः, रिपुहृतराज्यस्य उदयनस्येति भावः। विजयेन= स्वराज्यप्राप्तिरूपजयेनेति भावः। श्लाघ्यं=प्रशंसनीयं यथा तथा, सर्वजनैरिति

चिन्ता=चिन्तनं "चिन्त" धातुसे "चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च" इस सूत्रसे अङ् प्रत्यय, टाप् प्रत्यय।

पूर्वमिति। गतं=गम्+क्तः। अभिमतम्=अभि+मन्+क्तः। आसीत्= "अस भुवि" धातुके लङ्का रूप। भर्तुः=बिभर्तीति भर्ता, तस्य, "डुभृञ् धारण पोषणयोः" धातुसे "ण्वुल्तृचौ" इससे तृच्। विजयेन=वि+जि+अच्। श्लाघ्यम्=यह गमन क्रियाका विशेषण है। परिवर्तमाना=परिवर्तत इति, परि–उपसर्गपूर्वक "वृतु वर्तने" धातुसे लट्के स्थानमें शानच् प्रत्यय और "आने मुक्" इससे "मुक्" आगम। चक्रारपङ्क्तिः=चक्रस्य अराः (अवयवाः), (ष० त०) तेषां पङ्क्तिः (ष० त०)। "अरमङ्गे रथाऽङ्गस्य शीघ्रशीघ्रगतोऽ-रपि।" इति शाश्वतः। जैसे पहिएके अवयव क्रमसे कभी ऊपर और कभी नीचे चलते रहते हैं वैसे ही भाग्यका भी उतराव और चढ़ाव होता रहता है यह तात्पर्य है। यहाँपर "चक्रारपङ्क्तिः इव" अंशमें लुप्तोपमा और पूर्वार्धप्रतिपादित विशेष अर्थका उत्तरार्धमें प्रतिपादित सामान्य अर्थसे समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास

परित्याग किया है; इसमें आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि—

पहले आपको भी इस प्रकारसे चलना अभीष्ट था, फिर पति (उदयन) के अभ्युदयसे श्लाघ्यरूपसे उसी तरह गमन करेंगी। समयके क्रमसे जगत्की परिवर्तनशील भाग्यपङ्क्ति पहिएके अवयवोंके समान चलती है ॥ ४ ॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः । उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

शेषः । गमिष्यसि = व्रजिष्यसि । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयते—कालक्रमेणेति । कालक्रमेण = समयपरिपाट्या, परिवर्तमाना = परिभ्रमन्ती, जगतः = लोकस्य, भाग्यपङ्क्तिः = अदृष्टपरम्परा, चक्राऽरपङ्क्तिः इव = रथाऽङ्गाऽवयवश्रेणिः इव, गच्छति = व्रजति । उन्नत्यवनत्योरवस्थानमनियतमिति भावः ॥ ४ ॥

उस्सरहेति । उत्सरत = दूरम् अपसरत ।

तत इति । काञ्चुकीयः = कञ्चुकः (चोलकः, वस्त्रविशेषः) अस्याऽस्तीति ।

अलङ्कार है । इस प्रकार अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर हो गया है । साहित्यदर्पणके अनुसार "उपमा" का लक्षण है—

"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।" ६–१४

अर्थान्तरन्यासका लक्षण है—

"सामान्यं वा विशेषेण, विशेषस्तेन वा यदि ।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ॥ ६-३१ ॥
"साधर्म्येणेतरेणाऽर्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः ॥"

सङ्करका लक्षण है—

"अङ्गाऽङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः ॥" ६-९८ ॥

महाकवि कालिदासने इसी श्लोकके अर्थका कितना मनोरम छायाचित्र उतारा है—

"कस्याऽत्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥" २-४९ ॥

छन्द वसन्ततिलका है, वृत्तरत्नाकरमें उसका लक्षण है—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।" ॥ ४ ॥

कञ्चुकी, "कञ्चुक" शब्दसे "अत इनिठनौ" इस सूत्रसे इनि प्रत्यय हुआ है । कञ्चुकीका लक्षण है—

दो भट—हटो आर्यो ! हटो ।

(तब काञ्चुकीय प्रवेश करता है ।)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

परिहरतु भवान् नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥ ५ ॥

तत इति । काञ्चुकीयः=कञ्चुकी । उत्सारणा=उत्सारणक्रिया, न कार्या=नो विधेया ।

अन्वयः—भवान् नृपाऽपवादं परिहरतु, आश्रमवासिषु परुषं न प्रयोज्यम् । मनस्विन एते नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति ।। ५ ।।

परिहरत्विति । भवान्=त्वं, भषक इति भावः । नृपाऽपवादं=राजनिन्दा-कारणम्, उत्सारणमिति भावः । परिहरतु=परित्यजतु । अतः आश्रमवासिषु=तपोवननिवासिषु, परुषं=कठोरं, वचनमिति शेषः । न प्रयोज्यं=नहि प्रयोक्त-व्यम् । यतः मनस्विनः=प्रशस्तमानसाः, एते=आश्रमवासिनः, नगरपरिभवान्=पुरतिरस्कारान्, विमोक्तुं=परित्यक्तुं, वनं=तपोवनम्, अभिगम्य=संप्राप्य, वसन्ति=निवासं कुर्वन्ति ।। ५ ।।

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणाऽन्वितः ।
सर्वकार्याऽर्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ।।"

अर्थात् राजाके अन्तःपुर (रनिवास) की देखभाल करने वाला गुणोंसे युक्त सब कार्योंके प्रयोजनमें कुशल वृद्ध ब्राह्मणको "कञ्चुकी" कहते हैं । "कञ्चुकी एव काञ्चुकीयः" कञ्चुकि—शब्दसे गहादिगणपठित "वेणुकादिभ्यश्छण् वाच्यः" इस वार्तिकसे छण् प्रत्यय होकर "आयनेयी०" इत्यादि सूत्रसे "छ"के स्थानमें ईय आदेश और णित् होनेसे आदिवृद्धि होकर यह पद बनता है । वेणुकादिके आकृति-गण होनेसे यह कल्पना की गई है । और नाटकोंमें "कञ्चुकी" पदका ही पाठ है "काञ्चुकीय" शब्द भासके नाटकोंमें ही उपलब्ध देखा जाता है । भषक नामके राजसेवकको काञ्चुकीय कहते हैं ।

परिहरत्विति । नृपाऽपवादं=नॄन् पातीति नृपः, नृ—उपपदपूर्वक "पा रक्षणे" धातुसे "आतोऽनुपसर्गे कः" इस सूत्रसे कप्रत्यय (उपपदसमास) । नृपस्य अपवादः, तम् (ष० त०) । परिहरतु=परि+हृञ्+लोट्+तिप् । आश्रम-वासिषु=आश्रमे वसन्तीति तच्छीला आश्रमवासिनः तेषु आश्रम+वस्+णिनिः (उपपद०) । प्रयोज्यं=प्रयोक्तुं शक्यं प्रयोज्यम्, प्र—उपसर्गपूर्वक युज धातुसे शक्या-

काञ्चुकीय—संभषक (घोषणा करने वाले) ! हटाना नहीं चाहिए नहीं चाहिए, देखो—तुम राजाकी निन्दाका कारण (उत्सारण कार्य) छोड़ो । तपोवनमें रहनेवालोंमें कठोर

उभौ—अय्य ! तह। [आर्य ! तथा ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम्। वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम्।

वासवदत्ता—अय्य ! तह। [आर्य ! तथा ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

उभाविति। उभौ=द्वौ, भटाविति शेषः। तथा=तेन प्रकारेणः भवता यदुक्तं तथैव कुर्वः, उत्सारणेन नृपापवादं परिहराव इति भावः।

यौगन्धरायण इति। हन्त=हर्षविषय इत्यर्थः। अस्य=काञ्चुकीयस्य, दर्शनं=ज्ञानं, सविज्ञानं=विशिष्टज्ञानसहितम्, धर्मनीत्यनुकूलमिति भावः। वत्से=वात्सल्यपात्रभूते, भगिनीति भावः। तावत्=वाक्यालङ्कारे, एनं=काञ्चुकीयम्, उपसर्पावः=समीपं गच्छावः।

वासवदत्तेति। आर्य=पूज्य, तथा=उपसर्पणं कुर्व इति भावः।

यौगन्धरायण इति। (उपसृत्य=समीपं गत्वा)। भोः=महाशय !

ऽर्थमें ण्यत् प्रत्यय कुत्वके अभावका निपातन हुआ है। मनस्विनः=प्रशस्तं मननः अस्ति एषां ते, मनस्-शब्दसे "अस्मायामेधास्रजो विनिः" इस सूत्रसे विनिप्रत्यय। नगरपरिभवान्=नगरे परिभवाः, तान् (स० त०)। विमोक्तुं=वि—उपसर्गपूर्वक "मुच्लृ मोक्षणे" धातुसे "समानकर्तृकेषु तुमुन्" इस सूत्रसे तुमुन् प्रत्यय। अभिगम्य=अभि—उपसर्गपूर्वक गम् धातुके 'क्त्वा' के स्थानमें "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्" इस सूत्रसे ल्यप् आदेश हुआ है। पुष्पिताग्रा नामका अर्द्धसमवृत्त है, उसका लक्षण जैसे कि वृत्तरत्नाकरमें है—

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजो जरगाश्च पुष्पिताग्रा" ॥५॥

यौगन्धरायण—हन्त=यह अव्यय यहाँपर हर्षका द्योतक है। "हन्त हर्षेऽनु-

---

वचन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि मनस्वी ये (तपोवनवासी) शहरमें होनेवाले तिरस्कारोंको छोड़नेके लिए तपोवनमें आकर रहते हैं ॥ ५ ॥

दोनों भट—आर्य ! ऐसा ही करेंगे, (उत्सारण नहीं करेंगे)।

(निकलते हैं।)

यौगन्धरायण—ओ हो ! इस (काञ्चुकीय) का ज्ञान अनुभवसे सम्पन्न है। बहन ! हमलोग इसके पास जायँ।

वासवदत्ता—आर्य ! ऐसा ही करें।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) महाशय ! यह हटाना किस लिए है ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रम-

---

उत्सारण=उत्सारणक्रिया, किं—कृता=केन कारणेन विहिता ।

काञ्चुकीय इति । भोः तपस्विन् !=हे तापस !

यौगन्धरायण इति । (आत्मगतं=स्वगतम्) । अयम्=एषः, आलापः= आभाषणं, गुणवान्=विशिष्टगुणसम्पन्नः, तु=परन्तु, अपरिचयात्=असंस्तवात्, न श्लिष्यते=न सम्बद्धयते ।

काञ्चुकीय इति । श्रूयताम्=आकर्ण्यताम् । एषा=समीपतरवर्तिनी, गुरुभिः= पूज्यजनैः मातापित्रादिभिः, अभिहितनामधेयस्य=कथिताऽभिधानस्य, भगिनी= स्वसा । नाम इति प्रसिद्धौ, नः=अस्माकं, महाराजमातरं=दर्शकजननीम्, अनु

कम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः ।'' इत्यमरः । दर्शनं=दृश्+ल्युट् । यहाँपर दृश-धातु ज्ञानके अर्थमें है । सविज्ञानं=विज्ञानेन सहितम्, ''तेन सहेति तुल्ययोगे'' इस सूत्रसे तुल्ययोग बहुव्रीहि समास हुआ है, ''वोपसर्जनस्य'' इस सूत्रसे विकल्पसे ''सह'' के स्थानमें ''स'' आदेश है । विज्ञानका यहाँपर अनुभव अर्थ है । एनम्= इदम् शब्दकी द्वितीयाके एकवचनमें अन्वादेशमें ''एन'' आदेश हुआ है । उप-सर्पाव.=उप—उपसर्गपूर्वक ''सृप्लृ गतौ'' धातुके लट्के वस् विभक्तिका रुप ।

काञ्चुकीय—तपस्विन्=तपः अस्याऽस्तीति तपस्वी, तत्सम्बुद्धौ, तपस-शब्दसे ''तपःसहस्राभ्यां विनीनी'' इस सूत्रसे विनिप्रत्यय ।

यौगन्धरायण—आत्मगत=स्वगतम् । ''अश्राव्यं स्वगतं मतम्'' अर्थात् जो अपने ही लिए वचन होता है । उसे ''स्वगत'' कहते हैं । श्लिष्यते=''श्लिष आलिङ्गने'' धातु परस्मैपदी है इसलिए उसको आत्मने पदमें प्रयोग करनेसे व्याकरण लक्षणसे हीन होनेसे ''च्युतसंस्कृति'' नामक दोष हो गया है । श्रूयताम्

काञ्चुकीय—हे तपस्वी जी !

यौगन्धरायण—''तपस्विन्'' ऐसा गुणविशिष्ट बातचीत है, परन्तु जान-पहचान न होनेसे मेरे मनमें जँच नहीं रहा है ।

काञ्चुकीय—महाशय ! सुनिए । गुरुजनोंसे ''दर्शक'' नाम रक्खे गये हमारे महाराज-की बहन ये पद्मावती हैं । वैसी ये तपोवनमें विद्यमान राजमाता महादेवीके पास जाकर

स्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ ६ ॥

ज्ञाता=आज्ञप्ता, तत्रभवत्या=माननीयया देव्या, अनुज्ञाता=आज्ञप्ता, राजगृहम् =सौधं, यास्यति=गमिष्यति । आश्रमपदे=तपोवनस्थाने, वासः=निवासः, अभिप्रेतः=उद्दिष्टः, तत्=तस्मात् कारणात्, भवन्तः=यूयम् ।

अन्वयः—तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् तपोधनानि वनात् स्वैरम् उपनयन्तु । हि धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडां न इच्छेत् एतत् अस्याः कुलव्रतम् ॥ ६ ॥

तीर्थोदकानीति । (भवन्तः=तपस्विनः) तीर्थोदकानि=तीर्थजलानि, समिधः=काष्ठानि, कुसुमानि=पुष्पाणि, दर्भान्=कुशान्, एतादृशानि, तपोधनानि=नियमाचरणद्रव्याणि, वनात्=अरण्यात् स्वैरं=स्वच्छन्दम्, इच्छा-

---

="श्रु" धातुसे कर्ममें लोट्का प्रयोग । अभिहितनामधेयस्य=नाम एव नामधेयं, नामन्-शब्दसे "वा भागरूपनामभ्यो धेयः" इससे स्वाऽर्थं (प्रकृत्यर्थ) में धेय प्रत्यय । "नामधेयं च नाम च" इत्यमरः । अभिहितं नामधेयं यस्य सः, तस्य (बहु०) । महाराजदर्शकस्य=महाराजश्चाऽसौ दर्शकः, तस्य (कर्मधा०) । नः="अस्माकम्" के स्थानमें "बहुवचनस्य वस्नसौ" इस सूत्रसे नस् आदेश । अभिगम्य=अभि+गम्+क्त्वा (ल्यप्) । अनुज्ञाता=अनु+ज्ञा+क्त+टाप् यास्यति=आ+लृट्+तिप् ।

तीर्थोदकानीति । तीर्थोदकानि=तीर्थस्य उदकानि (ष० त०), तानि । समिधः ="काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित् स्त्रियाम् ।" इत्यमरः । दर्भान्="अस्त्री

उनकी आज्ञाके अनुसार "राजगृह" नामक स्थान वा राजप्रासाद (दरबार) में जायँगी । इस कारणसे इनको आज इस आश्रममें निवास करना अभीष्ट है । इस कारणसे आप लोग—

(हे तपस्वियों ! आप लोग) तीर्थजल, समिधाएँ, फूल और कुश इन सब तपस्याके पदार्थोंको तपोवनसे प्राप्त करें । क्योंकि धर्मको पसन्द करनेवाली राजकुमारी (पद्मावती) तपस्वियोंमें धर्ममें बाधाको नहीं चाहेंगी, यह इनकी वंशपरम्पराका आचरण है ॥ ६ ॥

यौगन्धरायणः—(स्वगतम्) एवम्! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति। ततः—

नुसारम्, उपनयन्तु=प्राप्नुवन्तु। हि=यस्मात्कारणात्, धर्मप्रिया=अभीष्टपुण्या, नृपसुता=भर्तृदारिका, राजकुमारी पद्मावतीति भावः। तपस्विषु=तापसेषु, धर्मपीडां=पुण्याचरणबाधां, न इच्छेत्=नो वाञ्छेत्, एतत्=धर्माऽऽचरणानुकूल्यम्, अस्याः=नृपसुतायाः, पद्मावत्या इति भावः। कुलव्रतं=वंशाचरणम्, अस्तीति शेषः॥ ६॥

यौगन्धरायण इति। मगधराजपुत्री=मगधेश्वरकुमारी, पुष्पकभद्रादिभिः=पुष्पकभद्रप्रभृतिभिः, आदेशिकैः=दैवज्ञैः, स्वामिनः=पत्युः, राज्ञ उदयनस्येति भावः। देवी=महिषी, आदिष्टा=सूचिता। ततः=तस्मात्कारणात्।

कुशं कुथो दर्भः पवित्रम्" इत्यमरः। तपोधनानि=तपसो धनानि (ष० त०), तानि। वनात्=अपादानमें पञ्चमी। स्वैरम्=ईरणम् ईरः, "इर गतौ" धातुसे भावमें घञ्। स्वेन (छन्देन) ईरः, तद्यथा तथा (क्रि० वि०)। स्वैरम् "कर्तृकरणे कृता बहुलम्" इस सूत्रसे तृतीयातत्पुरुष समास। "स्वादीरेरिणोः" इस सूत्रसे वृद्धि हुई है। उपनयन्तु=उप+नी+लोट्+झि। आमन्त्रण वा प्रार्थनामें लोट्। हि="हि हेतावधारणे" इत्यमरः। धर्मप्रिया=धर्मः प्रियो यस्याः सा (बहु०)। तपस्विषु=तपस्+विनिः। इच्छेत्=इष्+विधिलिङ्+तिप्। वसन्ततिलका छन्द है॥ ६॥

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिः=पुष्पकश्च भद्रश्च पुष्पकभद्रौ (द्वन्द्व०), तौ आदी येषां ते, तैः (बहु०)। आदेशिकैः=आदेशेन चरन्तीति आदेशिकाः, तैः, "आदेश" शब्दसे "चरति" इस सूत्रसे ठक् प्रत्यय हुआ है। जो फलका आदेश करके विचरण करते हैं उनको आदेशिक अर्थात् दैवज्ञ (ज्योतिषी) कहते हैं। स्वामिनः=स्वम् (धनम्) अस्ति यस्य सः स्वामी तस्य, 'स्व' शब्दसे "स्वामिन्नैश्वर्ये" इस सूत्रसे "आमिनच्" प्रत्ययाऽन्त निपातन हुआ है। "स्वामी त्वीश्वरः पतिरीशिता" इत्यमरः।

यौगन्धरायण—(स्वगत) ऐसा! ये वही मगधेश्वरकी कुमारी पद्मावती नामकी हैं, जिन्हें पुष्पक और भद्र आदि ज्योतिषियोंने "महाराज उदयनकी महारानी होंगी" ऐसा कहा है। इस कारणसे—

२ स्व०

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जइ । [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।]

अन्वयः—प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पात् उपजायते । भर्तृदाराऽभिलाषित्वात् मे अस्यां महती स्वता ॥ ७ ॥

प्रद्वेष इति । प्रद्वेषः=अतिशयाऽप्रीतिः, बहुमानः=अत्यादरः, वा=अथवा, सङ्कल्पात्=मानसकर्मणः, उपजायते=उत्पद्यते, कस्यचिज्जनस्य कस्मिंश्चिदपि जने स्वमनोव्यापारादेव रागो विरक्तिर्वा उत्पद्यत इति भावः। अतः भर्तृदाराऽभिलाषित्वात्="इयं स्वामिन उदयनस्य पत्नी भवतु" इत्यभिलाषुकत्वादित्यर्थः । मे=मम यौगन्धरायणस्य, महती=अधिका, स्वता=आत्मीयता, अस्तीति शेषः ॥ ७ ॥

वासवदत्तेति । राजदारिका=राजकुमारी । अत्र=अस्यां (पद्मावत्याम्), भगिनिकास्नेहः=स्वसृप्रणयः । सम्पद्यते=उत्पद्यते ।

प्रद्वेष इति । प्रद्वेषः प्रकृष्टो द्वेषः (गति०) । बहुमानः=बहुश्चाऽसौ मानः (क० धा०) । उपजायते=उप+जन्+लट्+त । भर्तृदाराऽभिलाषित्वात्= भर्तुः दाराः (ष० त०) । "भार्या जायाऽथ पुंभूम्नि दाराः" इस कोशकी उक्तिके अनुसार 'दार' शब्द पत्नीवाचक होकर भी पुंलिङ्गमें और नित्य बहुवचनाऽन्त है । भर्तृदारान् अभिलषतीति तच्छीलः भर्तृदाराऽभिलाषी, भर्तृदार–अभि+ लष्+णिनिः (उपपद०) । तस्य भावः तत्त्वम्, तस्मात् भर्तृदाराभिलाषिन्- शब्दसे "तस्य भावस्त्वतलौ" इस सूत्रसे "त्व" प्रत्यय होकर "त्वान्तं क्लीबम्" इस लिङ्गानुशासनके नियमसे नपुंसकलिङ्गी हुआ है । हेतुमें पञ्चमी । स्वता= स्वस्य भावः, "स्व" शब्दसे पूर्वसूत्रसे तल् प्रत्यय होकर "तलन्तं स्त्रियाम्" इस लिङ्गाऽनुशासन सूत्रसे स्त्रीलिङ्गमें होनेसे टाप् । अनुष्टुप् छन्द है ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—राजदारिका=उदरं दृणाति (भिनत्ति) इति, ऐसा विग्रहकर दृ धातुसे ण्वुल् प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् और "प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात

अप्रीति वा सम्मान अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार उत्पन्न होता है । "ये मेरे स्वामी उदयनकी पत्नी हों" ऐसा अभिलाप करनेसे मेरी इन (पद्मावती) में अधिक आत्मीयता है ॥७॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) "राजकुमारी" ऐसा सुनकर इन (पद्मावती) में मेरा बहनका सा स्नेह उत्पन्न हो जाता है ।

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च ।)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्समपदं पविसदु । [एत्वेतु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु ।]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी ।)

तापसी—साअदं राअदारिआए । [स्वागतं राजदारिकायाः ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ । अभिजणाणुरूव खु से

तत इति । सपरिवारा=परिजनसहिता, सखीयुक्तेति भावः । चेटी=दासी ।

चेटीति । एतु एतु=आगच्छतु आगच्छतु । भर्तृदारिका=राजकुमारी, आश्रमपदम्=आश्रमस्थानम् । प्रविशतु=प्रवेशं करोतु ।

तत इति । तापसी=तपस्विनी ।

तापसीति । स्वागतं=शुभागमनम् ।

वासवदत्तेति । इयं=निकटस्था, सा=प्रसिद्धा । अस्याः=राजकुमार्याः,

---

इदाप्यसुपः" इससे इत्व हुआ है। राज्ञो दारिका (ष० त०) । भगिनिकास्नेहः= अनुकम्पिता भगिनी भगिनिका, भगिनी शब्दसे "अनुकम्पायाम्" इस सूत्रसे कप्रत्यय "केऽण" इससे पूर्व पदका ह्रस्व और टाप् प्रत्यय । भगिनिकायाः स्नेहः (ष० त०) ।

सपरिवारा=परिवारैः सहिता (तुल्ययोगबहु०)। चेटी=चेटतीति चेटी, "चिट परप्रेष्ये" इस धातुसे "पचाद्यच्" होकर स्त्रीत्वविवक्षामें "पुंयोगादाख्यायाम्" इस सूत्रसे ङीप् ।

चेटी—भर्तृदारिका=भर्तुः (राज्ञः) दारिका (ष० त०) । "कुमारी भर्तृदारिका" इत्यमरः ।

तापसी—तपः अस्ति यस्याः सा, तपस्-शब्दसे "अण् च" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें "टिड्ढाणञ्०" इत्यादि सूत्रसे ङीप् । स्वागतं= शोभनम् आगतम्, "कुगतिप्रादयः" इससे गति समास हुआ है।

वासवदत्ता—अभिजनाऽनुरूपम्=अभिजनस्य अनुरूपम् (ष० त०) ।

(तब पद्मावती सखियों और दासीके साथ प्रवेश करती है)

दासी—आइए आइए ! राजकुमारी इस आश्रम स्थानमें प्रवेश करें।

(तब बैठी हुई तपस्विनी प्रवेश करती है)

तापसी—राजकुमारीका स्वागत है।

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह वही राजकुमारी हैं। कुलके अनुसार ही इनका

रूवं । [इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् ।]

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अदिहि-जणस्स सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामाऽतिथि-जनस्य स्वकगेहम् ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्ताऽस्मि । अनेन बहुमानवचने-नानुगृहीताऽस्मि ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा । [न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

रूपं=सौन्दर्यम्, अभिजनाऽनुरूपं=वंशसदृशम् ।

पद्मावतीति । आर्ये=पूज्ये, वन्दे=अभिवादनं करोमि ।

तापसीति । चिरं=बहुकालं, जीव=प्राणान् धारय, दीर्घायुर्भवेति भावः । जाते=पुत्रि । स्वकगेहम्=आत्मगृहम् ।

पद्मावतीति । भवतु भवतु=अस्तु अस्तु, उपचारप्रदर्शनं नावश्यकमिति भावः । विश्वस्ता=विश्वासयुक्ता । बहुमानवचनेन अधिकसत्कारवाक्येन, अनु-गृहीता=अनुग्रहयुक्ता ।

वासवदत्तेति । रूपम् एव=सौन्दर्यमात्रम्, न हि । वाक्=वाणी ।

"सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनाऽन्वयौ ।" इत्यमरः ।

पद्मावती—वन्दे="वदि अभिवादनस्तुत्योः" धातुसे लट्+इट् । विश्व-स्ता=वि+श्वस्+क्त+टाप् । बहुमानवचनेन=बहुः मानः यस्मिंस्तत् बहु-मानम् (बहु०) । बहुमानं च तद् वचनं, तेन (क० धा०) । अनुगृहीता= अनु+ग्रह+क्तः+टाप् । "ग्रहोऽलिटि दीर्घः" इससे दीर्घ ।

सौन्दर्य है ।

पद्मावती—आर्ये ! मैं अभिवादन करती हूँ ।

तापसी—बहुत समय तक जीओ । बेटी ! प्रवेश करो, प्रवेश करो । तपोवन अतिथि जनका अपना घर होता है ।

पद्मावती—अच्छा, अच्छा । आर्ये ! मैं विश्वस्त हूँ । इस बहुत सत्कारयुक्त वचनसे अनुगृहीत हूँ ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) इनका केवल सौन्दर्य ही नहीं वचन भी मधुर है ।

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोवि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

चेटी—अस्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जणीए। सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि। [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एदा अ अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ताः।]

तापसी—अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि। [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

तापसीति। भद्रे=कल्याणि, भद्रमुखस्य=शुभसूचकवदनस्य, प्रियदर्शनस्येति भावः। न वरयति=वरणं नो करोति।

चेटीति। उज्जयिन्याः=विशालनगर्याः। दारकस्य=पुत्रस्य, कारणात्=हेतोः। दूतसम्पातं=सन्देशहरप्रेषणम्।

वासवदत्तेति। एषा=पद्मावती, आत्मीया=स्वकीया, भ्रातृसम्बन्धस्य भावित्वादिति भावः।

तापसीति। अर्हा=योग्या। उभे=द्वे, राजकुले=नृपवंशौ, दर्शकप्रद्योतवंशौ। महत्तरे=अतिमहती।

तापसी—भद्रमुखस्य=भद्रं मुखं यस्य, तस्य (बहु०)।

चेटी—दूतसम्पातं=दूतानां सम्पातः, तम् (ष० त०)। "स्यात्सन्देशहरो दूतः" इत्यमरः।

तापसी—अर्हा=अर्हतीति, "अर्ह पूजायाम्" धातुसे, पचाद्यच्+टाप्।

तापसी—कल्याणि ! शुभ आकृतिवाले दर्शककी इन बहनको कोई राजा वरण नहीं करता है ?

दासी—उज्जयिनीके प्रद्योत नामके राजा हैं। उन्होंने अपने पुत्रके लिए दूत भेजा है।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अच्छा, अच्छा। ये इस समय अपनी ही हो गईं।

तापसी—इन (राजकुमारी) का यह आकार ज्यादा सम्मानके योग्य ही है। दोनों राजवंश बहुत बड़े हैं ऐसा सुना जाता है।

पद्मावती—अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं ? अभिप्पेदप्पदाणे नतवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति । [आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् ? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति ?]

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या । भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

पद्मावतीति । मुनिजनः=तापसजनः । आत्मानं=स्वम् । अनुग्रहीतुम्=अनुगृहीतं कर्तुम् । अभिप्रेतप्रदानेन, अभीष्टपदार्थवितरणेन, उपनिमन्त्र्यतां=निमन्त्रितः क्रियताम् । अत्र=तपोवने ।

काञ्चुकीय इति । भवत्या=भर्तृदारिकया । अभिप्रेतम्=अभीष्टम् । शृण्वन्तु=आकर्णयन्तु । अत्रभवती=माननीया । विस्रम्भेण=विश्वासेन, उत्पादितविस्रम्भा=जनितविश्वासा, धर्मार्थं=पुण्याचरणार्थम्, अर्थेन=दातव्यवस्तुरूपेण हेतुना, उपनिमन्त्रयते=उपनिमन्त्रणं करोति ।

महत्तरे=अतिशयेन महती, महत् शब्दसे "द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ" इस सूत्रसे तरप् प्रत्यय अनुग्रहीतुम=अनु+ग्रह+तुमुन् । अभिप्रेतप्रदानेन=अभिप्रेतस्य प्रदानं, तेन (ष० त०) । उपनिमन्त्र्यताम्=उप+नि+मन्त्रि लोट् (कर्ममें)+त ।

काञ्चुकीयः—उत्पादितविस्रम्भा=उत्पादितो विस्रम्भो यस्याः सा (बहु०) । धर्माऽर्थम्=धर्माय इदं यया तया "चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः" इस सूत्रसे "अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्" इस वार्तिकके अनुसार च० त० । उपनिमन्त्रयते=उप+नि+मन्त्रि+णिच्+लट्+त ।

वितरणीयानर्थान् प्रदर्शते—कस्याऽर्थं इति ।

पद्मावती—आर्य ! अपनेको अनुगृहीत करनेके लिए आपने किसी तपस्वीको देखा ? अभीष्ट वस्तुके दानके लिए तपस्वीको निमन्त्रण दें । यहाँपर कौन क्या चाहता है ?

काञ्चुकीय—आपने जैसी इच्छा की (वैसा ही करूँगा) । आश्रम में वास करनेवाले हे तपस्वियों ! आपलोग सुनिए सुनिए, यहाँ माननीया मगध राजकुमारी आपलोगोंके इस स्वागतसे विश्वस्त होकर धर्मके लिए आपलोगोंको पदार्थ देनेके लिए निमन्त्रण देती हैं ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—कस्य कलशेन अर्थः ? को यथानिश्चितं वासो मृगयते ? दीक्षां पारितवान् (कः) पुनः गुरोः यत् देयं भवेत् किम् इच्छति ? इह धर्माऽभिराम-प्रिया नृपजा आत्माऽनुग्रहम् इच्छति । यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तद् वदतु । अद्य कस्य किं दीयताम् ? ॥ ८ ॥

कस्येति । कस्त=कतमस्यः तपस्विन इति शेषः । कलशेन=घटेन, अर्थः=प्रयोजनं, वर्तत इति शेपः । कः कलशं कामयत इति भावः । कः=तपस्वी, यथानिश्चितं =निर्णयानुसारं, स्वाश्रमाऽनुरूपमिति भावः । वासः=वस्त्रं, मृगयते=अन्विष्यति, कामयते इति भावः । दीक्षाम् = अध्ययनार्थं व्रतं, पारितवान् = समापितवान्, कः स्नातक इति शेषः । पुनः = भूयः, समावर्तनाऽनन्तरमिति भावः । गुरोः= आचार्यस्य, आचार्यायेत्यर्थः । यत् = वस्तु, देयं = दातव्यं, भवेत्, स्यात्, तादृशं किं = वस्तु, इच्छति=वाञ्छति । इह = अत्र, आश्रम इति भावः । धर्माऽभिराम-

---

कस्येति । कलशेन=“हेतौ” इस सूत्रसे फलको भी हेतु कहनेसे हेतुमें तृतीया । यथानिश्चितं = निश्चितम् अनतिक्रम्य (°अव्ययी०) । वासः = “वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकम् ।” इत्यमरः । यह “मृगयते” इस पदका कर्म है । मृगयते = “मृग अन्वेषणे” इस चुरादि धातुके लट्का ‘त’ विभक्तिका रूप । पारितवान् = “पार (तीर) कर्मसमाप्तौ” इस चुरादि धातुसे क्तवतु प्रत्यय । गुरोः=सम्प्रदानकी सम्वन्ध विवक्षामें पष्ठी । देयं = दातुं योग्यं, ‘डुदाञ् दाने’ धातुसे “अचो यत्” इससे यत् प्रत्यय और “ईद्यति” इससे आकारके स्थानमें ईत्व और गुण । धर्माऽभिरामप्रिया=अभिरमणम् अभिरामः, अभि—उपसर्गपूर्वक “रमु क्रीडायाम्” धातुसे “भावे” इस सूत्रसे भावमें घञ् प्रत्यय । धर्मे अभिरामः

किसे कलशका प्रयोजन है ? कौन-सा तपस्वी निर्णयके अनुसार वस्त्र चाहता है ? अध्ययनार्थ व्रतको समाप्त करनेवाला कौन सा स्नातक गुरुको देनेके योग्य वस्तुको चाहता है ? इस तपोवनमें धार्मिकोंमें प्रीति करनेवाली राजकुमारी (तपस्वियोंकी याचनासे) अपने ऊपर अनुग्रह चाहती हैं । जिसको जो वस्तु अभीष्ट है उसे कहें । आज किसको क्या दिया जाय ? ॥ ८ ॥

यौगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः । (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी ।

पद्मावती–दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं । [दिष्टया सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।]

प्रिया = प्रियधार्मिकजना, नृपजा = राजकुमारी, पद्मावतीति भावः । आत्माऽनुग्रहम् = आत्मनि अनुकम्पाम्, इच्छति = कामयते, तापसेभ्योऽभीष्टवस्तुवितरणेनेति शेषः । अतः, यस्य = तपस्विनः, यद् = वस्तु, समीप्सितं = समभीष्टम्, अस्ति = विद्यते, तद् = वस्तु, वदतु = कथयतु, ज्ञापयत्विति भावः । अद्य = अस्मिन्दिने, कस्य = कस्मै, जनायेति भावः । किं = वस्तु, दीयतां = वितीर्यताम् ॥ ८ ॥

यौगन्धरायण इति । हन्त = हर्षे, उपायः = साधनं, भगिनीन्यासरूपमिति भावः । दृष्टः = अवलोकितः । उत्तरत्र "प्रकाशम्" अस्य पदस्य सत्त्वाद्वाक्यमिदं स्वगतत्वेनोक्तं बोध्यम्, प्रकाशं = सर्वश्राव्यं यथा तथा । अहं = ब्राह्मणः अर्थी = याचकः, अस्मीति शेषः ।

पद्मावतीति । दिष्टया = भाग्येन । तपोवनाऽभिगमनम् = आश्रमपर्यटनम् । सफलं = सार्थकं, सम्पन्नमिति शेषः ।

(अभिरुचिः) येषां ते धर्माभिरामाः, "सप्तमी विशेषणे वहुव्रीहौ" इस सूत्रमें "सप्तमी" इस पदसे ज्ञापित व्यधिकरण वहुव्रीहि । धर्माऽभिरामाः प्रिया यस्याः सा (वहु०) । नृपजा=नृपात् जाता, नृप–उपपदपूर्वक "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे "पञ्चम्यामजातौ" इस सूत्रसे डप्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षामें "अजाद्यतष्टाप्" इससे टाप् प्रत्यय । आत्माऽनुग्रहम् = आत्मनि (विषये) अनुग्रहः, तम् (स० त०), भवतां याचनयेति शेषः । समीक्षितम् = आप्तुम् इष्टम् ईप्सितम् सन्नन्त "आप्लृ व्याप्तौ" धातुसे क्त प्रत्यय, "आप्ज्ञप्यृधामीत्" इस सूत्रसे आप्के स्थानमें ईत्व । सम्यक् ईप्सितम् (गति०) । कस्य = सम्प्रदानकी सम्बन्ध विवक्षामें षष्ठी । दीयताम् = दा धातुसे कर्ममें लोट् । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ८ ॥

यौगन्धरायणः—प्रकाशं = "सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्" साहित्यदर्पणकी इस उक्तिके अनुसार सबको सुनाकर वोलनेमें "प्रकाशम्" ऐसा प्रयोग होता है । अर्थी = "असन्निहितः अर्थः अस्याऽस्तीति" ऐसा विग्रह कर 'अर्थ' शब्दसे "अर्थाच्चा-

---

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहा ! उपाय देखा गया । (सुनाकर) महोदय ! मैं अर्थी (याचक) हूँ ।

पद्मावती—भाग्यसे मेरा तपोवनमें आना सफल हुआ ।

तापसी—संतुट्ठतवस्सिजणं इदं अस्समपदं। आअन्तुएण इमिणा होदव्वं।
[सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम्। आगन्तुकेनानेन भवितव्यम्।]

काञ्चुकीयः—भोः किं क्रियताम् ?

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चिद् कालं परिपाल्यमानाम्। कुतः—

तापसीति। आश्रमपदं=तपोवनस्थानं, सन्तुष्टतपस्विजनं=ससन्तोषतापसम्, अस्तीति शेषः। अनेन=अर्थिना, आगन्तुकेन=देशान्तरादायातेन, भवितव्यं= भव्यम्।

काञ्चुकीय इति। भोः=हे महाशय।, कि क्रियतां=किं विधीयताम्, भवते किं प्रदेयमिति भावः।

यौगन्धरायण इति। इयं=निकटवर्तिनी, मे=मम, स्वसा=भगिनी, प्रोषितभर्तृकां=प्रवासोषितपतिकाम्, इमां=मत्स्वसारम्, अत्रभवत्या=माननीयया, राजकुमार्येति भावः। कञ्चित्कालं=किञ्चित्कालपर्यन्तं, परिपाल्यमानां=संरक्ष्यमाणाम्, इच्छामि=वाञ्छामि। कुतः=कस्मात्।

ऽसन्निहिते" इस सूत्रसे इनि प्रत्यय हुआ है। अर्थ सन्निहित होनेपर मतुप् प्रत्यय होकर "अर्थवान्" ऐसा रूप होता है। "वनीयको याचनको मार्गणो याचकाऽर्थिनौ।" इत्यमरः।

तापसी—आश्रमपदम्=आश्रमस्य पदम् (ष० त०), "पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माऽङ्घ्रिवस्तुषु।" इत्यमरः। सन्तुष्टतपस्विजनं=सन्तुष्टाः तपस्विजना यस्मिस्तत् (बहु०)। भवितव्यं=भू+तव्यत्, भाववाच्य प्रयोग है।

काञ्चुकीयः—क्रियताम्=कृ+लोट् (कर्मणि)+त।

यौगन्धरायणः—प्रोषितभर्तृकां=प्रोषितः भर्ता यस्याः सा प्रोषितभर्तृका, ताम् (बहु०)। "नद्यृतश्च" इस सूत्रसे समासाऽन्त कप् प्रत्यय, स्त्रीत्वविवक्षामें टाप्। कालं="कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इस सूत्रसे कालके अत्यन्त संयोगमें द्वितीया। परिपाल्यमानां=परिपाल्यत इति परिपाल्यमाना, ताम्, परिपाल+

तापसी—इस आश्रममें सब तपस्वी सन्तुष्ट हैं। यह (भागनेवाला) कोई आगन्तुक होगा।

काञ्चुकीय—महाशय! क्या करूँ ?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है। इनके पति परदेशमें गये हुए हैं, इनको कुछ समय तक राजकुमारी संरक्षण करें मैं यही चाहता हूँ। क्योंकि—

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

अन्वयः—अर्थैः न एव, भोगैः अपि न; वस्त्रैः (अपि) न कार्यम् । अहं वृत्तिहेतोः काषायं प्रपन्नो न । धीरा दृष्टधर्मप्रचारा इयं कन्या मे भगिन्याः चरित्रं रक्षितुं शक्ता ।

कार्यमिति । अर्थैः=धनैः, न एव, 'कार्यम्' इत्यत्र सम्बन्धः । तथा भोगैः अपि=भोगसाधनपदार्थैः अपि, न एवं च वस्त्रैः अपि, न कार्यं=नो प्रयोजनम्, ममेति शेषः । अहं=ब्राह्मणः, वृत्तिहेतोः=जीविकार्थं, काषायं=कषायरक्तवस्त्रं, प्रपन्नः=प्राप्तः, न अस्मीति शेषः । स्वप्रयोजनं प्रतिपादयति—धरेति । धीरा=धैर्यशालिनी, विदुषी वा, दृष्टधर्मप्रचारा=अवलोकितपुण्यप्रचारा, इयं निकटवर्तिनी, कन्या=कुमारी, राजकुमारी पद्मावतीति भावः । मे=मम, भगिन्याः=स्वसुः, आवन्तिकाया इति भावः, चारित्रं=शीलं, रक्षितुं=त्रातुं, शक्ता=समर्था, अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

लट् (शानच्) कर्मणि ।

कार्यमिति । अर्थैः="अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।" इत्यमरः । भोगेन=यहाँपर भोगका भोग्य पदार्थमें लक्षणा है । कार्यम्=कृ+ण्यत् । वृत्तिहेतोः=वृत्तेर्हेतुः, तस्मात् (ष० त०), "विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्" इस सूत्रसे हेतुमें पञ्चमी । "आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तनजीवने ।" इत्यमरः । काषायं=कषायेण (धातुविशेषेण) रक्तं वस्त्रं, तत्. 'कषाय' शब्दसे "तेन रक्तं रागात्" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय होकर "तद्धितेष्वचामादेः" इससे आदि वृद्धि हुई है । प्रपन्नः=प्र–उपसर्गपूर्वक "पद गतौ" धातुसे "गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च" इस सूत्रसे कर्तामें क्तप्रत्यय होकर "रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः" इससे 'दत' दोनों में नत्व हुआ है । दृष्टधर्मप्रचारा=धर्मस्य प्रचारः (ष० त०) । दृष्टो धर्मप्रचारो यया सा (बहु०) । चारित्रं="चर्यते अनेन" ऐसा विग्रह कर "चर" धातुसे "अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः" इस सूत्रसे इत्र प्रत्यय होकर "चरित्रम्" ऐसा पद बनता है । चरित्रम् एव स्वार्थमें

धनसे मुझे काम ही नहीं है, इसी तरह न भोगोंसे न वस्त्रोंसे ही काम है । मैंने जीविकाके लिए गेरुवा वस्त्र नहीं पहना है । विदुषी और धर्मप्रचारकी देखनेवाली यह राजकुमारी मेरी बहनके चरित्रकी रक्षा कर सकती है ॥ ९ ॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगन्धरायणो ? होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि। [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ? भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति।]

काञ्चुकीयः—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।

वासवदत्तेति। हं=रोषभाषणद्योतकमव्ययमिदम्। इह=अत्र पद्मावतीसमीपे, निक्षेप्तुकामः=न्यस्तुकामः, भवतु=अस्तु, अविचार्य=विमर्शं न कृत्वा, क्रमं=पादविन्यासं, न करिष्यति=नो विधास्यति, आर्ययौगन्धरायण इति शेषः।

काञ्चुकीय इति। भवति=माननीये, हे राजकुमारीति भावः। अस्य=अर्थिनः, यौगन्धरायणस्येति भावः। महती=गुर्वी, व्यपाश्रयणा=आश्रययाचनेति भावः। कथं=केन प्रकारेण, प्रतिजानीमः=प्रतिज्ञां कुर्मः, सर्वतोभावेन तव भगिनीं रक्षिष्याम इति प्रतिश्रुतिं कुर्म इति भावः। कुतः=कस्मात्।

अन्वयः—अर्थः सुखं दातुं भवेत्, प्राणाः सुखं दातुं (भवेयुः), तपः सुखं

अण्। शक्ता=शक्+क्त+टाप्। वैश्वदेवी छन्द, उसका लक्षण है—'बाणाऽश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ'' ॥ ९ ॥

वासवदत्ता—हम्=''हं रोषभाषणेऽनुनयेऽपि च।'' इति हैमः। निक्षेप्तुकामः=निक्षेप्तुं कामः (अभिलाषः) यस्य सः (बहु०)। ''तुं काममनसोरपि'' इससे 'तुम्' के मकारका लोप हुआ है। करिष्यति=कृ+लृट्+तिप्।

काञ्चुकीयः—व्यपाश्रयणा=''व्यपाश्रयणम्'' ऐसा विग्रह करके वि+अप्+आङ्-उपसर्गपूर्वक ''श्रिञ् सेवायाम्'' इस धातुसे बाहुलकात् स्त्रीलिङ्गमें युच् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय। प्रतिजानीमः=प्रति-उपसर्गपूर्वक ''ज्ञा अवबोधने'' धातुसे लट्+मस्। कुतः—कस्मात् ऐसा विग्रहकर तसिल्, ''पञ्चम्यास्तसिल्'' इससे तसिल् प्रत्यय।

सुखमिति। सुखम्=दानक्रियाका विशेषण है। दातुं=दा+तुमुन्। ''दातुं

वासवदत्ता—(मन ही मन) ओः! आर्य यौगन्धरायण पद्मावतीके पास मुझे धरोहरके रूपमें सौंपना चाहते हैं। अच्छा, ये विचार किए बिना काम नहीं करेंगे।

काञ्चुकीय—माननीये ! इनकी यह आश्रय लेनेकी प्रार्थना कठिन है। कैसे प्रतिज्ञा करें ? क्योंकि—

धन, प्राण, तपस्याका फल और सब कुछ देना सुकर है परन्तु किसीके न्यास (धरोहर)-

सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ १० ॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि विआरिदुं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

दातुं भवेत् । अन्यत् सर्वं सुखं दातुं भवेत्, (परम्) न्यासस्य रक्षणं दुःखं भवेत् ॥ १० ॥

सुखमीति । अर्थः=धनं, सुखं=सुखपूर्वकं यथा तथा, दातुं=विपरीतुं, भवेत्=स्यात् । प्राणाः=असवः, सुखम्=अनायासं यथा तथा, दातुं=समर्पयितुं, (भवेयुः=स्युः), तपः=तपश्चरणं, तज्जन्यं फलमिति भावः, सुखम्=आयासं विना, दातुं=वितरीतुं, भवेत्=स्यात्, अन्यत्=अपरं, सर्वं=सकलं, सुखं=कष्टं विना, दातुं=वितरीतुं, भवेत्=स्यात्; परं, न्यासस्य=निक्षेपस्य, रक्षणं=पालनं, दुःखं=दुष्करं, भवेदिति शेषः ॥ १० ॥

पद्मावतीति । उद्घोष्य=उच्चैर्घोषणां कृत्वा । विचारयितुं=विचिन्तयितुम् । अयुक्तम्=अनुचितम् । एषः=काषायवस्त्रधारी, यत्=भगिनिकान्यासरूपं वचनम् । आर्यः=पूज्यः, अनुतिष्ठतु=करोतु ।

काञ्चुकीय इति । अनुरूपं=योग्यम्, अभिहितम्=उक्तम् ।

भवेत्" यहाँपर "शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहाऽर्हाऽस्त्यर्थेषु तुमुन्" इस सूत्रसे अस्त्यर्थक भू धातु उपपद होनेपर दा धातुसे तुमुन् प्रत्यय हुआ है। प्राणाः="पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः" इत्यमरः । प्राण शब्दके बहुवचनान्त होनेसे "भवेयुः" इस तरह बहुवचनविपरिणाम करना चाहिए । तपः=तपश्चरण क्रिया नहीं दी जा सकती है ऐसी तात्पर्याऽनुपपत्तिसे तपःफलमें लक्षणा हुई है । अनुष्टुप् छन्द है ॥ १० ॥

पद्मावती—उद्घोष्य=उद्+घुष्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । विचारयितुम्=वि+चर+णिच्+तुमुन् ।

काञ्चुकीयः—अनुरूपं=रूपस्य योग्यम् ऐसा विग्रह कर योग्यताके अर्थमें

की रक्षा करना दुःखपूर्ण (दुष्कर) है ॥ १० ॥

पद्मावती—आर्य ! पहले "कौन क्या चाहता है ?" ऐसी घोषणा कर अब आगा-पीछा करना उचित नहीं है । ये जो कहते हैं, आप उसे करें—

काञ्चुकीय—यह आपने उचित कहा ।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी। [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी।]

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे !। [चिरं जीवतु भद्रे !]

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा। (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या। वत्से ! उपसर्पात्रभवतीम्।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गई। एसा गच्छामि मन्दभाआ। [का

चेटीति। सत्यवादिनी=तथ्यभाषिणी।

तापसीति। भद्रे=कल्याणि, चिरं=बहुकालपर्यन्तं, जीवतु=प्राणान् धारयतु भवतीति शेषः।

काञ्चुकीय इति। तथा=तेनैव प्रकारेण, करिष्यामीति शेषः। भोः=महाशय ! अत्रभवत्या=माननीयया, राजकुमार्येति भावः। अभ्युपगतम्=अङ्गीकृतम्।

यौगन्धरायण इति। तत्रभवत्या=माननीयया, पद्मावत्येति भावः। अनुगृहीतः=कृतानुग्रहः। वत्से=वात्सल्यभागिनि, अत्रभवतीं=मान्यां पद्मावतीमिति भावः। उपसर्प=समीपं गच्छ।

वासवदत्तेति। का=कीदृशी, गतिः=स्थितिः। मन्दभागा=अल्पभाग्या,

"अव्ययं विभक्ति०" इत्यादिसे अव्ययीभाव समास। अभिहितम्=अभि+धा+क्तः। "दधातेर्हिः" इस सूत्रसे 'धा' के स्थानमें "हि" आदेश।

चेटी—सत्यवादिनी=सत्यं वदतीति तच्छीला, सत्य+वद्+णिनिः+ङीप्।

काञ्चुकीयः—अभ्युपगतम्=अभि+उप+गम्+क्तः। "अङ्गीकाराऽभ्युपगमप्रतिश्रवसमाधयः।" इत्यमरः।

यौगन्धरायणः—उपसर्प=उप+सृप्+लोट्+सिप्।

वासवदत्ता—मन्दभागा=मन्दः भागः (भाग्यम्) यस्याः सा (बहु०)।

दासी—इस प्रकार सत्य भाषण करनेवाली राजकुमारी दीर्घायु हों।

तापसी—कल्याणि ! आप बहुत समय तक जीएँ।

काञ्चुकीय—माननीये ! वैसा ही करता हूँ। (समीप जाकर) महाशय ! माननीया राजकुमारीने आपकी बहनका संरक्षण करना मञ्जूर किया।

यौगन्धरायण—श्रीमतीसे मैं अनुगृहीत हूँ। वत्से ! राजकुमारीके पास जाओ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अब क्या गति है ? मन्द भाग्यवाली यह मैं जाती हूँ।

गतिः । एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता । [भवतु भवतु । आत्मीयेदानीं संवृत्ता ।]

तापसी—जा ईदिसी ते आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि । [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि । [सुष्ठु आर्या भणति । अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुप-

---

अहमिति शेषः ।

पद्मावतीति । भवतु भवतु=अस्तु अस्तु, उपसर्पतु उपसर्पतु इति भावः । आत्मीया=स्वकीया, संवृत्ता=संजाता ।

तापसीति । ईदृशी=एतादृशी, आकृतिः=आकारः । इदम् अपि=अर्थिभगिनी अपि, तर्कयामि=कल्पयामि ।

चेटीति । आर्या=पूज्या, तापसीति भावः । सुष्ठु=समीचीनं, भणति=कथयति, इयं राजदारिकेति कथनं समीचीनमिति भावः । अनुभूतसुखा=निर्विष्टानन्दा इति, प्रेक्षे=पश्यामि, जानामीति भावः ।

यौगन्धरायण इति । हन्त=हर्षद्योतकमव्ययम् । भोः=स्वं प्रति संबुद्धिः । भारस्य=स्वमस्तकोपरिस्थितस्य भरस्य, अर्धं=समांऽशः, अवसितं=समाप्तम्,

---

चेटी—सुष्ठु="सुष्ठु प्रशंसने" इत्यमरः । अनुभूतसुखा=अनुभूतं सुखं यया सा (बहु०) ।

यौगन्धरायणः—अर्धम्="अर्धं समेंऽशके" इत्यमरः । मन्त्रिभिः=मन्त्रयन्त इति मन्त्रिणः, तैः, "मत्रि गुप्तपरिभाषणे" धातुसे "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणि-

---

पद्मावती—अच्छा अच्छा । ये आत्मीय (अपनी) हुई हैं ।

तापसी—जो इनका ऐसा आकार है, यह भी राजकुमारी हैं मैं ऐसी तर्कना करती हूँ ।

दासी—आर्या ठीक कहती हैं । इन्होंने कभी सुखका अनुभव किया है मैं ऐसा जान रही हूँ ।

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहा ! आधा बोझा उतर गया । जैसा मन्त्रियोंके साथ निश्चय किया था, वैसा ही परिणाम (फल) होगा । तब महाराज (उदयन) के फिर

नयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति। कुतः—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि॥ ११॥

अपगतमिति भावः। यथा=येन प्रकारेण, मन्त्रिभिः=रुमण्वत्प्रभृतिभिः सह, समर्थितं=निर्धारितं, तथा=तेन प्रकारेण, परिणमति=परिणामं प्राप्नोति, फलतीति भावः। स्वामिनि=राजनि, उदयन इति भावः। प्रतिष्ठिते=पूर्ववत् सिंहासनारूढे सति, तत्रभवतीं=माननीयां, वासवदत्तामिति भावः। उपनयतः=स्वामिसमीपं प्रापयतः, मे=मम, मगधराजपुत्री=पद्मावती, विश्वासस्थानं=प्रत्ययहेतुः। कुतः=कस्मात्।

अन्वयः—यैः प्रथमं विपत्तिः प्रदृष्टा अथ पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री (इति) प्रदिष्टा। तत्प्रत्ययात् इदं कृतम्। हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि व्युत्क्रम्य न गच्छति॥ ११॥

पद्मावतीति। यैः=पुष्पकभद्रादिभिः सिद्धैः, प्रथमं=पूर्वं, विपत्तिः=आपत्तिः शत्रुकर्तृकोदयनराज्यहरणरूपेति भावः। प्रदृष्टा=आदिष्टा, दृष्टा=प्रत्यक्षतः अवलोकिता च। अथ=अनन्तरं, पद्मावती=मगधराजकुमारी, नरपतेः=राज्ञः,

---

न्यचः" इससे णिनि प्रत्यय। "मन्त्री धीसचिवः" इत्यमरः। स्वामिनि=स्वम् (धनम्) अस्याऽस्तीति स्वामी, तस्मिन् "स्वामिन्नैश्वर्ये" इस सूत्रसे 'स्व' शब्दसे आमिनच् प्रत्ययान्त निपातन। उपनयतः=उपनयतीति उपनयन्, तस्य, उप+नी+लट् (शतृ)+ङस्।

पद्मावतीति। विपत्तिः=वि+पद्+क्तिन्। "विपत्त्यां विपदापदौ" इत्यमरः। महिषी="कृताऽभिषेका महिषी" इत्यमरः। भवित्री=भविष्यतीति, भविष्यदर्थमें भू+तृच्+ङीप्। तत्प्रत्ययात्=तेषां प्रत्ययः, तस्मात् (ष० त०)

प्रतिष्ठित (सिंहासनमें आरूढ) होनेपर महारानी वासवदत्ताको सौंपनेपर मेरी साक्षिणी ये मगधराजकुमारी (पद्मावती) विश्वासपात्र (गवाह) होंगी। क्योंकि—

जिन पुष्पक भद्र आदि सिद्धोंने पहले ही राजा उदयनकी (आनेवाली) विपत्तिको सूचित किया था। उसे हमलोगोंने प्रत्यक्षतः देख लिया। अब (उन्होंने) पद्मावती, महाराज-(उदयन) की महारानी होंगी ऐसा कहा है। उन्हीं वचनोंके विश्वाससे ऐसा (पद्मावतीके हाथोंमें वासवदत्ताको धरोहरके रूपसे रखनेका) कार्य किया है, क्योंकि भाग्य अच्छी तरहसे परीक्षित सिद्ध वाक्योंका उल्लङ्घन कर नहीं चलता है॥ ११॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(उर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः। दृढमस्मि परिश्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथाहि—

उदयनस्येत्यर्थः, महिषी=कृताऽभिषेका राज्ञी, भवित्री=भाविनी, (इति च) प्रदिष्टा=आदिष्टा, शापितेति भावः, तैरेव सिद्धैरिति शेषः। तत्प्रत्ययात्= सिद्धवचनविश्वासात्, इदं=पद्मावतीहस्ते न्यासरूपेण वासवदत्तास्थापनमिति भावः, कृतं=विहितम्। उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन दृढयति—हीति। हि=यस्मात् कारणात्, विधिः=भाग्यं, सुपरीक्षितानि=सम्यग्जातपरीक्षाणि, सिद्धवाक्यानि= सिद्धादेशवचनानि, व्युत्क्रम्य=उल्लङ्घ्य, न गच्छति=न प्रचलति ॥ ११ ॥

ब्रह्मचारीति। ब्रह्मचारी=वर्णी। मध्याह्नः=दिनमध्यभागः। परिश्रान्तः= परिश्रमयुक्तः। विश्रमयिष्ये=विश्रामं करिष्यामि।

"प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु।" इत्यमरः। हेतुमें पञ्चमी। विधिः= विधीयतेऽनेनेति, वि-उपसर्गपूर्वक 'धा' धातुसे "उपसर्गे घोः किः" इस सूत्रसे कि प्रत्यय। "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः।" इत्यमरः। सिद्ध-वाक्यानि=सिद्धानां वाक्यानि, तानि, कर्मकारक। व्युत्क्रम्य=वि+उद्+ क्रम्+क्त्वा (ल्यप्)। सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार। वसन्ततिलका छन्द है ॥ ११ ॥

ब्रह्मचारी—ब्रह्म चरतीति तच्छीलः, ब्रह्म+चर+णिनिः।' 'ब्रह्म" शब्दका अर्थ यहाँपर वेद है, उसके अध्ययनके लिए जो व्रत है उसे भी लक्षणासे ब्रह्म कहते हैं। ऐसा व्रत करनेवालेको "ब्रह्मचारी" कहते हैं। "वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः।" इत्यमरः। अवलोक्य=अव+लोक+क्त्वा (ल्यप्)। मध्याह्नः=मध्यं च तत् अहः, (क० धा०), "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इससे समासान्त टच् और "अह्नोऽह्न एतेभ्यः" इस सूत्रसे 'अहन्' शब्दके स्थानमें अह्न आदेश। "रात्राह्नाहाः पुंसि" इससे पुंलिङ्गता। परिश्रान्तः=परि+श्रम्+क्तः। विश्रमयिष्ये=वि+श्रम+णिच् (स्वाऽर्थमें)+लट्।

(तब ब्रह्मचारी प्रवेश करता है)

ब्रह्मचारी—(ऊपर देखकर) मध्याह्न हो गया है। मैं बहुत थक गया हूँ। अब कहाँ पर विश्राम करूँगा ? (घूमकर), हो जाय, देख लिया। चारों ओर तपोवन होना चाहिए। जैसे कि—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १२ ॥

अन्वयः—देशागतप्रत्यया अचकिता हरिणा विश्रब्धं चरन्ति । सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपा दयारक्षिताः । कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम् (सन्ति)। दिशः अक्षेत्रवत्यः । हि धूमो बह्वाश्रयः । इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम् ॥ १२ ॥

विस्रब्धमिति । देशागतप्रत्ययाः=स्थानप्राप्तविश्वासाः, अत एव अचिकता:= निर्भया,, हरिणाः=मृगाः, विस्रब्धं=विस्रम्भपूर्वकं, चरन्ति= विचरणं कुर्वन्ति, अत्रेति शेषः । सर्वे=समस्ताः, वृक्षाः=तरवः, पुष्पफलैः=कुसुमसस्यैः, समृद्धविटपाः=परिपूर्णशाखाः सन्तः, दयारक्षिताः=करुणापालिताः, सन्तीति शेषः । कपिलानि=पिशङ्गवर्णानि, गोकुलधनानि=धेनुसमूहद्रव्याणि, भूयिष्ठं=प्रचुरं यथा तथा । सन्तीति शेषः । दिशः=ककुभः, अक्षेत्रवत्यः=क्षेत्ररक्षिताः, वर्तन्त इति शेषः । हि=यस्मात्कारणात्, धूमः=अग्निलिङ्गं, बह्वाश्रयः=अधिकाऽधिकरणः, अस्तीति शेषः । अतः इदम्=एतत्, निःसन्देहं=निःशङ्कम्, तपोवनं= तापसाश्रमः, विद्यत इति शेषः ॥ १२ ॥

विस्रब्धमिति । देशागतप्रत्ययाः=आगतः प्रत्ययो येषां ते (बहु०)। देशे आगतप्रत्ययाः (स० त०)। अचकिताः=चकँ+क्तः, न चकिताः (नञ्०) विस्रब्धं=वि+स्रम्भु+क्तः, यह क्रियाविशेषण है। पुष्पफलैः=पुष्पाणि च फलानि च पुष्पफलानि, तैः (द्वन्द्वः)। समृद्धविटपाः=समृद्धा विटपा येषां ते (बहु०)। दयारक्षिताः=दयया रक्षिताः (तृ० त०)। कपिलानि="कडारः कपिलः पिङ्ग-पिशङ्गौ कद्रुपिङ्गले ।" इत्यमरः । गोकुलधनानि=गवां कुलानि (ष० त०)। गोकुलधनानि इव "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे उपमितकर्म० । भूयिष्ठम्="अतिशयेन बहु" ऐसा विग्रह कर बहु शब्दसे "अतिशायने तमबिष्ठनौ" इस सूत्रसे इष्ठन् प्रत्यय और "बहोर्लोपो भू च बहोः" इससे बहु शब्दके स्थानमें "भू" आदेश और "इष्टस्य यिट् च" इससे यिट् हुआ

अपने स्थानमें विश्वासयुक्त निर्भय मृग विश्वासके साथ चर रहे हैं । सब पेड़ फूल और फलोंसे समृद्ध शाखाओंसे युक्त होकर दयासे रक्षित हैं। भूरे वर्णवाले गोसमूहरूप धन प्रचुर हैं । दिशाएँ खेतवाली नहीं हैं, क्योंकि धूआँ बहुत फैला हुआ है, इस कारण निश्चय यह तपोवन है ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी—यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये ! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः। (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र निर्दोषमुपसर्पणम् । अये ! स्त्रीजनः।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हं ।

पद्मावती—अम्भो ! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुपरिवालणीओ

ब्रह्मचारी—यावत्=वाक्यालङ्कारे । स्त्रियं दृष्ट्वा कथयति—आश्रमविरुद्धः= आश्रमप्रतिकूलः, जनः=स्त्रीरूपः । अन्यतः=अन्यस्मिन् स्थाने । निर्दोषं= दोषरहितम् । उपसर्पणं=समीपगमनम् ।

काञ्चुकीय इति—स्वैरं=स्वच्छन्दम् । सर्वजनसाधारणं=सकलव्यक्ति-सामान्यम् ।

वासवदत्तेति—हं=रोषभाषणद्योतकमव्ययम् । हठात्प्रविशन्तमविज्ञातपुरुषं दृष्ट्वा हमिति रोषाद्भाषत इति भावः ।

पद्मावतीति । अम्भो=वितर्कार्थकम् अव्ययम् । आर्या=पूज्या, आवन्तिकेति

है । यह क्रियाविशेषण है । "पुरुहूः पुरु भूयिष्ठं स्फारं भूयश्च भूरि च ।" इत्य-मरः । अक्षेत्रवत्यः=न क्षेत्रवत्यः (नञ्०) । वह्वाश्रयः=बहव आश्रया यस्य सः (बहु०) । निःसन्दिग्धं=निर्गतं सन्दिग्ध (लिङ्गम्) यस्मिंस्तत् (बहु०) । इस श्लोकमें अनेक साधनोंसे साध्य तपोवनका विच्छित्तिसे ज्ञान होनेसे "अनुमान" अलङ्कार है । उसका लक्षण है—"अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात् ।" (सा० द०, १०-६३) । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।। १२ ।।

ब्रह्मचारी—आश्रमविरुद्धः=यहाँपर 'आश्रम' पदसे ब्रह्मचर्य आश्रम समझना चाहिए । स्त्रियोंको देखकर ब्रह्मचारीका ऐसा कहना है ।

काञ्चुकीयः—सर्वजनसाधारणं=सर्वे च ते जनाः (कर्म०), सर्वजनानां साधारणम् (ष० त०) "आश्रमपदम्" का विशेषण है ।

पद्मावती—परपुरुषदर्शनं=परश्चाऽसौ पुरुषः (क० धा०) तस्य दर्शनम्

ब्रह्मचारी—अब प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश कर) अरे ! यह व्यक्ति आश्रमके अनुकूल नहीं है । (दूसरी ओर देखकर) अथवा यहाँ तपस्वी जन भी हैं, पास जानेमें दोष नहीं है । अरे ! स्त्रियाँ !

काञ्चुकीय—आप स्वच्छन्दतासे प्रवेश करें । आश्रमका स्थान सब लोगोंके लिए है ।

वासवदत्ता—ओह !

पद्मावती—ओहो ! आर्या (आवन्तिका) परपुरुषको देखना नहीं चाहती हैं । अच्छा,

खु मण्णासो । [अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः ।]

काञ्चुकीयः—भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

ब्रह्मचारी—(आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

भावः । परपुरुषदर्शनम्=अपरिचितजनविलोकनं, परिहरति=परित्यजति, परित्यक्तुमिच्छतीति भावः । कुलललनाचारं प्रदर्शयतीति शेषः । भवतु=अस्तु, मन्न्यासः=मन्निक्षेपः, आवन्तिकारूपं इति भावः । सुपरिपालनीयः=सम्यग्रक्षणीयः ।

काचुञ्कीय इति । भोः=हे ब्रह्मचारिन्, पूर्वं=प्रथमं, भवदागमनादिति शेषः । अतिथिसत्कारः=अभ्यागतपूजा, प्रतिगृह्यतां=स्वीक्रियताम् ।

ब्रह्मचारीति । आचम्य=आचमनं कृत्वा, पाद्यार्घ्यग्रहणानन्तरमिति शेषः । भवतु भवतु=अस्तु अस्तु, अधिकोपचारप्रदर्शनं नावश्यकमिति भावः । निवृत्तपरिश्रमः=विश्रान्तः ।

यौगन्धरायण इति । कुतः=कस्मात्स्थानात् । क्व=कुत्र स्थाने । गन्तव्यं=गमनीयम् । आर्यस्य=पूज्यस्य, भवत इति भावः । क्व=कुत्र, अधिष्ठानं=

(ष० त०) । "असूर्यंपश्या राजदाराः" इस उक्तिके अनुकूल उस समयके असुसार राजपरिवारमें परदेका खूब प्रचार था । इसीसे ऐसी उक्ति है ।

काञ्चुकीयः—प्रतिगृह्यताम्=प्रति+ग्रह+लोट् (कर्मणि) । पञ्च महायज्ञोंमें अतिथिपूजा "नरयज्ञ" के रूपमें परिगृहीत है ।

ब्रह्मचारी—आचम्य=आङ्+चम्+क्त्वा (ल्यप्) निवृत्तपरिश्रमः=निवृत्तः परिश्रमो यस्य सः (बहु०) ।

यौगन्धरायणः—कुतः=कस्मात् इति, किं शब्दसे "पञ्चम्यास्तसिल" इस

मेरी धरोहर (आवन्तिका) को अच्छी तरहसे संरक्षण करना चाहिए ।

काञ्चुकीय—महाशय ! हमलोग पहले ही प्रवेश किये हुए हैं । आप अतिथिका सत्कार स्वीकार करें ।

ब्रह्मचारी—(आचमन कर) अच्छा अच्छा । मैं विश्रान्त हो गया हूँ ।

यौगन्धरायण—महाशय ! कहाँसे आये हैं ? कहाँ जाना है ? और आर्य कहाँ रहते हैं ?

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम् ! राजगृहतोऽस्मि ! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा ! लावाणअं णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [हा ! लावाणकं नाम । लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

निवासस्थानम्, अस्तीति शेषः ।

ब्रह्मचारीति । श्रूयताम्=आकर्ण्यताम् । राजगृहतः, नृपभवनतः, आगत इति शेषः । विशेषं सूचयति—श्रुतीति । श्रुतिविशेषणार्थं=स्वाध्यायग्रहणार्थमिति भावः । वत्सभूमौ=उदयनराज्यप्रदेशे, लावाणकं नाम=लावाणकनाम्ना प्रसिद्धः, ग्रामः=संवसथः । उषितवान्=कृतवासः ।

वासवदत्तेति । हा लावाणकं नाम=लावाणकं शोच्यत इति भावः । नवीकृतः= नूतनीकृतः ।

यौगन्धरायण इति । विद्या=विद्याऽऽध्ययनक्रिया, लक्षणयैषोऽर्थः । परिसमाप्ता=

सूत्रसे तसिल् प्रत्यय और "कु ति होः" इस सूत्रसे किम् शब्दके स्थानमें "कु" आदेश हो गया है ।

ब्रह्मचारी—राजगृहतः=राजगृहात् इति, "अपादाने चाऽहीयरुहोः" इस सूत्रसे अपादानमें "तसि" प्रत्यय, श्रुतिविशेषणाऽर्थं=श्रुतेः विशेषणम् (ष० त०), तस्मै यथा स्यात्तथा (च० त०)। "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी" इत्यमरः, श्रुतिपदसे श्रुत्यध्ययनमें लक्षणा हुई है, उसके विशेषण = विशेष ज्ञानकरणके लिए यह तात्पर्य है । उषितवान् = वस + क्तवतुः ।

वासवदत्ता—नवीकृतः=अनवो नवो यथा सम्पद्यते तथा कृतः, नव + च्वि + कृतः ।

यौगन्धरायणः—विद्या=विदन्ति धर्माऽर्थकाममोक्षान् अनयेति 'विद्' धातुसे

ब्रह्मचारी—महाशय ! सुनिए । राजगृहसे आया हूँ । वेदका अध्ययन करनेके लिए वत्सराजके राज्यमें लावाणक नामका गाँव है, वहाँका रहनेवाला हूँ ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) हा ! लावाणक । लावाणक कहनेसे मेरा सन्ताप फिर नया किया गया-सा हो गया ।

यौगन्धरायण—क्या अध्ययन समाप्त हुआ ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता, विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगधरायणः—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायण.—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

पर्यवसिता । अनवसिता=असमाप्ता ।

ब्रह्मचारीति । तत्र=लावाणके । अतिदारुणम्=अतिभीषणं, व्यसनं=विपत्तिः । संवृत्तं=संजातम् । तस्य=उदयनस्यः, अभिप्रेता=अभीष्टा । तस्मिन् राजनि= उदयने भूपाले, मृगयानिष्क्रान्ते=आखेटकाऽर्थं निर्गते सति, लावाणकादिति शेषः

"संज्ञायां समजनिषद निपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः" इस सूत्रसे क्यप् प्रत्यय होकर टाप् हुआ है । अनवसिता=न अवसिता (नञ्०) ।

ब्रह्मचारी—व्यसनम्=वि+अस्+ल्युट् । "व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे ।" इत्यमरः ।

यौगन्धरायणः—कथं=केन प्रकारेण, किम् शब्दसे "किमश्च" इस सूत्रसे थमु प्रत्यय और "किमः कः" इस सूत्रसे क आदेश हुआ है ।

ब्रह्मचारी—मृगयानिष्क्रान्ते=मृगयार्थं निष्क्रान्तः, तस्मिन् (सुप्सुपा०) ।

ब्रह्मचारी—नहीं हुआ ।

यौगन्धरायण—अध्ययन समाप्त नहीं हुआ है तो क्यों आये हैं ?

ब्रह्मचारी—वहाँपर अत्यन्त भीषण विपत्ति आ पड़ी ।

यौगन्धरायण—कैसे ?

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामके राजा रहते हैं ।

यौगन्धरायण—माननीय राजा उदयनका नाम सुना गया है । उनका क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—अवन्तिराजकी पुत्री वासवदत्ता नामकी पत्नी उन्हें बहुत प्यारी थी ।

यौगन्धरायण—होगी, तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—जब वे राजा शिकार खेलनेके लिए निकले थे तब गाँवमें आग लगनेसे वह (महारानी) जल गईं ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं । जीवामि मन्दभाआ । [अलीकमलीकं खल्वेतत् । जीवामि मन्दभागा ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः ।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः ।

ग्रामदाहेन=संवसथदाहेन । सा=वासवदत्ता ।

वासवदत्तेति । एतत्=इदं, मद्दाहवृत्तम् । अलीकम्=असत्यम् ।

ब्रह्मचारीति । तां=वासवदत्ताम्, अभ्यवपत्तुकामः=संत्रातुकाम इति भावः । सचिवः=मन्त्री । प्रतिनिवृत्तः=प्रत्यावृत्तः । तयोः=वासवदत्तायौगन्धरायणयोः । वियोगजनितसन्तापः=विप्रयोगोत्पन्नतापः । परित्यक्तुकामः=परित्यागेच्छुः, वारितः=निवारितः ।

वासवदत्ता—अलीकम्="अलीकं त्वप्रियेऽनृते" इत्यमरः ।

ब्रह्मचारी—अभ्यवपत्तुकामः=अभ्यवपत्तुं (व्यसने साहाय्यं कर्तुम्) कामः यस्य सः (बहु०), "तुं काममनसोरपि" इससे तुम्‌के मकारका लोप हुआ है । कौटिलीय अर्थशास्त्रमें "व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः" ऐसा लिखा है । अर्थात् विपत्तिमें सहायता देनेको "अभ्यवपत्ति" कहते हैं । वियोगजनितसन्तापः= जनितः सन्तापो यस्य सः (बहु०) । वियोगेन जनितसन्तापः (तृ० त०) । परित्यक्तुकामः=परित्यक्तुं कामो यस्य सः (बहु०) ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह बात झूठ है झूठ है, मैं मन्द भाग्यवाली जी रही हूँ ।

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ, क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब उन (महारानी) को बचानेकी इच्छा करते हुए मन्त्री यौगन्धरायण उसी आगमें पड़ गये ।

यौगन्धरायण—सच ही गिर गये ?

ब्रह्मचारी—तब शिकारसे लौटे हुए राजाने उस वृत्तान्तको सुनकर महारानी और यौगन्धरायणके वियोगसे सन्तप्त होकर उसी आगमें प्राण छोड़नेकी इच्छा की; तब मन्त्रियोंने बहुत यत्नसे उनको रोका ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं । [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजाऽमोहमुपगतः ।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दाणिं अय्यजोअन्धराअणो होदु । [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।]

वासवदत्तेति । आर्यपुत्रस्य=मम पत्युः, उदयनस्येत्यर्थः । साऽनुक्रोशत्वं=दयालुत्वं, जानामि=अवगच्छामि ।

ब्रह्मचारीति । तस्याः=वासवदत्तायाः, शरीरोपभुक्तानि=देहोपभुक्तानि, दाहशेषाणि=दाहाऽवशिष्टानि, आभरणानि=भूषणानि, परिष्वज्य=आलिङ्ग्य । राजा=उदयनः, मोहं=पूर्णमनोरथः ।

सर्वे इति । हा=राजानमिति शेषः, उदयनस्य शोच्यत इति भावः ।

वासवदत्तेति । सकामः=पूर्णमनोरथः ।

वासवदत्ता—मयि=विषयमें सप्तमी । साऽनुक्रोशत्वम्=अनुक्रोशेन सहितः साऽनुक्रोशः (तुल्ययोग बहु०) । सानुक्रोशस्य भावः साऽनुक्रोशत्वं, तत् (सानुक्रोश+त्व) "कृपादयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि" इत्यमरः ।

ब्रह्मचारी—शरीरोपभुक्तानि=शरीरे उपयुक्तानि (स० त०), तानि । दग्धशेषाणि=प्राग्दग्धानि पश्चाच्छेषाणि, तानि "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इस सूत्रसे पूर्वकालसमास ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) आर्यपुत्रकी मुझपर दयाको मैं जानती हूँ जानती हूँ ।

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब वासवदत्ताके शरीरपर पहने गये जलनेसे बचे भूषणोंको आलिङ्गन कर राजा मूर्च्छित हो गये ।

सबलोग—हाय !

वासवदत्ता—(मन ही मन) इस समय आर्य यौगन्धरायण पूर्ण अभिलाषवाले हों ।

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इयं अय्या । [भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।]

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ । मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं । [दिष्टया ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ।]

चेटीति । आर्या=आवन्तिका । रोदिति=अश्रु विमुञ्चति ।

यौगन्धरायण इति । अथ किम्=अन्यत् किम् । भगिनी=स्वसा आवन्तिकेति भावः । प्रकृत्या=स्वभावेन, साऽनुक्रोशा=सदया ।

ब्रह्मचारीति । शनैः शनैः=मन्दं मन्दं, प्रतिलब्धसंज्ञः=संप्राप्तचैतन्यः । संवृत्तः=संजातः, राजा उदयन इति शेषः ।

पद्मावतीति । दिष्टया=भाग्येन, ध्रियते=अवतिष्ठते । हृदयं=मनः, शून्यम् इव=चैतन्यरहितम् इव ।

चेटी—रोदिति="रुधिर् अश्रुविमोचने" धातुसे लट्+तिप् । "रुदादिभ्यः सार्वधातुके" इससे इट् हो गया है ।

यौगन्धरायणः—प्रकृत्या="प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे तृतीया हुई है ।

ब्रह्मचारी—प्रतिलब्धसंज्ञः=प्रतिलब्धा संज्ञा येन सः (बहु०) । "संज्ञा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थसूचना ।" इत्यमरः ।

पद्मावती—ध्रियते="धृङ् अवस्थाने" धातुसे लट् । "रिङ् शयग्लिङ्क्षु" इससे रिङ् ।

दासी—राजकुमारि ! आर्या (आवन्तिका) रो रही हैं ।

पद्मावती—(ये) दयालु होंगी ।

यौगन्धरायण—और क्या ? और क्या ? मेरी बहन स्वभावसे दयालु है । तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब (राजा) धीरे-धीरे होशमें आये ।

पद्मावती—भाग्यसे जी रहे हैं । (राजा) बेहोश हो गये ऐसा सुनकर मेरा हृदय शून्य सा हो गया था ।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारीति । महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः=भूतलपरिवर्तन-धूलिश्वेत-रक्तदेहः । सहसा=अतर्किते । किमपि=सर्वतोभावेन अनिर्वाच्यं, बहु=अधिकं, प्रलपितवान्=अनर्थकं वच उक्तवान् ।

अन्वयः—इदानीं तादृशाः चक्रवाकाः न एव । स्त्रीविशेषैः वियुक्ता अन्ये अपि तादृशा न एव । सा स्त्री धन्या, यां भर्ता तथा वेत्ति; हि भर्तृस्नेहात् सा दग्धा अपि अदग्धा ॥ १३ ॥

नैवेति । इदानीम्=अधुना, तादृशाः=उदयनसदृशाः, चक्रवाकाः=

ब्रह्मचारी—महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः=मह्याः तलं (ष० त०), तस्मिन् परिसर्पणं (स० त०) । पाटलं शरीरं यस्य सः (बहु०), "श्वेत-रक्तस्तु पाटल" इत्यमरः । पांसुभिः पाटलशरीरः (तृ० त०) । महीतलपरि-सर्पणेन पांसुपाटलशरीरः (तृ० त०) । प्रियशिष्ये=प्रिया चाऽसौ शिष्या, तत्सम्बुद्धौ "विशेषणं विशेष्येण बहुलम्" इससे समास और "तत्पुरुषः समाना-ऽधिकरणः कर्मधारयः" इससे उसकी कर्मधारयसंज्ञा और "पुंवत्कर्मधारयजातीय-देशीयेषु" इस सूत्रसे "प्रिया" शब्दका पुंवद्भाव । महाराज उदयनने राजकुमारी वासवदत्ताको वीणा सिखाई थी इसीलिए राजाने उन्हें ऐसा सम्बोधन किया है । प्रलपितवान्=प्र+लप+क्तवतुः ।

नैवेति । तादृशाः=ते इव दृश्यन्ते इति तद्-शब्दपूर्वक दृश् धातुसे "त्यदा-दिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" इस सूत्रसे कन् प्रत्यय होकर "आ सर्वनाम्नः" इस

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब वे राजा जमीनमें लोट-पोट करनेसे धूलसे भूरे शरीरवाले होकर सहसा उठकर हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजकुमारि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! ऐसा कहकर बहुत कुछ प्रलाप करने लगे । ज्यादा क्या कहें—

इस समय राजाके समान (पत्नीके विरह दुःखको सहनेमें असमर्थ) चकवे नहीं हैं । श्रेष्ठ

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः ?

कोकाख्याः पक्षिणः, न एव=नो एव, ये रात्रौ भार्यावियोगं सहन्त इति भावः। स्त्रीविशेषैः=विशिष्टस्त्रीभिः, सीतादिभिरिति भावः। वियुक्ताः=विप्रयुक्ताः, अन्ये अपि=अपरे अपि, रामादयोऽपीति भावः। तादृशाः=तत्सदृशाः, उदयनसदृशा इति भावः, पत्नीविरहाऽसहिष्णव इति शेषः, न एव=न सन्त्येव। सा=पूर्वोल्लिखिता, स्त्री=योषित्, वासवदत्तेति भावः। धन्या=पुण्यवती, यां=स्त्रियं, वासवदत्तामिति भावः। भर्ता=पतिः, उदयन इति भावः। तथा=तेन प्रकारेण, असाधारणप्रणयश्रवणत्वेनेति भावः। वेत्ति=जानाति, सा=स्त्री, वासवदत्ता, दग्धा अपि=भस्मीकृता अपि, अदग्धा=न भस्मीकृता, पत्युः प्रणयाऽतिशयेन कीर्तिशरीरेण जीवितप्रायेति भावः ॥ १३ ॥

यौगन्धरायण इति। तं=राजानम्, उदयनम्। पर्यवस्थापयितुं=प्रकृतिस्थं कारयितुं, कश्चित्=कोऽपि, अमात्यः=मन्त्री, यत्नवान्=प्रयत्नसंपन्नः, नः=न आसीत्।

सूत्रसे दीर्घ हुआ। तद् शब्दके पूर्वपरामर्शक होनेसे "तादृशः" इस पदका अर्थ हुआ उदयनके सदृश। चक्रवाकाः=“कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः।” इत्यमरः। चक्रवाकको हिन्दीमें "चकवा" कहते हैं। धन्याः=धनं लब्ध्री, "धन" शब्दसे "धनगणं लब्धा" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् प्रत्यय हुआ है। "सुकृती पुण्यवान् धन्यः" इत्यमरः। भर्ता=बिभर्तीति, भृ+तृच्। भर्तृस्नेहात्=भर्तुः स्नेहः, तस्मात् (ष० त०)। इस श्लोकमें प्रसिद्ध उपमान चक्रवाकको उपमेयके रूपमें प्रदर्शन करनेसे प्रतीप अलङ्कार है। शालिनी छन्द है। वृत्तरत्नाकरके अनुसार उसका लक्षण है—"शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः" ॥ १३ ॥

यौगन्धरायणः—भोः=सम्बोधनार्थक अव्यय। "अथ सम्बोधनाऽर्थकाः। स्युः पाट् प्याडङ्ग हे हे भोः" इत्यमरः। पर्यवस्थापयितुं=परि+अव+स्था+णिच्+तुमुन्। यत्नवान्=यत्न+मतुप्।

स्त्रियोंसे बिछुड़े हुए और भी (राम आदि भी) वैसे (उदयनके समान) नहीं हैं। वह स्त्री (वासवदत्ता) धन्य है जिसे पति उस तरह (असाधारण प्रेमसे) देखता है। पतिके प्रेमसे वह जलनेपर भी नहीं जली है (कीर्तिशरीरसे जीवित है) ॥ १३ ॥

यौगन्धरायण—महाशय! तब राजाको सँभालनेके लिए किसी मन्त्रीने क्या प्रयत्न नहीं किया ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम्। स हि—

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥ १४ ॥

ब्रह्मचारीति। तत्र भवन्तं=राजानमुदयनं, दृढं=गाढं यथा तथा, प्रयत्नवान्=प्रयत्नसंपन्नः। अस्ति स्म=अभूत्।

अन्वयः—(स हि) अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः नरपतिं परिचरति। नृपः प्राणान् त्यजति यदि, तस्य अपि सद्य उपरमः ॥ १४ ॥

अनाहार इति। (स हि=रुमण्वान्) अनाहारे=आहारस्य (भोजनस्य) अग्रहणे, तुल्यः=सदृशः, नृपेण इति शेषः। प्रततरुदितक्षामवदनः=निरन्तररोदनकृशमुखः। नृपतिसमदुःखं=राजसदृशकष्टं यथा तथा, शरीरे=देहे, संस्कारं=स्नानादिकम्, परिवहन्=धारयन्, दिवा=दिने वा, रात्रौ वा=रजन्यां वा, यत्नैः=प्रयासैः। नरपतिं=राजानम्, उदयनमिति भावः। परिचरति=सेवते।

ब्रह्मचारी—दृढम्=यह क्रियाविशेषण है। "गाढवाढदृढानि च" इत्यमरः। रुमण्वत्प्रयत्नं प्रतिपादयति—अनाहार इति।

अनाहार इति। अनाहारे=न आहारः, तस्मिन् (नञ्०)। प्रततरुदितक्षामवदनः=प्रततं च तत् रुदितम् (क० धा०)। क्षामं वदनं यस्य सः (बहु०)। "क्षै क्षये" धातुसे क्त प्रत्यय होकर उसके स्थानमें "क्षायो मः" इससे 'म' आदेश। प्रततरुदितेन क्षामवदनः, हेतुमें तृतीया, (तृ० त०)। नृपतिसमदुःखं=समं दुःख यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा (बहु०)। नृपतिना समदुःखम् (तृ० त०)। परिवहन्=परि+वह+लट् (शतृ)। शिखरिणी

ब्रह्मचारी—राजाको सँभालनेके लिए रुमण्वान् नामके मन्त्री दृढ़ प्रयत्न कर रहे हैं क्योंकि—

वे भोजन न करनेमें राजाके सदृश हैं, निरन्तर रोनेसे दुबले मुखवाले राजाके समान दुःखका अनुभव कर शरीरमें स्नान आदि संस्कारको करते हुए, अनेक यत्नोंसे दिनमें और रातमें राजाकी सेवा करते हैं। राजा प्राण छोड़ें तो तत्क्षण उनकी भी मृत्यु हो जाती ॥१४॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो । [दिष्टया सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान् । कुतः—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥ १५ ॥

नृपः=राजा, प्राणान्=असून् । त्यजति यदि=जहाति चेत्, तस्य अपि=रुमण्वतः अपि, सद्यः=तत्क्षणे, उपरमः=मृत्युः, भवेदिति शेषः ॥ १४ ॥

वासवदत्तेति । दिष्टया=भाग्येन, सुनिक्षिप्तः=सम्यक् निक्षिप्तः, रुमण्वच्चेष्टाऽतिशयेनार्यपुत्रस्य पर्यवस्थानं भविष्यतीति भावः ।

यौगन्धरायण इति । अहो=आश्चर्यम् । महद्भारं=महतः (कार्यस्य) भारम्, उद्वहति=धारयति । कुतः=कस्मात् ।

अन्वयः—हि अयं भारः सविश्रमः, तस्य तु श्रमः प्रसक्तः । हि तस्मिन् सर्वम् अधीनं, यत्र नराधिपः अधीनः ॥ १५ ॥

सविश्रम इति । हि=यस्मात्कारणात्, अयं=सन्निकृष्टस्थः भारः=धूः, मदीय इति भावः, वासवदत्तारक्षात्मक इति शेषः । सविश्रमः=विश्रमयुक्तः ।

छन्द है । वृत्तरत्नाकरमें उसका लक्षण है—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।" ॥ १४ ॥

वासवदत्ता—सुनिक्षिप्तः=सम्यक् निक्षिप्तः (गति०) ।

यौगन्धरायणः—महद्भारं=महतः (गौरवपूर्णस्य कार्यस्य) भारः, तम् (ष० त०) यहाँ महांश्चाऽसौ भारः, ऐसा विग्रह करके कर्मधारय नहीं करना चाहिए । कर्मधारयमें "आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः" इससे आत्व होकर महाभारम् ऐसा रूप होना इष्ट है ।

सविश्रम इति । सविश्रमः=विश्रमणं विश्रमः, वि–उपसर्गपूर्वक 'श्रमु' धातुसे घञ् होकर "नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः" इससे वृद्धिका निषेध हुआ है ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) भाग्यसे इस समय अच्छे व्यक्तिमें आर्यपुत्र रखे गये हैं।

यौगन्धरायण—(मन ही मन) अहो ! रुमण्वान् बड़े कार्यके भारको धारण कर रहे हैं । क्योंकि—

यह मेरा भार विश्रान्त हुआ है, उन (रुमण्वान्) का परिश्रम चल ही रहा है । क्योंकि उन रुमण्वान्में सब अधीन हैं, जिनमें राजा अधीन हैं ॥ १५ ॥

(प्रकाशम्) अथ भोः ? पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने। 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्।

पद्मावत्याः समीपे वासवदत्तानिक्षेपेणाऽहं विश्रान्त इति भावः। तस्य तु=रुमण्वतस्तु, श्रमः=उदयनरक्षणरूपः परिश्रमः, प्रसक्तः=संलग्नः। उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयते—तस्मिन्निति। हि=यस्मात्कारणात्, तस्मिन्=रुमण्वति, सर्वं=सकलम्, अधीनम्=आयत्तम्, यत्र=यस्मिन्, रुमण्वति। नराऽधिपः=राजा, अधीनः=आयत्तः, मद्भाराऽपेक्षया रुमण्वतो भारो गुरुतर इति भावः ॥ १५ ॥

प्रकाशमिति। प्रकाशं=सर्वश्राव्यं यथा तथा, ब्रूते इति शेषः। अथ=अनन्तरं, भोः=महाशय !, पर्यवस्थापितः=प्रकृतौ आपादितः।

ब्रह्मचारिति। तद्=वृत्तं, राजपर्यवस्थापितत्वरूपमिति भावः। न जाने=न अवगच्छामि। इह=अत्र स्थाने, तया सह=वासवदत्तया समं, हसितं=हासः कृतः, कथितं=भाषितं, पर्युषितं=स्थितम्। कुपितं=कोपः कृतः। शयितं=शयनं कृतम्। विलपन्तं=विलापं कुर्वन्तं, राजानम्, अमात्यैः=मन्त्रिभिः, रुमण्वदादिभिरिति भावः। महता=विपुलेन, यत्नेन=प्रयासेन। अपक्रान्तं=निर्गतम्।

विश्रमेण सहितः (तुल्ययोगवहु०)। "वोपसर्जनस्य" इस सूत्रसे 'सह' के स्थानमें विकल्पसे 'स' हुआ है। सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। अनुष्टुप् छन्द है ॥ १५ ॥

पर्यवस्थापितः=परि+अव+स्था+णिच्+क्तः।

ब्रह्मचारी—जाने="ज्ञा अवबोधने" धातुसे उपसर्गके न होनेसे "अनुपसर्गाज्ज्ञः" इस सूत्रसे आत्मनेपद हुआ है। हसितम्="हस" धातुसे "नपुंसके भावे क्तः" इस सूत्रसे भावमें क्तप्रत्यय। कथितम्=कथ+क्तः। पर्युषितम्=परि+वस+क्तः। कुपितम्=कुप+क्तः। शयितम्=शीङ्+क्तः। अपक्रान्तम्=

(प्रकट में) महाशय ! इस समय राजा प्रकृतिस्थ कराये गये हैं ?

ब्रह्मचारी—इस समय उस बात (राजाकी स्वस्थता) को मैं नहीं जानता हूँ। "इस स्थानमें उन (वासवदत्ता) के साथ हँसा था, यहाँपर उनके साथ बातचीत की थी, यहाँपर उनके साथ रहा था, यहाँपर उनके साथ क्रोध किया था, यहाँपर उनके साथ सोया था" इस प्रकारसे विलाप करनेवाले राजाको मन्त्रीलोग बड़े यत्नसे उस ग्रामसे

ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः। ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि। [स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि। [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती—(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम्। [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्।]

ततः=अनन्तरं, प्रोषितचन्द्रनक्षत्रम्=अस्तंगतेन्दुतारकं, नभ इव=आकाशम् इव, ग्रामः=संवसः, लावाणकाभिधान इति भावः। अरमणीयः=असुन्दरः, संवृत्तः= संजातः।

तापसीति। गुणवान्=प्रशस्तगुणसम्पन्नः, आगन्तुकेन=अतिथिना, प्रशस्यते= प्रशंसा क्रियते।

चेटीति। अपरा=अन्या, गमिष्यति=यास्यति।

पद्मावतीति। हृदयेन=चित्तेन, समं=सह, मन्त्रितं=गुप्तपरिभाषण कृतम्।

अप+क्रम्+क्तः (भावमें)। निष्क्रान्ते=निस्+क्रम्+क्तः। प्रोषितनक्षत्रचन्द्रं=नक्षत्राणि चन्द्रश्च नक्षत्रचन्द्रा (द्वन्द्वः), प्रोषिता नक्षत्रचन्द्रा यस्मात्तत् (बहु०)। नभ इव="नभः खं श्रावणो नभाः" इत्यमरः। उपमा अलङ्कार है।

तापसी—गुणवान्=गुणाः सन्ति यस्मिन् सः, गुण+मतुप्। प्रशस्यते= प्र–उपसर्गपूर्वक "शसुं स्तुतौ" धातुसे कर्ममें लट्, यक् प्रत्यय होनेसे कित् होनेके कारण "अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति" इससे उपधालोप हुआ है।

पद्मावती—मन्त्रितम्="मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे" धातुसे भावमें क्त।

लेकर चले गये। तब राजाके जानेपर नक्षत्र और चन्द्रमासे रहित आकाशके समान वह गाँव (लावाणक) सौन्दर्यहीन हो गया। तब मैं भी वहाँसे निकला हूँ।

तपस्विनी—वे राजा प्रशस्त गुणोंसे सम्पन्न हैं जिनकी आगन्तुक (वटोही) भी इस प्रकार प्रशंसा करते हैं।

दासी—राजकुमारि ! कौन-सी स्त्री उनके हाथमें पड़ेगी ?

पद्मावती—(मन ही मन) इसने मेरे हृदयके साथ सलाहकी।

ब्रह्मचारी—आ पृच्छामि भवन्तौ । गच्छामस्तावत् ।
उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये ।
ब्रह्मचारी—तथाऽस्तु ।

(निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्र भवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।
काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल !
पद्मावती—अय्यस्स भइणिआ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि । [आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

ब्रह्मचारीति । आ=स्मृतिद्योतकमव्ययम् । गच्छामः=यामः ।
उभावीति । अर्थसिद्धये=प्रयोजनसाफल्याय ।
निष्क्रान्तः=निर्गतः, ब्रह्मचारीति शेषः ।
यौगन्धरायण इति । साधु=समीचीनम् । तत्र भवत्या=भर्तृदारिकया, पद्मावत्या इति भावः, अभ्यनुज्ञातः=आदिष्टः सन् । गन्तुम् इच्छामि=जिगमिषामि ।
काञ्चुकीय इति । तत्र भवत्या=माननीयया, भर्तृदारिकयेति भावः ।
पद्मावतीति । आर्यस्य=पूज्यस्य, भगिनिका=स्वसृका । उत्कण्ठिष्यते=उत्कण्ठिता भविष्यति ।

ब्रह्मचारी—आ="आ प्रगृह्य स्मृतो वाक्ये" इत्यमरः । "आपृच्छामि" यह प्रयोग प्रामादिक है, क्योंकि आङ् उपसर्गके योगमें प्रच्छ धातुका "आङि नुप्रच्छ्योः" इससे आत्मनेपद होकर "आपृच्छे" ऐसा रूप होता है ।
उभौ—अर्थसिद्धये=अर्थस्य, (प्रयोजनस्य=अध्ययनरूपस्येति भावः) सिद्धिः (सफलता) तस्मै (ष० त०) ।
यौगन्धरायणः—अभ्यनुज्ञातः=अभि+अनु+ज्ञा+क्तः ।
पद्मावती—भगिनिका=अनुकम्पिता भगिनी, "अनुकम्पायाम्" इस सूत्रसे

ब्रह्मचारी—मैं आप दोनोंसे (जाने के लिए) पूछता हूँ । मैं जाता हूँ ।
दोनों—प्रयोजनकी सिद्धिके लिए जाइए ।
ब्रह्मचारी—ऐसा ही हो ।

(जाता है)

यौगन्धरायण—अच्छा । मैं भी पूजनीय राजकुमारीसे आज्ञा पाकर जाना चाहता हूँ ।
काञ्चुकीय—पूजनीय राजकुमारीसे आज्ञा पाकर ये जाना चाहते हैं ।
पद्मावती—आर्यकी बहन आर्यके बिना उत्कण्ठित होंगी ।

यौगन्धरायण:—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। (काञ्चुकीयमवलोक्य) गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीय:—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायण:—तथाऽस्तु।

(निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीय:—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि। [आर्ये ! वन्दे।]

यौगन्धरायण इति। साधुजनहस्तगता = सज्जनकरस्थिता। एषा = मम भगिनी। न उत्कण्ठिष्यति = उत्कण्ठां न अनुभविष्यति।

काञ्चुकीय इति। पुनः = भूयः, दर्शनाय = विलोकनाय।

यौगन्धरायण इति। तथा = तेन प्रकारेण, उक्ताऽनुसारमिति भावः, अस्तु= भवतु। निष्क्रान्तः = निर्गतः, यौगन्धरायण इति शेषः।

काञ्चुकीय इति। इदानीम् = अधुना, अभ्यन्तरं = पर्णशालाऽभ्यन्तरं, प्रवेष्टुं=प्रवेशं कर्तुम्। समयः = कालः।

पद्मावतीति। आर्ये = पूज्ये, वन्दे = अभिवादये।

अनुकम्पाके अर्थमें कन् प्रत्यय होकर "केऽणः" इस सूत्रसे अण्का ह्रस्व हुआ है। आर्येण="विना" इस पदके योगमें "पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे तृतीया। उत्कण्ठिष्यते = उद्–उपसर्गपूर्वक "(मठि) कठि शोके" धातुसे लट् + त। यहाँपर शोकका अर्थ है आध्यान अर्थात् चिन्ता।

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगता=साधुश्चाऽसौ जनः (क० धा०), हस्तं गता (द्वि० त०)। साधुजनस्य हस्तगता (ष० त०)। उत्कण्ठिष्यति=उद्–उपसर्गपूर्वक चुरादिके "कठि शोके" धातुके लट्के प्रथम पुरुषका एकवचन।

काञ्चुकीयः—प्रवेष्टुं = प्र+विश्+तुमुन्।

यौगन्धरायण—सज्जनके हाथमें पड़ी हुई यह उत्कण्ठित नहीं होगी। (काञ्चुकीयको देखकर) मैं जाता हूँ।

काञ्चुकीय—फिर दर्शन देनेके लिए आप जाइए।

यौगन्धरायण—ऐसा ही हो।

(जाता है)

काञ्चुकीय—(राजकुमारि !) अभी पर्णशालाके भीतर प्रवेश करनेका समय हुआ है।

पद्मावती—आर्ये ! मैं अभिवादन करती हूँ।

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि। [जाते तव सदृशं भर्त्तारं लभस्व ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव अहं । [आर्ये ! वन्दे तावदहम् ।]

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि । [त्वमप्यचिरेण भर्त्तारं समासादय ।]

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि । [अनुगृहीतास्मि] ।

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इत इतो भवति ! सम्प्रति हि—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः

प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।

तापसीति । जाते=पुत्रि !, तव=भवत्याः, सदृशं=समानं, गुणयुक्तमिति भावः । भर्त्तारं=पतिं, लभस्व=प्राप्नुहि ।

तापसीति । अचिरेण=शीघ्रं, समासादय=प्राप्नुहि ।

वासवदत्तेति । अनुगृहीता=कृतानुग्रहा, अस्मि=भवामि ।

काञ्चुकीय इति । तत्=तस्मात्कारणात्, सायङ्कालस्य सामीप्यादिति भावः । भवति=हे पूज्ये, इतः इतः=अत्र अत्र, हि=यस्मात्, सम्प्रति=अधुना ।

अन्वयः—खगा वासोपेताः । मुनिजनः सलिलम् अवगाढः । प्रदीप्तः अग्निः

तापसी—तव="सदृशम्" पदके योगमे "तुलार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्" इससे तृतीयाके विकल्पमें एकपक्षमें षष्ठी ।

वासवदत्ता—अनुगृहीता=अनु+ग्रह+क्त+टाप् ।

खगा इति । खगा=खे गच्छन्तीति "अन्यत्रापि दृश्यते" इससे ख–उपपद-पूर्वक गम धातुसे डप्रत्यय । वासोपेताः=वासे उपेताः (स० त०) । अवगाढः=

तपस्विनी—पुत्रि ! आप अपने समान (गुणवान्) पतिको प्राप्त करें ।

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी अभिवादन करती हूँ ।

तपस्विनी—तुम भी शीघ्र अपने पतिको प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—मैं अनुगृहीत हूँ ।

काञ्चुकीय—तो आइए । राजकुमारी ! इधर-इधर, क्योंकि इस समय—

चिड़ियाँ घोसलोंमें गईं । तपस्वीलोग स्नान करने लगे । प्रज्वलित अग्नि शोभित हो

परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः ।

भाति । धूमो मुनिवनं प्रविचरति । दूरात् परिभ्रष्टः असौ रविः अपि संक्षिप्त-किरणः (सन्) रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ॥ १६ ॥

खगा इति । खगाः=पक्षिणः, वासोपेताः=कुलायं प्राप्ताः । मुनिजनः= तपस्विलोकः, सलिलं=जलम्, अवगाढः=प्रविष्टः, स्नातीति भावः । प्रदीप्तः= प्रज्वलितः, अग्निः=अनलः, भाति=शोभते । धूमः=धूम्रः, हवनजनितः सन्निति शेषः । मुनिवनं=तपोवनं, प्रविचरति=प्रचलति । दूरात्=विप्रकृष्टप्रदेशात्, परिभ्रष्टः=निपतितः सन्, असौ=अयं, रविः अपि=सूर्यः अपि, संक्षिप्तकिरणः= सङ्कुचितमरीचिः सन्, रथं=स्यन्दनं, व्यावर्त्य=निरुध्य, शनैः=मन्दम्, अस्तशिखरम्=अस्तपर्वतकूटं, प्रविशति=अवगाहते ॥ १६ ॥

निष्क्रान्ता इति । सर्वे=सकलाः, निष्क्रान्ताः=निर्गताः ।

इति प्रथमोऽङ्कः ।

अव+गाह+क्तः । संक्षिप्तकिरणः=संक्षिप्ताः किरणाः येन सः (बहु०) । व्यावर्त्य=वि+आङ्+वृत्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । अस्तशिखरम्=अस्तस्य शिखरं तत् (ष० त०) स्वभावोक्ति अलङ्कार । शिखरिणी छन्द ॥ १६ ॥

इति प्रथम अङ्क ।

अङ्कका लक्षण साहित्यदर्पणमें है—

"अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः ।"

अर्थात् जहाँपर अन्तमें सब पात्र निकलते हैं उसे "अङ्क" कहते हैं ।

इति श्रीस्वप्नवासवदत्ताव्याख्यायां चन्द्रकलाऽऽख्यायां प्रथमोऽङ्कः ।

रही है । धुआँ तपस्वियोंके वनमें फैल रहा है । दूसरे गिरे हुए ये सूर्य भी किरणोंको इकट्ठा कर रथको मोड़कर धीरे-धीरे अस्त पर्वतकी चोटीमें प्रवेश कर रहे हैं ॥ १६ ॥

(सब निकलते हैं ।)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणासि, एषा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति । जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअ भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचुलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्सं । [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति । यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि । अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्क्षतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति । यावदुपसर्प्यामि]

चेटीति । कुञ्जरिके कुञ्जरिके=त्वरायां वीप्सा । कुत्र=कस्मिन्स्थाने । माधवीलतामण्डपस्य=वासन्तीवल्लीमण्डपस्य, पार्श्वतः=समीपे, कन्दुकेन=गेन्दुकेन, क्रीडायाः करणेन । क्रीडति=खेलति । परिक्रम्य=इतस्ततो गत्वा । अम्मो=विस्मयद्योतकमव्ययम् । उत्क्षतकर्णचूलिकेन=ऊर्ध्वस्थापितश्रोत्राभरणेन, व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन=कन्दुकक्रीडाप्रसोत्पन्नघर्मजलवैचित्र्ययुक्तेन, परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन=परिश्रमयुक्तमनोहरविलोकनेन, मुखेन=वदनेन, उपलक्षिता सतीति शेषः । कन्दुकेन=गेन्दुकेन । क्रीडन्ती=खेलन्ती, इत एव=

चेटी—कुञ्जरिके कुञ्जरिके=जल्दबाजीके कारण द्विरुक्ति है । कुत्र=कस्मिन्निति, 'किम्' शब्दसे "सप्तम्यास्त्रल्" इस सूत्रसे त्रल् प्रत्यय होकर "कु तिहोः" इस सूत्रसे "किम्" के स्थानमें "कु" आदेश हुआ है । किं भणसि=यह उत्तरप्राप्तिका सूचक है । इसको नाटकमें आकाशभाषित कहते हैं । जैसे कि

(तब दासी प्रवेश करती है ।)

दासी—कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके !! राजकुमारी पद्मावती कहाँ हैं ? कहाँ हैं ? क्या कहती हो ? ये राजकुमारी वासन्तीलतामण्डपके समीपमें गेंद खेल रही हैं । राजकुमारीके पास जाती हूँ । (जाकर और देखकर) अरे ! ये राजकुमारी कानके आभरणों को ऊपर उठाकर व्यायाम (कसरत) से उत्पन्न स्वेदविन्दुओंसे विचित्र और थकनेसे सुन्दर दीखने वाले मुखसे उपलक्षित होकर इधर ही आ रही हैं । मैं उनके पास जाती हूँ ।

(निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह ।)

अत्र एव प्रदेशे । आगच्छति=आयाति, उपसर्पामि=समीपे गच्छामि । निष्क्रान्ता= निर्गता । प्रवेशकः ।

तत इति । सपरिवारा=चेटीरूपरिवारसहिता ।

साहित्यदर्पणमें है—

"किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥"

माधवीलतामण्डपस्य=माधवीलताया मण्डपः, तस्य (ष० त०)। "वासन्ती माधवी लता" इत्यमरः । कन्दुकेन=क्रीडन क्रियाके करणमें तृतीया । "गेन्दुकः कन्दुकः समौ" इत्यमरः । परिक्रम्य=परि+क्रम्+क्त्वा (ल्यप्) । उत्क्रुत-कर्णचूलिकेन=कर्णयोश्चूलिके कर्णचूलिके (ष० त०), उत्क्रुते कर्णचूलिके यस्मिस्तत्, तेन (बहु०) । यह "मुखेन" इस पदका विशेषण है । व्यायाम-सञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन=व्यायामेन सञ्जाताः (तृ० त०) । स्वेदस्य बिन्दवः (ष० त०) । "घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात्" इति । "पृषन्ति बिन्दुपृषताः" इत्यप्यमरः । व्यायामसञ्जाताश्च ते स्वेदबिन्दवः (क० धा०) । तैः विचित्र-तेन (तृ० त०) । परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन=परिश्रमणं परिश्रान्तम्, परि–उप-सर्गपूर्वक श्रम धातुसे भावमें क्तप्रत्यय । रमणीयं दर्शनं यस्य तत् (बहु०) । परिश्रान्तेन रमणीयदर्शनं, तेन (तृ० त०) । ये तीनों पद "मुखेन" इस पदके विशेषण हैं । मुखेन="इत्थंभूतलक्षणे" इस सूत्रसे तृतीया हुई है । क्रीडन्ती= क्रीडतीति, क्रीड+लट् (शतृ)+ङीप् । उपसर्पामि=उप–उपसर्गपूर्वक सृप्-धातुसे लट्+मिप् ।

प्रवेशकः—नीच पात्रके द्वारा पात्रप्रवेशके और पीछे होनेवाले चरित्रके सूचकको "प्रवेशक" कहते हैं । साहित्यदर्पणमें उसका लक्षण है—

"प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयाऽन्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥"

(निकलती है ।)

(तब गेंद खेलती हुई पद्मावती परिवार और वासवदत्ताके साथ प्रवेश करती है ।)

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ ! [हला । एष ते कन्दुकः ।]

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं । [आर्ये ! भवत्विदानीमेतावत् ।]

वासवदत्ता—हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता । [हला अतिचिर कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।]

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ । णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो । [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीयः कालः ।]

वासवदत्तेति । हला=हे सखि !

पद्मावतीति । आर्ये=पूज्ये, एतावत्=एतत्परिमाणं, कन्दुकक्रीडनं पर्याप्तं जातमिति भावः ।

वासवदत्तेति । अतिचिरं=बहुकालं यावत्, कन्दुकेन=गेन्दुकेन, क्रीडित्वा=क्रीडां कृत्वा, अधिकसञ्जातरागौ=प्रचुरोत्पन्नलौहित्यौ, ते=तव, हस्तौ=करौ, परकीयौ इव=अन्यदीयौ इव, संवृत्तौ=सञ्जातौ ।

चेटीति । क्रीडतु क्रीडतु=क्रीडां करोतु करोतु । कन्याभावरमणीयः=कुमारीभावसुन्दरः । कालः=समयः, निर्वर्त्यतां=समाप्यताम् । बाल्य एव क्रीडनम-

---

भूत और पीछे होनेवाले कथाके अंशोंका निदर्शक "विष्कम्भक" होता है वह अङ्कसे आदिमें होता है और प्रवेशक दो अङ्कोंके बीचमें होता है, इसमें और सब विष्कम्भकके अनुसार होता है ।

वासवदत्ता—हला="हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वाने, नीचां, चेटीं सखीं प्रति ।" इत्यमरः । सखीको "हला" कहकर सम्बोधन किया जाता है । अतिचिरं=क्रिया-विशेषण है । अधिकसञ्जातरागौ=सञ्जातः रागः (लौहित्यम्) ययोस्तौ (बहु०) । अधिकं यथा तथा सञ्जातरागौ (सुप्सुपा०) ।

चेटी—कन्याभावरमणीयः=कन्यायाः भावः (ष० त०), तेन रमणीयः

वासवदत्ता—सखि ! यह आपकी गेंद है ।

पद्मावती—आर्ये ! इस समय इतना ही हो ।

वासवदत्ता—सखि ! बहुत देर तक गेंद खेलनेसे ज्यादा लाल वर्णवाले होकर आपके हाथ दूसरोंके समान हो रहे हैं ।

दासी—राजकुमारी खेलें खेलें । कुमारीभावसे मनोहर समय बितायें ।

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ? [आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ?]

वासवदत्ता—णहि णहि ! हला ! अधिअं अज्ज सोहदि । अभिदो विअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानीं मामपहस ।]

वासवदत्ता—एसह्मि तुह्णीआ भविस्सम्महासेणवहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

पेक्षितं, न परिणयाऽनन्तरं यौवन इति भावः ।

पद्मावतीति । अपहसितुम् इव=उपहासं कर्तुम् इव, निध्यायसि=पश्यसि ।

वासवदत्तेति । नहि नहि=उपहासं कर्तुं न पश्यामि, न पश्यामीति भावः । शोभते=शोभां प्राप्नोति, त्वन्मुखमिति शेषः । अद्य=अस्मिन् दिने, ते=तव, वरमुखं=सुन्दरं वदनम्, अभित इव=सर्वत इव, पश्यामि=विलोकयामि ।

पद्मावतीति । अपेहि=दूरं गच्छ, इदानीम्=अधुना, मां, मा अपहस=उपहासं मा कार्षीः ।

वासवदत्तेति । हे भविष्यन्महासेनवधु=हे भाविप्रद्योतस्नुषे । एषा=इयम्, अह-

---

(तृ० त०) । निर्वर्त्यतां=निर्–उपसर्गपूर्वक "वृतु वर्तने" धातुसे कर्ममें लोट् ।

पद्मावती—माम्=हस धातुके अकर्मक होनेपर भी "अप" उपसर्गके योगमें सकर्मक होनेसे द्वितीया । निध्यायसि=नि–उपसर्गपूर्वक "ध्यै चिन्तायाम्" धातुसे, लट्+सिप् । "आलोकनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम् ।" इत्यमरः ।

वासवदत्ता—वरमुखं=वरं च तन्मुखं, तत् (क० धा०) ।

पद्मावती—मा अपहस=माङ्के न होनेसे विधि लोट् ।

वासवदत्ता—भविष्यन्महासेनवधु=महासेनस्य वधूः (ष० त०), "समाः

पद्मावती—आर्ये ! क्यों इस समय आप मानों मेरी हँसी करनेके लिए मुझे देख रही हैं ।

वासवदत्ता—सखि ! नहीं नहीं, (आपका मुख) आज बहुत शोभित हो रहा है । आज मैं चारों ओरसे आपका सुन्दर मुख देख रही हूँ ।

पद्मावती—हटिए, इस समय मेरी हँसी मत करें ।

वासवदत्ता—महासेनकी बहू होनेवाली ! यह मैं चुप हुई ।

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदो णाम । तस्स परिमाण-णिव्वुत्तं णामहेअं महासेणोत्ति । [अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम । तस्य परिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति ।]

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रञ्ञा सह सम्बन्धं णेच्छदि । [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति ।]

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीम-भिलषति ?]

मिति भावः, तूष्णीका=तूष्णींशीला, अस्मि=भवामि ।

पद्मावतीति । एषः=अयं, कः महासेनो नाम?तत्परिचयं ज्ञातुमिच्छामीति भावः।

वासवदत्तेति । उज्जयिनीयः=उज्जयिनीसम्बन्धी । तस्य=राज्ञः, प्रद्योतस्य, परिमाणनिर्वृत्तं=परिमितिनिष्पन्नं, वलस्येति शेषः । नामधेयं=नाम, महासेन इति ।

चेटीति । भर्तृदारिका=पद्मावती, तेन=पूर्वोक्तेन, राज्ञा=नृपेण, प्रद्योते-नेति भावः । सह=समं, सम्बन्धं=स्वीकरणरूपं संयोगं, न इच्छति=नो कामयते ।

वासवदत्तेति । अथ=पक्षान्तरे, केन=राज्ञा, अभिलषति=इच्छति, सम्बन्ध-मिति शेषः ।

स्नुषाजनीवध्वः" इत्यमरः । भविष्यन्ती चऽसौ महासेनवधूः, तत्सम्बुद्धौ, (क० धा०), "पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु" इससे पूर्वपदका पुंवद्भाव हुआ है। तूष्णीका=तूष्णीं शीलं यस्याः सा, "शीले को मलोपश्च" इससे 'क' प्रत्यय और 'म' का लोप हुआ है। स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् । "तूष्णींशीलस्तु तूष्णीकः" इत्यमरः ।

वासवदत्ता—उज्जयिनीयः=उज्जयिन्या अयम् ऐसा विग्रह कर "वा नामधेय-स्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या" इससे उज्जयिनी शब्दकी वृद्धसंज्ञा होनेसे "तस्येदम्" इसके अधिकारमें "वृद्धाच्छः" इससे 'छ' प्रत्यय होकर "आयनेयीनीयियः फढखछघां"

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—उज्जयिनीके प्रद्योत नामके राजा हैं । उनकी सेनाके परिमाणसे "महासेन" ऐसा नाम हुआ है ।

दासी—राजकुमारी उन राजाके साथ सम्बन्ध नहीं चाहती हैं ।

वासवदत्ता—तब किस राजासे इस समय सम्बन्ध करना चाहती हैं ?

चेटी—अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम । तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि । [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम । तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि । (प्रकाशम्) केण कारणेण ? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति । केन कारणेन ?]

चेटी—साणुक्कोसो त्ति । [सानुक्रोश इति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि । अअं वि जण एव्वं उम्मादिदो । [जानामि जानामि । अयमपि जन एवमुन्मादितः ।]

चेटीति । वत्सराजः=वत्सदेशानां राजा, उदयनः अस्ति । गुणान्=सौन्दर्यदयादाक्षिण्यादीन् गुणान् ।

वासवदत्तेति । केन, कारणेन=हेतुना, उदयनमभिलषतीति भावः ।

चेटीति । सानुक्रोशः इति=दयालुः इति हेतुना ।

वासवदत्तेति । अयम् अपि जनः=अहम् अपि जनः, एवम्=इत्थम्, उदयनस्य

प्रत्ययादीनाम्" इससे 'ईय' आदेश । परिमाणनिर्वृत्तं=परिमाणेन निर्वृत्तम् (तृ० त०) । नामधेयं=नाम एव, "नामन्" शब्दसे "वा भागरूपनामभ्यो धेयः" इससे स्वार्थ (प्रकृत्यर्थं) में "धेय" प्रत्यय । "नामधेयं च नाम च" इत्यमरः । महासेनः=महती सेना यस्य सः (बहु०) । यह प्रद्योतकी सेनाओंकी महत्ताके कारण अन्वर्थसंज्ञा है ।

चेटी—भर्तृदारिका=भर्तुः दारिका (बालिका), (ष० त०) । "कुमारी भर्तृदारिका" इत्यमरः । वत्सराजः=वत्सानां राजा (ष० त०), "राजाऽहः सखिभ्यष्टच्" इस सूत्रसे समासान्त टच् प्रत्यय । साऽनुक्रोशः=अनुक्रोशेन सहितः (तुल्ययोगबहु०) । "कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि" इत्यमरः । इति=अनेन हेतुना ।

वासवदत्ता—जानामि जानामि=संभ्रममें द्विरुक्ति । उन्मादितः=उद्-

---

दासी—उदयन नामके वत्सदेशके राजा हैं । राजकुमारी उनके गुणोंको चाहती हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) मेरे आर्यपुत्रको यह पति बनाना चाहती हैं । (प्रकटमें) किस कारणसे ।

दासी—वे दयालु हैं, इसलिए (चाहती हैं ।)

वासवदत्ता—(मन ही मन) जानती हूँ जानती हूँ । यह जन (मैं) भी इसी कारणसे उन्मत्त बनाई गई थी ।

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

वासवदत्ता—ण हि णहि । दसणीओ एव्व । [नहि नहि । दर्शनीय एव ।]

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुव जाणासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो । किं दाणिं करिस्सं ? होदु, दिट्ठं । (प्रकाशम्) हला ! एव्व उज्जइणीओ जणो मन्तेदि । [आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम् । हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते ।]

दयालुत्वेन कारणेन, उन्मादित.=उन्मादं प्रापितः ।

चेटीति । सः=पूर्वोक्तः, राजा=उदयनः, विरूपः=कुरूपः, भवेत्=स्यात् ?

वासवदत्तेति । नहि नहि=न न, स विरूपो न इति भावः । दर्शनीय एव=दर्शनयोग्य एव ।

पद्मावतीति । कथं=केन कारणेन ?

वासवदत्तेति । आर्यपुत्रपक्षपातेन=आर्यपुत्रासक्त्या, समुदाचारः=प्रोषितभर्तृकाचारः, अतिक्रान्तः=उल्लङ्घितः । दृष्टं=ज्ञातम्, आकारगुप्तिसाधनमिति शेषः । एवम्=इत्थम्, उज्जयिनीयः=उज्जयिनीवास्तव्यः, जनः=लोकः, मन्त्रयते=कथयति ।

उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'मद' धातुसे क्तप्रत्ययः ।

चेटी—विरूपः=विगतं रूपं (सौन्दर्यम्) यस्मात् सः (बहु०) । भवेत्=संभावनामें लिङ् ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्रपक्षपातेन=आर्यपुत्रे पक्षपातः, तेन (स० त०) । मन्त्रयते="मत्रि गुप्तभाषणे" धातुसे लट्+त ।

दासी—राजकुमारि ! यदि वे राजा कुरूप हों तो ?

वासवदत्ता—नहीं नहीं, दर्शनीय ही हैं ।

पद्मावती—आर्ये ! आप कैसे जानती हैं ?

वासवदत्ता—(मन ही मन) आर्यपुत्रके पक्षपातसे मैंने अपने आचार (प्रोषितभर्तृकाके नियम) का उल्लङ्घन किया । इस समय क्या करूँ ? अच्छा उपाय सूझा । (प्रकटमें) सखि ! उज्जयिनीके लोग ऐसा ही कहते हैं ।

पद्मावती—जुज्जइ। ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो। सव्वजणमणोभिरामं खु सोभग्गं णाम। [युज्यते। न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।]

(ततः प्रविशति धात्री।)

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए! दिण्णासि। [जयतु भर्तृदारिका। भर्तृदारिके! दत्तासि।]

वासवदत्ता—अय्ये! कस्स? [आर्ये! कस्मै?]

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स। [वत्सराजायोदयनाय।]

पद्मावतीति। युज्यते=संभाव्यते। एषः=वत्सराजः, उज्जयिनीदुर्लभः=विशालापुरीदुष्प्राप्यः, न खलु=नो वर्तते, वासवदत्ताया वीणाशिक्षकत्वादिति भावः। सौभाग्यं=सौन्दर्यं, सर्वजनमनोऽभिरामं=सकललोकचेतोहरम्।

तत इति। ततः=अनन्तरं, धात्री=उपमाता।

धात्री इति। दत्ता=वितीर्णा।

वासवदत्तेति। कस्मै=किंनामधेयाय पुरुषाय, दत्तेति शेषः।

पद्मावती—उज्जयिनीदुर्लभः=उज्जयिन्यां दुर्लभः (स० त०)। सौभाग्यं=शोभनं भगं (श्रीः सौन्दर्यम्) यस्य सः सुभगः (बहु०)। "भगं श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नाऽर्ककीर्तिषु" इत्यमरः। सुभगस्य भावः, सुभग+ष्यञ्। सर्वजनमनोऽभिरामं=सर्वे च ते जनाः (कर्म०)। तेषां मनः (ष० त०); सर्वजनमनसः अभिरामम् (ष० त०)।

तत इति। धात्री=दधातीति धात्री, 'धा' धातुसे तृच् प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय। "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु।" इत्यमरः।

पद्मावती—हो सकता है। ये (उदयन) उज्जयिनीमें दुर्लभ नहीं हैं। सौन्दर्य सब-लोगोंके मनका आकर्षक होता है।

(तब धाय प्रवेश करती है।)

धाय—राजकुमारीकी जय हो। राजकुमारि! आप दी गई हैं।

वासवदत्ता—आर्ये! किसे (दी गई)?

धाय—वत्सराज उदयनको।

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ? [अथ कुशली स राजा ?]

धात्री—कुसली सो आअदो । तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ । [कुशली स आगतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।]

वासवदत्ता—अच्चाहिदं । [अत्याहितम् ।]

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ? [किमत्रात्याहितम् ?]

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि ।, तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि त्ति । [न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति ।]

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि

वासवदत्तेति—कुशली=कुशलसम्पन्नः ।

धात्री इति ! प्रतीष्टा=स्वीकृता, तेन वाण्येति शेषः ।

वासवदत्तेत्ति । अत्याहितं=महाभीतिः ।

धात्री इति । अत्र=अस्मिन् विषये, उदयनकर्तृकपद्मावतीस्वीकार इति भाव ।

वासवदत्तेत्ति । तथा=तेन प्रकारेण, ब्रह्मचारिवर्णितपूर्वोक्तप्रकारेणेति भावः । सन्तप्य=सन्तापं कृत्वा । उदासीनः=तटस्थः ।

धात्री इति । महापुरुषहृदयानि=श्रेष्ठजनचित्तानि, आगमप्रधानानि=

वासवदत्ता—कुशली=कुशलम् अस्याऽस्तीति, "कुशल" शब्दसे "अत इनीठनौ" इस सूत्रसे इनि प्रत्यय ।

धात्री—तस्य="कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव" इस नियमके अनुसार तृतीयाके अर्थमें षष्ठी ।

वासवदत्ता—अत्याहितम्="अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवाऽनपेक्षि च" इत्यमरः । सन्तप्य=सं+तप्+क्त्वा (ल्यप्) ।

धात्री—महापुरुषहृदयानि=महान्तश्च ते पुरुषाः (क० धा०), तेषां

वासवदत्ता—अब वे राजा सकुशल हैं ?

धाय—वे कुशल होकर आये हैं । उन्होंने राजकुमारीको स्वीकार भी कर लिया ।

वासवदत्ता—बड़ा भय है ।

धाय—इसमें क्या बड़ा भय है ?

वासवदत्ता—कुछ भी नहीं है । उस तरहसे सन्ताप करके उदासीन होते हैं ।

धाय—आर्ये ! महापुरुषोंके हृदय शास्त्रवचनको मुख्य माननेवाले और सुलभ रूपसे प्रकृतिस्थ हो जाते हैं ।

होन्ति। [आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।]

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ? [आर्ये स्वयमेव तेन वरिता ?]

धात्री—णहि णहि। अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णाणव-ओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा। [नहि नहि। अन्यप्रयोजनेनेहा-गतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्वं ! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ! [एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः।]

(प्रविश्यापरा)

शास्त्रवचनप्रमुखानि, अतएव सुलभपर्यवस्थानानि = सुप्राप्यसहजप्रकृतीनि।

वासवदत्तेति। स्वयम्=आत्मना, तेन=उदयनेन, वरिता=स्वीकृता।

धात्री इति। नहि नहि=निषेधदार्ढ्ये द्विरुक्तिः। अन्यप्रयोजनेन=अपरहेतुना, अभिजनविज्ञानवयोरूपं=कुलकलाज्ञानाऽवस्थासौन्दर्यम्। महाराजेन = महाभट्टार-केण, दर्शकेनेति भावः।

वासवदत्तेति। एवम्=इत्थम्। अत्र = अस्मिन्विषये, पद्मावतीवरणविषय इति भावः। अनपराद्धः=अपराधरहितः, मन्मृत्योः स्वल्पकाल एव पद्मावतीवरणे-ऽपीपि शेषः।

प्रविश्येति। अपरा=अन्या, चेटीति भावः।

हृदयानि (ष० त०)। आगमप्रधानानि = आगमः प्रधानं येषां तानि (बहु०)। सुलभपर्यवस्थानानि=सुलभं पर्यवस्थानं येषां तानि (बहु०)।

वासवदत्ता—वरिता=“वर ईप्सायाम्” इस धातुसे क्त+टाप्।

धात्री—अन्यप्रयोजनेन=अन्यच्च तत् प्रयोजनं, तेन (क० धा०), अभिजन-विज्ञानवयोरूपम्=अभिजनं च विज्ञानं च वयश्च रूपं च, तत् (समाहारद्वन्द्वः)।

वासवदत्ता—अनपराद्धः=न अपराद्धः (नञ्०)।

वासवदत्ता—आर्ये ! उन्होंने क्या स्वयम् ही पद्मावतीको वरण किया ?

धाय—नहीं नहीं। दूसरे कारण से यहाँ आये हुए उनके कुलविज्ञान (कलानिपुणता), अवस्था और रूपको देखकर स्वयम् महाराजने उन्हें (पद्मावतीको) सौंपा।

वासवदत्ता—(मन ही मन) ऐसा ? इस समय आर्यपुत्र अपराधी नहीं है।

(प्रवेश कर दूसरी दासी।)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि । [त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभन नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं । [यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।]

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

चेटीति । आर्या=मान्या, धात्रीति भावः । त्वरतां त्वरतां=त्वरां करोतु करोतु, संभ्रमे द्विरुक्तिः । अद्य एव=अस्मिन्दिन एव, शोभनं=सुन्दरं, मङ्गलकार्यानुकूलमिति भावः, नक्षत्रं=तारा । कौतुकमङ्गलं=वैवाहिकमङ्गलसूत्रम्, भट्टिनी=महाराज्ञी ।

वासवदत्तेति । त्वरते=त्वरां करोति । अन्धीकरोति=अन्धं करोति ।

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

चेटी—त्वरतां त्वरताम्="ञित्वरा संभ्रमे" धातुसे लोट्+त । संभ्रममें द्विरुक्ति । कौतुकमङ्गलम्=उत्सवमाङ्गलिकं कर्म, भट्टिनी="भट्टिनी द्विजभार्यायां, नाट्योक्त्या राजयोषिति ।" इति विश्वः ।

वासवदत्ता—अन्धीकरोति=अनन्धम् अन्धं यथा संपद्यते तथा करोति, "कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः" इससे च्वि प्रत्यय और "अस्य च्वौ" इससे अ वर्णका ईत्व होता है ।

इति द्वितीय अङ्क ।

दासी—आर्या जल्दी करें आर्या जल्दी करें । आज ही सुन्दर नक्षत्र है ? आज ही कौतुक मङ्गल करना है ऐसा हमारी महारानी आज्ञा देती हैं ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह जैसे-जैसे जल्दबाजी करती है वैसे-वैसे मेरे हृदयको अन्धा बना रही है ।

धाय—राजकुमारी पधारें पधारें ।

(सब निकलते हैं ।)

दूसरा अङ्क समाप्त ।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं । जाव दाणिं भाअधेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि । (परिक्रम्य) अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । जाव उववसामि । (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ । ण खु अहं पाणाणि परिच्चजामि । अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ । [विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम् । यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावत् उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।]

वासवदत्तेति । विवाहामोदसङ्कुले=पद्मावत्युद्वाहहर्षपरिपूर्णे, अन्यःपुरचतुःशाले=शुद्धान्तसञ्जवने, प्रमदवनम्=अन्तःपुरोचितमुपवनम् । भागधेयनिर्वृत्तं=दुर्भाग्यनिष्पन्नं, दुःखम्=आर्यपुत्रविरहजनितं कष्टं, विनोदयामि=अपनयामि ।

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले=विवाहस्य आमोदः (ष० त०) । "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसम्मदाः ।" इत्यमरः । विवाहामोदेन सङ्कुलं, तस्मिन् (तृ० त०) । अन्तःपुरचतुःशाले=चतसृणां शालानां समाहारः चतुःशालम् (द्विगु०), "आवन्तो वा" इससे विकल्पसे नपुंसकलिङ्गी है । अन्तःपुरस्य चतुःशालं, तस्मिन् (ष० त०) । "सञ्जवनं त्विदम् । चतुःशालम्" इत्यमरः । प्रमदवनं=प्रमदानां वनम् (ष० त०), "ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्" इससे प्रमदाके आकारका विकल्पसे ह्रस्व हुआ है । अथवा प्रमदोत्पादकं वनं प्रमदवनम् (मध्यमपदलोपी०) । भागधेयनिर्वृत्तं=भागधेयेन निर्वृत्तम् (तृ० त०), तत् ।

(तब चिन्ता करती हुई वासवदत्ता प्रवेश करती हैं ।)

वासवदत्ता—विवाहके हर्षसे परिपूर्ण अन्तःपुर (रनिवासा) की चौशालामें पद्मावतीको छोड़ कर यहाँ अन्तःपुरकी बागमें आई हूँ । इस समय अपने भाग्यसे उत्पन्न दुःखको हटाती हूँ । (घूमकर) अहो ! बहुत भय है । आर्यपुत्र भी दूसरीके हो गये । अच्छा बैठती हूँ । (बैठकर) चकवी धन्य है, जो परस्परमें बिछुड़नेपर नहीं जीती है । मैं प्राणोंको नहीं छोड़ रही हूँ । आर्यपुत्रको देखूँगी इसी अभिलाषसे मैं अभागिनी जी रही हूँ ।

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी ।)

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इयं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिदभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा । जाव उवसप्पामि (उपसृत्य) अय्ये ! आवन्तिए ! को कालो, तुमं अण्णेसामि । [क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका ? अम्मो ! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा । यावदुपसर्पामि । आर्ये ! आवन्तिके ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

परकीयः=अन्यदीयः, पद्मावतीपतिरिति भावः । चक्रवाकवधूः=कोकभार्या । धन्या=पुण्यवती, अन्योन्यविरहिता=मिथोविप्रयुक्ता । मन्दभागा=अल्पभाग्या ।

चेटीति । आवन्तिका = अवन्तीभवा । अम्मो = विस्मयद्योतकमव्ययम् । चिन्ताशून्यहृदया=आध्याननिर्बोधचित्ता । नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा=तुषारावृतेन्दुरेखा । अमण्डितभद्रकम्=अनलङ्कृतमपि सुन्दरं, वेषं=नेपथ्यं, धारयन्ती=दधती, प्रियङ्गुशिलापट्टके=फलिनीपाषाणखण्डे, उपविष्टा=स्थिता, उपसर्पामि समीपं गच्छामि, कः कालः=कियान् समयः, अतीत इति शेषः । अन्विष्यामि=गवेषयामि ।

यावत् विनोदयामि="यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इस सूत्रसे "यावत्" पदके योगमें भविष्यत्कालके अर्थमें लट् । धन्या=धनं लब्धी, धन शब्दसे "धनगणं लब्धा" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय होकर टाप् । मन्दभागा=मन्दो भागो यस्याः सा (बहु०) ।

चेटी—चिन्ताशून्यहृदया=शून्यं हृदयं यस्याः सा (बहु०), चिन्तया शून्यहृदया (तृ० त०) । नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा=नीहारेण प्रतिहता (तृ० त०), सा चाऽसौ चन्द्रलेखा (क० धा०) । अमण्डितभद्रकं=भद्र इव भद्रकः स्वार्थे (प्रकृतिके अर्थ) में क प्रत्यय । अमण्डितश्चाऽसौ भद्रकः, तम् (क० धा०) । प्रियङ्गुशिलापट्टके=प्रियङ्गोः शिलापट्टकं, तस्मिन् (ष० त०), "प्रियङ्गुः फलिनी फली" इत्यमरः ।

(तब फूलोंको लेकर दासी प्रवेश करती है ।)

दासी—आर्या आवन्तिका कहाँ गई हैं ? (घूमकर और देखकर) अहो ! ये चिन्तासे शून्य चित्तवाली कुहरेसे आवृत चन्द्ररेखाके समान अलङ्कृत न होनेपर भी सुन्दर वेशको धारण करती हुई प्रियङ्गुलताके नीचे शिलापट्टमें बैठी हुई हैं । मैं इनके पास जाती हूँ । (पास जाकर) आर्ये आवन्तिके ! कितना समय बीत गया है, मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ ।

वासवदत्ता—किं णिमित्तं ? [किं निमित्तम् ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउत्ता त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या। [अस्माकं भट्टिनी भणति–महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या।]

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं ? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?]

चेटी—अम्हाअं भट्टिदारिआए। [अस्माकं भर्तृदारिकायै।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी। अहो अकरुणा खु इस्सरा। [एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः।]

वासवदत्तेति—किं निमित्तं=किं कारणम्, अहमन्विष्टास्मीति शेषः। महाकुलप्रसूता=उत्कृष्टवंशोत्पन्ना, स्निग्धा=स्नेहसम्पन्ना, निपुणा=तत्तत्कार्यप्रवीणेति भावः। कौतुकमालिकां=वैवाहिकस्रजं, गुम्फतु=ग्रथ्नातु।

वासवदत्तेति। अथ=प्रश्नाऽर्थकमव्ययम्। कस्मै=जनाय, गुम्फितव्यं=ग्रथनीयम्।

चेटीति। भर्तृदारिकायै=राजकुमार्यै, पद्मावत्या इति भावः।

वासवदत्तेति। एतत् अपि=इदम् अपि, सपत्न्याः कृते कौतुकमालागुम्फनमपि इति शेषः। कर्तव्यं=करणीयम्। ईश्वराः=देवाः, भाग्यविधातार इति शेषः, अकरुणाः=निर्दयाः, खलु=निश्चयेन।

चेटी—महाकुलप्रसूता=महच्च तत् कुलम् (क० धा०), तस्मिन्प्रसूता (स० त०)।

वासवदत्ता—कस्मै=गुम्फन कियाके योगमें "क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" इस वार्तिकसे सम्प्रदानसंज्ञा होकर चतुर्थी। अकरुणाः=अविद्यमाना करुणा येषां ते "नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः" इससे नञ्बहुव्रीहि।

वासवदत्ता—किसलिए ?

दासी—हमारी स्वामिनी कहती हैं आप महाकुलमें उत्पन्न, स्नेह करनेवाली और निपुण हैं इसलिए आप इस विवाहकी मालाको गूँथें।

वासवदत्ता—किसके लिए गूँथना है ?

दासी—हमारी राजकुमारीके लिए।

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह भी मेरा कर्तव्य रहा। अहो ! देवता लोग निर्दय हैं।

चेटी—अय्ये ! मा दाणिं अण्णं चिन्तिअ। एसो जामादुओ मणिभूमिए ह्लाअदि। सिग्घं दाव गुह्णदु अय्या। [आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा। एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति। शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं। (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम्। हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी—आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ। [आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च।]

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो। [आर्ये, भणामि तावत्, नेदृशो दृष्टपूर्वः।]

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ?]

चेटीति। इदानीम्=अस्मिन्समये, विवाहकाल इति भावः। अन्यत्=अपरं विषयान्तरमिति भावः। मा=न, कालक्षेपः कार्यं इति शेषः।

वासवदत्तेति। अन्यत्=अपरं, विषयान्तरमिति भावः। चिन्तयितुं=विचारयितुं, न शक्नोमि=न पारयामि। हला=सखि।

चेटीति। आं=स्वीकृतिद्योतकमव्ययम्, भर्तृदारिकायाः=पद्मावत्याः, स्नेहेन=प्रेम्णा, कौतूहलेन च=कौतुकेन च। दृष्टपूर्वः=पूर्वं दृष्टः।

वासवदत्तेति। भण भण=कथय कथय, संभ्रमे द्विरुक्तिः।

चेटी—स्नायति="ष्णै शौचे" इस धातुसे लट्+तिप्। दृष्टपूर्वः=पूर्वं दृष्टः, "सुप्सुपा" समास।

दासी—आर्ये ! इस समय आप और कुछ न सोचें। ये दामाद रत्न-भूमिमें स्नान कर रहे हैं। आर्या शीघ्र गूँथ दें।

वासवदत्ता—(मन ही मन) और विचार नहीं कर सकती हूँ। (प्रकट में) सखि ! क्या तुमने दामादको देखा ?

दासी—हाँ, राजकुमारीके स्नेह और अपने कौतुकसे देखा।

वासवदत्ता—दामाद कैसे हैं ?

दासी—आर्ये ! मैं कहती हूँ, ऐसे पुरुषको पहले नहीं देखा था।

वासवदत्ता—सखि ! कहो ! कहो ! क्या दर्शनीय हैं ?

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो कामदेवो त्ति। [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति।]

वासवदत्ता—होदु एत्तअं। [भवत्वेतावत्।]

चेटी—किण्णिमित्तं वारेसि ? [किंनिमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता—अजुत्तं परपुरुससङ्कित्तणं सोदुम्। [अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्त्तनं श्रोतुम्।]

चेटी—तेण हि गुह्मदु अय्या सिग्घं। [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम्।]

वासवदत्ता—इअं गुह्मामि। आणहि दाव। [इयं गुम्फामि। आनय तावत्।]

चेटी—गह्लदु अय्या। [गृह्णात्वार्या।]

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटीति। शरचापहीनः=वाणकार्मुकरहितः।

वासवदत्तेति। एतावत्=एतत्परिमाणम्।

चेटीति। किंनिमित्तं=किमर्थं, वारयसि=निषेधसि।

वासवदत्तेति। परपुरुषसंकीर्तनम्=अन्यजनवर्णनं, श्रोतुम्=आकर्णयितुम्, अयुक्तम्=अनुचितं, पतिव्रतयेति शेषः।

चेटीति। तेन=हेतुना, गुम्फतु=ग्रथ्नातु, मालामिति शेषः।

वासवदत्तेति। वर्जयित्वा=त्यक्त्वा, किमपीति शेषः।

चेटी—शरचापहीनः=शराश्च चापश्च शरचापाः (द्वन्द्व०)। शरचापैः हीनः (तृ० त०)। किंनिमित्तं=किं निमित्तं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा, (बहु०, क्रियाविशेषण)।

वासवदत्ता—परपुरुषसङ्कीर्तनं=परश्चासौ पुरुषः (क० धा०), तस्य संकीर्तनं, तद् (ष० त०)।

दासी—कह सकती हूँ कि ये बाण और धनुषसे रहित कामदेव हैं।

वासवदत्ता—बस इतना ही हो।

दासी—आप क्यों मना कर रही हैं ?

वासवदत्ता—परपुरुषका वर्णन सुनना अनुचित है।

दासी—इस कारणसे आर्या शीघ्र माला गूँथें।

वासवदत्ता—यह मैं गूँथती हूँ। पहले लाओ।

दासी—आर्या ले लें।

वासवदत्ता—(कुछ छोड़कर और देखकर) इस औषध (जड़ी) का क्या नाम है ?

चेटी—अविहवाकरणं णाम। [अविधवाकरणं नाम।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुम्फिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ। (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम? [इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च। इदं तावदौषधं किं नाम?]

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम। [सपत्नीमर्दनं नाम।]

वासवदत्ता—इदं ण गुम्फिदव्वं। [इदं न गुम्फितव्यम्।]

चेटी—कीस? [कस्मात्?]

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति।]

चेटीति। अविधवाकरणं=वैधव्याऽनुत्पादकं, सौभाग्यसम्पादकमिति भावः। नाम=प्रसिद्धौ।

वासवदत्तेति। इदम्=अविधवाकरणमौषधं, बहुशः=अनेकशः। गुम्फितव्यं=ग्रथनीयम्।

चेटीति। सपत्नीमर्दनम्=एकपत्नीसंचूर्णनम्।

वासवदत्तेति। इदं=सपत्नीमर्दनमौषधम्। न गुम्फितव्यं=नो ग्रथनीयम्।

चेटीति। कस्मात्=हेतोः।

वासवदत्तेति। तस्य=उदयनस्य, भार्या=पत्नी, उपरता=मृता। तत्=

चेटी—अविधवाकरणम्=विगतः धवः यस्याः सा विधवा (बहु०), "धवः प्रियः पतिर्भर्ता" "विश्वस्ताविधवे समे" इत्युभयमत्राऽप्यमरः। अविधवा क्रियते अनेन इति (करणमें ल्युट् प्रत्यय)। सपत्नीमर्दनं=समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी (बहु०), "नित्यं सपत्न्यादिषु" इस सूत्रसे समानके स्थानमें "स" होकर इकारके स्थानमें न आदेश और ङीप् प्रत्यय। सपत्नी मर्द्यते अनेन इति, पहलेके समान करणमें ल्युट्।

वासवदत्ता—निष्प्रयोजनं=निर्गतं प्रयोजनं यस्मात्तत् (बहु०)।

दासी—यह सौभाग्य करने वाली है।

वासवदत्ता—(मन ही मन) इसे मेरे और पद्मावतीके लिए बारंबार गूँथनी चाहिए। (प्रकट में) इस औषध (जड़ी) का क्या नाम है?

दासी—सपत्नीमर्दन अर्थात् सौतको मर्दन करनेवाला।

वासवदत्ता—इसे गूँथना नहीं चाहिए।

दासी—क्यों?

वासवदत्ता—उनकी पत्नी मर गई है, इसलिए इसे गूँथना बेकार है।

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरदु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि। [त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते।]

वासवदत्ता—अइ ! वदामि, गह्ण एदं। [अयि ! वदामि, गृहाणैतत्।]

चेटी—सोहणं। अय्ये ! गच्छामि दाव अहं। [शोभनम्। आर्ये ! गच्छामि तावदहम्।]

(उभे निष्क्रान्ते।)

वासवदत्ता—गदा एसा। अहो ! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ

तस्मात्कारणात्, निष्प्रयोजनं=निष्कारणम्।

प्रविश्येति। अपरा=अन्या, चेटीति भावः।

चेटीति। अविधवाभिः=सौभाग्यवतीभिः, स्त्रीभिरिति शेषः, अभ्यन्तरचतुःशालं=मध्यस्थानसञ्जवनं, प्रवेश्यते=प्रविष्टः कार्यते।

वासवदत्तेति। अयि=कोमलामन्त्रणे, गृहाण=स्वीकुरु, एतत्=स्रग्रूपं वस्त्विति भावः।

उभे इति। उभे=द्वे, चेट्यौ इति भावः। निष्क्रान्ते=निर्गते।

वासवदत्तेति। अविदा=विषादसूचकम् अव्ययम्। विनोदयामि=अपनयामि।

चेटी—त्वरतां त्वरतां="ञित्वरा संभ्रमे" धातुसे लोट्+त। संभ्रममें द्विरुक्ति, अविधवाभिः=न विधवाः, ताभिः (नञ्०)। अभ्यन्तरचतुःशालम्=चतसृणां शालानां समाहारः (द्विगु०), अभ्यन्तरे चतुःशालं तत् (स० त०)। प्रवेश्यते=प्र+विश्+णिच्+लट्+त (कर्ममें)।

वासवदत्ता—गृहाण="ग्रह उपादाने" धातुसे लोट्+सिप्, विनोदयामि=

(प्रवेश कर दूसरी दासी।)

दासी—आर्या जल्दी करें जल्दी। ये दामाद (राजा उदयन) सौभाग्यवती स्त्रियोंसे भीतरकी चौशालामें प्रविष्ट कराये जा रहे हैं।

वासवदत्ता—अरी ! कह रही हूँ। इसे ले लो।

दासी—बढ़िया है। आर्ये ! अब मैं जाती हूँ।

(दोनों जाती हैं।)

वासवदत्ता—यह (दासी) चली गई। अहो ! बहुत भय हुआ है। आर्यपुत्र भी

संवुत्तो। अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि। [गतैषा। अहो ! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। अविदा ! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे।]

(निष्क्रान्ता।)

तृतीयोऽङ्कः।

—: ❀ :—

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाह-मङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो। भो ! को णाम एवं जाणादि—तादिसे वयं

लभे=प्राप्नोमि। निष्क्रान्ता=निर्गता।

इति तृतीयोऽङ्कः।

तत इति। विदूषकः=राजमनोरञ्जकः सखा। दिष्टचा=सौभाग्येन, अभिप्रेत-

---

वि+नुद्+णिच्+लट्+मिप्। लभे="डुलभष् प्राप्तौ" धातुसे लट्+इट्।

तत इति—विदूषकः=राजाका दिल बहलाव करनेवाले और हँसाने वाले ब्राह्मण विशेषको "विदूषक" कहते हैं। उसका लक्षण है—

"कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरति विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः॥" (सा० द०, ३–४२)

अर्थात् "कुसुम" "वसन्त" इत्यादि नामवाला, वेष और भाषा आदियोंसे कर्मशील शरीरवाला, हँसानेवाला, कलह करानेमें प्रीति युक्त और भोजन आदि कर्ममें तत्पर व्यक्तिको "विदूषक" कहते हैं।

विदूषकः—दिष्टचा="दिष्टचा समुपजोषं च" इत्यमरः। अभिप्रेतविवाह-

दूसरीके हो गये। हाय ! शय्यामें लेट कर नींद आ जाय तो अपने दुःखको हटाती।

(जाती है।)

तीसरा अङ्क समाप्त।

(तब विदूषक प्रवेश करता है।)

विदूषक—(हर्षके साथ) अरे ! भाग्यसे माननीय वत्सराज (उदयन) के अभीष्ट

अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति। इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि। एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि। जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि! भो! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च। [भोः! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः! को नामैतज्जानाति–तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति। इदानीं प्रसादेपूष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि

विवाहमङ्गलरमणीयः=अभीष्टोद्वाहभद्रसुन्दरः। तादृशे=तत्सदृशे, अनर्थसलिलावर्ते= सङ्कटजलभ्रमे, प्रक्षिप्ताः=राज्याऽपहृति वासवदत्तादाहादिरूपे निपातिताः, पुनः= भूयः, उन्मङ्क्ष्यामः=उन्मुक्ता भविष्यामः, पद्मावतीपरिणयादिना आश्वस्ता भविष्याम इति भावः। अनर्थसलिलावर्तादुन्मज्जनं प्रतिपादयति—इदानीमिति। इदानीम्=अधुना, प्रासादेषु=राजभवनेषु, उष्यते=वासः क्रियते, अन्तःपुरदीर्घिकासु=शुद्धान्तवापीषु, स्नायते=स्नानं क्रियते। प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि=

मङ्गलरमणीयः=अभिप्रेतं च तत् विवाहमङ्गलं (क० धा०), तेन रमणीयः (तृ० त०)। अनर्थसलिलावर्ते=सलिलस्य आवर्तः (ष० त०), "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः। अनर्थ एव सलिलावर्तः, तस्मिन्, "मयूरव्यंसकादयश्च" इस सूत्रसे रूपकसमास। यहांपर "आवर्त" पदसे ही सलिलका आवर्त जलका भँवर ऐसे अर्थकी उपस्थिति होनेपर भी 'सलिल' पदका ग्रहण करनेसे "विशिष्टवाचकानां पदानां सति पृथग्विशेषणवाचकपदसमवधाने विशेष्यमात्रपरत्वम्" इस नियमके अनुसार "सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः," इत्यादि स्थानोंके समान 'आवर्त' का अर्थ सामान्य भँवर होनेसे 'सलिल' पदमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता है। दुस्तार सङ्कटके भँवरमें ऐसे विशिष्ट अर्थकी प्रतीति होती है। उन्मङ्क्ष्यामः=उद्–उपसर्गपूर्वक "टुमस्जो शुद्धौ" इस धातुसे लृट्–मस्‌का रूप है। प्रासादेषु="प्रासादो देवभूभुजाम्" इत्यमरः। उष्यते="वस निवासे" धातुसे भावमें लट्+त। अन्तःपुरदीर्घिकासु=अन्तःपुरस्य दीर्घिकाः, तासु (ष० त०),

---

विवाहमङ्गलसे सुन्दर कालको देख लिया। अरे! कौन ऐसा जानता था हमलोग वैसे संकटरूप जलके भँवर (राज्यका अपहरण और वासवदत्ताका दाह) में फेंके जाकर भी फिर उतरेंगे। इस समय महलोंमें रहते हैं, अन्तःपुरकी बावलियोंमें स्नान करते हैं,

मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भोः! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।]

स्वभावमिष्टकोमलानि, मोदकखाद्यानि=लड्डुकभक्ष्यपदार्थाः, खाद्यन्ते=भक्ष्यन्ते। इति=अस्मात्कारणात्, अनप्सरःसंवासः=अप्सरःसहवासरहितः, उत्तरकुरुवासः=देवभूमिविशेषनिवासः, अनुभूयते=उपभुज्यते। दोषः=दूषणम्, आहारः=भोज्यपदार्थः, सुष्ठु=सम्यक्, न परिणमति=परिपाकं न गच्छति। सुप्रच्छदनायां=शोभनास्तरणयुक्तायां, शय्यायां=कशिपौ, निद्रां=स्वापं, न लभे=न प्राप्नोमि। अभितः=स्वस्थानमुभयत इति भावः। वातशोणितं=तदाख्यो रोगः, यत्र वातजं दुष्टं शोणितं भवति। वर्तते इव=विद्यते इव। इति=एवम्। आमयपरिभूतं=रोगाक्रान्तम्, [अकल्यवर्तं च=प्रातर्भोजनाऽभावः च, सुखं न=आनन्दो न।

"वापी तु दीर्घिका" इत्यमरः। प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि प्रकृत्या मधुराणि, "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इससे तृतीया विभक्ति, (तृ० त० समास)। प्रकृतिमधुराणि च तानि सुकुमाराणि (क० धा०)। मोदकखाद्यानि=मोदकादीनि खाद्यानि (मध्यमपदलोपी स०)। अनप्सरःसंवासः=अप्सरसां संवासः अप्सरःसंवासः (ष० त०), "स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः।" इत्यमरः। अविद्यमानः अप्सरः संवासो यस्मिन् सः (नञ् बहु०), यह पद "उत्तरकुरुवासः" इस पदका विशेषण है। उत्तरकुरुवासः=उत्तराश्च ते कुरवः (क० धा०), संज्ञा होनेसे 'उत्तर' पदको सर्वनाम संज्ञा नहीं हुई। उत्तरकुरुषु वासः (स० त०)। सुप्रच्छदनायां=प्रच्छद्यते अनेन इति प्रच्छदनम्, प्र–उपसर्गपूर्वक "छद अपवारणे" धातुसे करणमें ल्युट्, शोभनं प्रच्छदनं यस्यां सा सुप्रच्छदना, तस्याम् (बहु०)। यह 'शय्यायाम्" इस पदका विशेषण है। आमयपरिभूतम्=

स्वभावसे मीठे और कोमल लड्डू आदि खाद्य पदार्थोंको खाते हैं। अप्सराके सहवाससे रहित देवभूमिविशेषके निवासको मैं अनुभव कर रहा हूँ। एक ही बड़ा दोष यही है कि मेरा आहार अच्छी तरह नहीं पचता है। बढ़िया आस्तरणसे युक्त बिछौनेमें भी नींद नहीं आती है। चारों ओर वातरक्तकी बीमारी रहती हुईकी तरह देख रहा हूँ। अरे! रोगसे आक्रान्त होना और प्रातर्भोजन (कलेवा) नहीं करना।

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो ! एसो अय्यवसन्तओ (उपगम्य) अय्य ! वसन्तअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि । [कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ? [किन्निमित्तं भद्रे मामन्विष्यसि ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति । [अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति ।]

चेटीति । आर्यवसन्तकः=पूज्यवसन्तकः, कुत्र=कस्मिन्, स्थान इति शेषः । कः=कियान्, अन्विष्यामि=अन्वेषणं कुर्वती अस्मि ।

विदूषक इति । किंनिमित्तं=किमर्थम्, अन्विष्यसि=अन्वेषणं करोषि ।

चेटीति । भट्टिनी=राजपत्नी, जामाता=दुहितृपतिः, उदयन इत्यर्थः । स्नातः अपि=किं स्नानं कृतवान् ।

परिभवनं परिभूतम्, परि–उपसर्गपूर्वक भू-धातुसे "नपुंसके भावे क्तः" इस सूत्रसे क्तप्रत्ययः । आमयेन परिभूतम् (तृ० त०) । "स्त्री रुग्रुजा चोपतापरोगव्याधि-गदाऽऽमयाः ।" इत्यमरः । अकल्यवर्तम्=कल्ये वर्तनं कल्यवर्तः, भावमें घञ् । लक्षणासे कल्यवर्तका अर्थ प्रातःकालिक भोजन हुआ है । "प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्य-मुषःप्रत्युषसी अपि ।" इत्यमरः । कल्यवर्तस्य अभावः, अर्थाऽभाव अर्थमें "अव्ययं विभक्तिसमीप०" इस सूत्रसे अव्ययीभाव समास ।

विदूषक—किंनिमित्तं=किं निमित्तं यस्मिन्कर्मणि, तद्यथा तथा (बहु०) ।

चेटी—स्नातः अपि="ष्णा शौचे" धातुसे "गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थास-वसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च" इस सूत्रसे कर्ताके अर्थमें क्त-प्रत्यय । अपि प्रश्नाऽर्थक है ।

(तब दासी प्रवेश करती है ।)

दासी—आर्य वसन्तक कहाँ गये हैं ? (घूमकर और देखकर) ओहो ! ये आर्य वसन्तक हैं (पास जाकर) आर्य वसन्तक ! कितना समय हुआ मैं आपको ढूँढ रही हूँ ।

विदूषक—(देखकर) भद्रे ! मुझे किस लिए ढूँढ़ रही हो ?

दासी—हमारी रानी कहती हैं—क्या दामादने स्नान किया ?

विदूषकः—किंणिमित्तं भोदि पुच्छदि। [किंनिमित्तं भवती पृच्छति ?]

चेटी—किमण्णं। सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति। [किमन्यत् सुमनोवर्णक-मानयामीति।]

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं। सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं। [स्नात-स्तत्रभवान्। सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम्।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ? [किंनिमित्तं वारयसि भोजनम् ?]

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

विदूषक इति। भवती=माननीया पृच्छति, भट्टिनीति भावः।

चेटीति। अन्यत्=अपरं, सुमनोवर्णकं=पुष्पचन्दनादि-विलेपनम्। आन-यामि=आनयनं करोमि, इति=कारणात्।

विदूषक इति। तत्रभवान्=माननीयः, राजेति भावः। स्नातः=स्नानं कृतवान्। भोजनं=भोज्यपदार्थं, वर्जयित्वा=त्यक्त्वा, भवती=श्रीमती, सर्वं=सकलं, पदार्थमिति शेषः।

चेटीति। वारयसि=निवारयसि।

विदूषक इति। अधन्यस्य=भाग्यरहितस्य, कोकिलानां=पिकानाम्, अक्षिपरि-वर्त इव=नेत्रपरिवर्तनम् इव, कुक्षिपरिवर्तः=उदरपरिवर्तनम्, उदररोग इति भावः। संवृत्तः=संजातः।

चेटी—सुमनोवर्णकं=सुमनश्च वर्णकं च (समाहारद्वन्द्व), "स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्।" इति "गात्राऽनुलेपनी वर्तिर्वर्णकं स्याद्वि-लेपनम्।" इति चाऽमरः।

विदूषकः—अक्षिपरिवर्तः=अक्ष्णोः परिवर्तः (ष० त०)। परिवर्तनं परिवर्तः, भावमें घञ्। कुक्षिपरिवर्तः=कुक्षेः परिवर्तः (ष० त०)। "पिचण्डकुक्षी जठ-रोदरं तुन्दम्" इत्यमरः।

विदूषक—किस लिए तुम्हारी रानी पूछ रही हैं ?

दासी—और क्या ? फूलोंकी माला और चन्दन आदि लेपन पदार्थ लाऊँ इसलिए।

विदूषक—महाराजने स्नान किया। आप भोज्य पदार्थको छोड़कर सब ले आइए।

दासी—किसलिए आप भोज्य-पदार्थ लानेको मना करते हैं।

विदूषक—कोयलोंकी आँखके परिवर्तनके समान भाग्यहीन मेरा भी पेटमें परिवर्तन (मरोड़) हो गया है।

चेटी—ईदिसो एव्व होदि। [ईदृश एव भव।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ।)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च।)

चेटी—किंण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ? [किंनिमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

चेटीति। ईदृश एव=एतादृश एव, कुक्षिपरिवर्तयुक्त एवेति भावः।

विदूषक इति। तत्रभवतः=माननीयस्य राज्ञ इति भावः। सकाशं=समीपम्।

प्रवेशकः।

चेटीति। किंनिमित्तं=किमर्थम्।

चेटी—ईदृशः=अनेन सदृशः, इदम्—उपपदपूर्वक "दृश" धातुसे "त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" इस सूत्रसे कञ् प्रत्यय होकर 'इदम्' शब्दके स्थानमें "इदं-किमोरीश्की" इस सूत्रसे ईश् आदेश। चेटी आप ऐसे ही (उदररोगी) हों ऐसा परिहास करती है।

विदूषकः—सकाशं="सदेशाऽभ्याससविधसमर्यादसवेशवत्।"

प्रवेशकः=इसका लक्षण पहले ही कर चुके हैं। यहाँपर चेटी और विदूषकसे अनुदात्त भाषितके रूपमें उदयनका व्यतीत विवाहका फूल और चन्दन आदि विलेपन लानेका निदर्शन किया गया है।

तत इति। आवन्तिकावेषधारिणी=आवन्तिकाया वेषः (ष० त०), तं धारयतीति तच्छीला, आवन्तिकावेष+धृ+णिच्+णिनि+ङीप्।

चेटी—किंनिमित्तं=किं निमित्तं यस्मिन् (कर्मणि तद्यथा तथा) (बहु०),

---

दासी—आप ऐसे ही होते रहें।

विदूषक—आप जाइए। अब मैं भी राजा साहबके पास जाता हूँ।

(दोनों निकलते हैं।)

प्रवेशक।

(तब परिवारके साथ पद्मावती और आवन्तिकाका वेष लेने वाली वासवदत्ता भी प्रवेश करती हैं।)

दासी—राजकुमारी किस लिए अन्तःपुरके बागीचेमें पधारी हैं ?

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोतिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं [भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।]

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणि विलम्बेसि ? [हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव

पद्मावतीति । शेफालिकागुल्मकाः=निर्गुण्डीस्तम्बाः, कुसुमिताः=संजातपुष्पाः ।

चेटीति । ते=शेफालिकागुल्मकाः । प्रवालाऽन्तरितैः=विद्रुमव्यवहितैः, अथवा पल्लवव्यवहितैः, मौक्तिकलम्बकैः इव=मुक्ताकण्ठभूषणविशेषैः इव, कुसुमैः=पुष्पैः । आचिताः=व्याप्ताः, सन्तीति शेषः ।

पद्मावतीति । एवं यदि=इत्थं चेत्, शेफालिकाः कुसुमिता यदि इति भावः । विलम्बसे=विलम्बं करोषि, कुसुमाऽवचाय इति शेषः ।

चेटीति । तेन=कारणेन । शिलापट्टके=पाषाणफलके । मुहूर्तकं=कञ्चित्क्षणम् ।

यह 'आगता' इसका क्रिया विशेषण है ।

पद्मावती—हला=हे सखि !, "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति ।" इत्यमरः । यहाँपर चेटीको सम्बोधन करनेमें "हञ्जे" इस पदका प्रयोग अपेक्षित था, परन्तु इस चेटीकी और चेटियोंसे कुछ विशिष्टता होनेसे "हला" पदसे सखियोंके समान सम्बोधन किया गया है । शेफालिकागुल्मकाः=गुल्मा एव गुल्मकाः, स्वाऽर्थमें कप्रत्यय । शेफालिकाया गुल्मकाः (ष० त०) । "शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिका च सा ।" इत्यमरः । कुसुमिताः=कुसुमानि संजातानि एषां ते, 'कुसुम' शब्दसे "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच्प्रत्यय ।

चेटी—मौक्तिकलम्बकैः=मौक्तिकानां लम्बकानि, तैः (ष० त०) ।

पद्मावती—सखि ! वे हरसिंगारके गुच्छे खिले हैं या नहीं यह देख रही हूँ ?

दासी—वे (हरसिंगार) खिल गये हैं, बीच-बीचमें मूँगोंसे गूँथी गयी मोतियोंकी मालाओंके समान फूलोंसे भरे पूरे हैं ।

पद्मावती—सखि ! ऐसा हो तो अभी क्यों विलम्ब कर रही हो ?

दासी—तब राजकुमारी इस पत्थरकी चट्टानपर कुछ समय तक बैठिए । जब तक

अहं वि कुसुमावचअं करोमि । [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि ।]

पद्मावती—अय्ये किं एत्थ उवविसामो ? [आर्ये ! किमत्रोपविशावः ?]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे उपविशतः ।)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं ! [पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो । विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या । [अहो ! विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या ।]

वासवदत्तेति । एवं भवतु = इत्थमस्तु, आवाभ्यामुपविश्यतामिति भावः ।

चेटीति । अर्धमनःशिलापट्टकैः इव = अर्धमनोगुप्ताखण्डैः इव, शेफालिका-कुसुमैः = निर्गुण्डीपुष्पैः, पूरितं=पूर्णं, मे = मम, अञ्जलिं = संयुतकरपुटं, पश्यतु पश्यतु = विलोकयतु विलोकयतु, संभ्रमे द्विरुक्तिः ।

पद्मावतीति । विचित्रता = अनेकवर्णता, शुक्लरक्तवर्णसौन्दर्यसम्पन्नता ।

कुसुमाऽवचयं = कुसुमानाम् अवचयस्तम् (ष० त०) । यहाँपर आदेय (फूल)-की प्रत्यासत्ति होनेसे "हस्तादाने चेरस्तेये" इस सूत्रसे घञ् प्रत्यय होकर 'कुसुमा-वचाय' ऐसा प्रयोग इष्ट था, परन्तु संग्रह अर्थके अनुरोधसे "एरच्" इस सूत्रसे अच् प्रत्यय होकर "अवचय" ऐसा किया गया है । अर्द्धमनःशिलापट्टकैः=मनः-शिलानां पट्टकाः (ष० त०) । "मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ।" इत्यमरः । अर्द्धं मनःशिलापट्टकाः, तैः (स० त०) ।

मैं भी फूलोंको इकट्ठा करती हूँ ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या हम दोनों यहाँपर बैठें ?

वासवदत्ता—ऐसा ही हो ।

(दोनों बैठती हैं ।)

दासी—(फूलोंको इकट्ठा कर) आधे भागमें मैनसिलके टुकड़ेके समान हरसिंगारके फूलोंसे भर गई मेरी अञ्जलिको राजकुमारी देखें देखें ।

पद्मावती—(देखकर) अहो ! फूलोंकी विचित्रता है । आर्या देखिए देखिए ।

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाण [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

चेटी —भट्टिदारिए! किं भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके! किं भूयोऽवचेष्यामि?]

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

वासवदत्ता —हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किंनिमित्तं वारयसि ?]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिदा भवेअं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ? [हला ! प्रियस्ते भर्ता ?]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

चेटीति । भूयः=पुनः, अवचेष्यामि=अवचायं कुर्यां किम् ।

पद्मावतीति । अवचित्य=अवचायं कृत्वा, मा मा=परिश्रमं मा कार्षीरिति भावः ।

वासवदत्तेति । वारयसि=निवारणं करोषि ।

पद्मावतीति । आर्यपुत्रः=आर्यपुत्रेण इति युक्तम्, उदयनेनेति भावः । कुसुमसमृद्धिः=पुष्पप्रचुरतां, सम्मानिता=समादृता । न जानामि=नो वेद्मि, आर्यपुत्रो मे प्रिय इति न जानामीति भावः । विरहिता=वियुक्ता, उत्कण्ठिता=उत्सुका ।

पद्मवती—अवचित्य=अव+चि+क्त्वा (ल्यप्), मा मा='माङ्' पदका योग होनेसे "प्रयासं कार्षीः" ऐसा अध्याहार करना चाहिए । आर्यपुत्रः= "सम्मानिता" ऐसा पद होनेसे कर्ताके आर्यपुत्रके अनुक्त होने "आर्यपुत्रेण" ऐसा होना चाहिए ।

वासवदत्ता—अहो ! फूलोंकी दर्शनीयता है ।

दासी—राजकुमारी ! क्या फूलोंको और इकट्ठा करूँ ?

पद्मावती—सखि ! और फूलोंको मत इकट्ठा करो, मत इकट्ठा करो ।

वासवदत्ता—सखि ! क्यों रोक रही हो ?

पद्मावती—यहाँ आकर इन फूलोंकी समृद्धिको देखकर आर्यपुत्र से सम्मानित होना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—सखि ! आपको पति (उदयन) प्रिय हैं ?

पद्मावती—आर्ये ! यह मैं नहीं जानती हूँ, परन्तु आर्यपुत्रके बिना उत्कण्ठित हो जाती हूँ ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खर खु अहं करेमि। इअं वि णाम एवं मन्तेदि ! [दुष्कर खल्वहं करोमि। इयमपि नामैव मन्त्रयते ।]

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तोति । [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं–प्रियो मे भर्तेति ।]

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो । [एकः खलु मे सन्देहः ।]

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए ? [यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति ।]

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं ! [अतोऽप्यधिकम् ।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ? [कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो ।

वासवदत्तेति । दुष्करं=दुर्विधेयं, कर्मेति शेषः । करोमि=विदधामि । इयम्=एषा अपि, नवपरिणीता पद्मावत्यपीति भावः । मन्त्रयते=परिभाषते ।

चेटीति । अभिजातं=कुलीनताऽनुरूपम् ।

पद्मावतीति । सन्देहः=संशयः ।

वासवदत्तेति । अतः अपि=अस्याः त्वत् अपि इति भावः । अधिकं=विशेषं यथा तथा प्रिय इति भावः ।

पद्मावतीति । कथं=केन प्रकारेण, वासवदत्ताया मदपेक्षयाऽपि प्रिय आर्यपुत्र इति भावः ।

वासवदत्तेति । हं=शङ्काद्योतकमव्ययम् । आर्यपुत्रपक्षपातेन=पत्यासक्त्या,

---

वासवदत्ता—दुष्करं=दुःखेन कर्तुं शक्यम्, "दुष्" उपसर्गपूर्वक "कृ" धातुसे "ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्राऽर्थेषु खल्" इस सूत्रसे खल् प्रत्यय ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) मैं दुष्कर कर्म कर रही हूँ। यह (नई दुलहिन) भी ऐसा कहती है ।

दासी—राजकुमारीने कुलीनताके अनुरूप कहा है कि पति मुझे प्रिय है ।

पद्मावती—मुझे एक शङ्का है ।

वासवदत्ता—क्या ? क्या ?

पद्मावती—जैसे मुझे आर्यपुत्र (प्रिय) हैं वैसे ही आर्या वासवदत्ताको भी हैं ।

वासवदत्ता—इससे भी अधिक ।

पद्मावती—आप कैसे जानती हैं ?

वासवदत्ता—(मन ही मन) ओह ! आर्यपुत्रके पक्षपातसे सदाचारका उल्लङ्घन

एव्वं दाव भणिस्सं (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । एवं तावद् भणिष्यामि । यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजन न परित्यजति ।]

पद्मावती—होदव्वं [भवितव्यम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति। [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो । [उक्तो ममार्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ? [ततः किं भणितम् ?]

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णीओ संवृत्ता। [अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

समुदाचारः=आत्मगोपनरूप आचारः, अतिक्रान्तः=उल्लङ्घितः । स्वजनम्=आत्मीयलोकं, मातापित्रादिकमिति भावः ।

पद्मावतीति । भवितव्यं=भाव्यं, त्वदुक्त्येति शेषः । त्वदुक्तिः=संभवतीति भावः ।

चेटीति । साधु=समीचीनं यथा तथा । वीणां=वल्लकीं वीणावादनमिति भावः । शिक्षिष्ये=ग्रहीष्यामि, भवत इति शेषः ।

पद्मावतीति । उक्तः=कथितः, प्रार्थित इति भावः ।

वासवदत्तेति । तदा=तस्मिन्समये, उत्तररूप इति भावः । भणितं=कथितं, तेनेति शेषः ।

पद्मावतीति । तूष्णीकः=तूष्णींशीलः ।

चेटी—वीणाम्=यहाँपर लक्षणासे "वीणावादनम्" ऐसा अर्थ करना चाहिए। शिक्षिष्ये = "शिक्ष विद्योपादाने" धातुसे लट् + थास् ।

पद्मावती—दीर्घम् = यह निःश्वसन क्रियाका विशेषण है । निःश्वस्य =

किया। अच्छा ऐसा कहती हूँ। (प्रकट में) उनका पतिपर प्रेम थोड़ा होता तो आत्मीयजनोंको नहीं छोड़तीं ।

पद्मावती—हो सकता है ।

दासी—राजकुमारि ! पतिसे अच्छी तरहसे कहिए कि मैं भी बीन सीखूँगी ।

पद्मावती—मैंने आर्यपुत्रको कहा था ।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—कुछ भी न कहकर लम्बे श्वासोंको लेकर आर्यपुत्र चुप हो गये ।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि ? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति। [तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणताया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

वासवदत्तेति । तर्कयति = ऊहसे ।

पद्मावतीति । गुणान् = सौन्दर्याऽनुरागादीनिति भावः । दक्षिणतायाः = सर्वचित्ताऽनुवर्तितायाः ।

वासवदत्तेति । धन्या = भाग्यवती ।

निस्+श्वस्+क्त्वा (ल्यप्) ।

वासवदत्ता—तर्कयसि="तर्क भाषायाम्" इस चुरादि धातुसे लट्+सिप् । मैत्रेयके अनुसार यहाँपर "ऊह" अर्थमें इसका प्रयोग किया गया है ।

पद्मावती—दक्षिणतायाः = दक्षिणस्य भावो दक्षिणता, तस्याः दक्षिण+तल्+टाप् । "विभाषागुणोऽस्त्रियाम्' इस सूत्रसे हेतुमें पञ्चमी । सामान्यतः नायकके चार भेद होते हैं—दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ । दक्षिण नायकका साहित्यदर्पणमें ऐसा लक्षण किया गया है—

"एषु त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः" । ३–३५

अर्थात् अनेक स्त्रियोंमें तुल्य अनुरागवाले नायकको "दक्षिण" कहते हैं । वासवदत्ताके गुणोंकी याद करनेसे आँखोंमें आँसू भर जानेपर भी नवविवाहिता पत्नी पद्मावतीके हृदयमें खेद न हो ऐसा विचार कर राजा लम्बी श्वास लेकर चुप रहे यह इसका भावार्थ है ।

वासवदत्ता—अब आप क्या सोचती हैं ?

पद्मावती—आर्या वासवदत्ताके गुणोंकी याद कर उदारताके कारण मेरे सामने नहीं रोते हैं मैं ऐसा सोचती हूँ ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) यह सच है तो मैं धन्य हूँ ।

(तब राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं ।)

विदूषकः—ही ! ही ! पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं । [ही ही ! प्रचितपतितवन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदी कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥ १ ॥

विदूषक इति । प्रचितपतितवन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयम्=अवचितस्रस्तवन्धूकपुष्पतनुपतनसुन्दरम्, प्रमदवनम्=अन्तःपुरोचितोपवनम् । इतः=अस्मात्स्थानात्, आगच्छत्विति शेषः ।

राजेति । वयस्य=मित्र !

अन्वयः—तदा उज्जयिनीं गते अवन्तिराजतनयां स्वैरं दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इषवः पातिताः । अद्य अपि तैः हृदयं सशल्यम् एव । भूयश्च वयं विद्धाः । मदनः पञ्चेषुः यदि, अयं षष्ठः शरः कथं पातितः ? ॥ १ ॥

कामेनेति । तदा=तस्मिन् समये, उज्जयिनीं=विशालाऽभिधां, पुरीं, गते=प्राप्ते, अवन्तिराजतनयां=प्रद्योतभूपालपुत्रीं, वासवदत्तामिति भावः, स्वैरम्

विदूषकः—प्रचितपतितवन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं = बन्धुजीवानि च तानि कुसुमानि, (क० धा०), "बन्धूकं बन्धुजीवकम्" इत्यमरः । प्रचितानि च तानि पतितानि (कर्म०) । प्रचितपतितानि च तानि बन्धुजीवकुसुमानि (कर्म०), तेषां विरलपातः (ष० त०), तेन रमणीयम् (तृ० त०) ।

कामेनेति । अवन्तिराजतनयाम्=अवन्तीनां राजा अवन्तिराजः (ष० त०, समासाऽन्त टच्) तस्य तनया, ताम् (ष० त०) । स्वैरम्=यह दर्शन-

---

विदूषक—वाह वाह ! व्याप्त और गिरे हुए दुपहरियाके फूलोंसे सुन्दर यह अन्तःपुरका बगीचा है । आप यहाँसे पधारें ।

राजा—मित्र ! वसन्तक ! यह मैं आ रहा हूँ ।

उस समय उज्जयिनीमें जानेपर और अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ताको इच्छाके अनुसार देखकर मेरी अनिर्वचनीय अवस्थामें पड़नेपर कामदेवने अपने पाँचों बाणोंसे मेरे ऊपर

विदूषकः— कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी, लदामण्डवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअ पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअं

=इच्छाऽनुसारं, दृष्ट्वा =अवलोक्य, काम् अपि=अनिर्वचनीयाम्, अवस्थां = दशां, गते=प्राप्ते, मयि=उदयने विषये, कामेन=मदनेन, पञ्च=पञ्च-संख्यकाः, अरविन्दादयः पञ्चाऽपीति भावः, इषवः=वाणाः, शराः, युगपदिति शेषः। पातिताः=प्रेरिताः, एतेन राज्ञ उदयनस्य वासवदत्तां प्रति प्रणयाऽतिशयः प्रतिपादितः। अद्य अपि=अस्मिन्समये अपि, वहुकालाऽनन्तरमपीति भावः। तैः= कामवाणैः, हृदयं=चित्तं, मदीयमिति शेषः। सशल्यम् एव=कीलकयुक्तम् एव। भूयश्च=पुनरपि, अस्मिन्समयेऽपि, पद्मावतीसम्वन्धाऽनन्तरमपीति भावः। वयं विद्धाः=अहं ताडित इत्यर्थः। एवं च, मदनः=कामः, पञ्चेषुः यदि=पञ्चबाण-श्चैत्, अयम्=एषः, साम्प्रतं पीडां जनयन्निति शेषः, षष्ठः=षट्संख्यापूरकः, पञ्चसंख्याऽतिरिक्त इति भावः। कथं=केन प्रकारेण, पातितः=प्रेरितः। मदनस्य पञ्चवाणत्वं नाऽन्वर्थकमिति तात्पर्यम् ॥ १ ॥

विदूषक इति। तत्रभवती=माननीया, लतामण्डपं=वल्लीगृहम्। उताहो= अथवा। असनकुसुमसञ्चितं=सर्जपुष्पाचितं, व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितं=शार्दूलकृत्या-

---

क्रियाका विशेषण है। पातिताः=पत्, णिच्+क्तः। सशल्यं=शल्यैः सहितम् (तुल्ययोगवहु०) "वा पुंसि शल्यं शंकुर्ना" इत्यमरः। वयम्=यहाँपर "अस्मदो द्वयोश्च" इस सूत्रसे अस्मद् शब्दके एकवचनके स्थानमें वहुवचनका प्रयोग विकल्पसे हुआ है। पञ्चेषुः=पञ्च इषवः यस्य सः (वहु०)। षष्ठः=षण्णां पूरणः, षष् शब्दसे पूरण अर्थमें "तस्य पूरणे डट्" इस सूत्रसे डट् प्रत्यय होकर। "षट् कति-कतिपयचतुरां थुक्" इससे थुक् आगम। शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १ ॥

विदूषकः—लतामण्डपं=लतानां मण्डपः, तम् (ष० त०)। उताहो= "आहो उताहो किमुत" इत्यमरः। असनकुसुमसञ्चितम्=असनानां कुसुमानि

प्रहार किया। आज भी उन (बाणों) से मेरा चित्त विद्ध ही है। फिर भी (पद्मावतीसे विवाह होनेपर) मैं विद्ध हो गया हूँ। कामदेव पाँच बाणोंसे ही युक्त है तो यह छठा बाण उसने कैसे गिराया ? ॥ २ ॥

विदूषक—माननीया पद्मावती कहाँ गईं ? लतामण्डपमें गई होंगी अथवा सर्ज वृक्षके फूलोंसे व्याप्त बाघके चमड़ेसे मढ़े हुएके समान पर्वत तिलक नामके पत्थरके चट्टानपर गईं

गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्ठा भवे, अहव आलिहिदमिअ-पक्खिसङ्कुलं दारुपव्वदअं गदा भवे ! (ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही ! सरअकाल-णिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअदलदेवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति पेक्खदु दाव भवं । [कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत् । ही ! ही ! शरत्काल-

---

च्छादितं, पर्वततिलकं नाम=पर्वततिलकनामधेयं, शिलापट्टकं=पाषाणखण्डम्, अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं=तीव्रकटुगन्धयुक्तसप्तपर्णविपिनं, प्रविष्टा=कृतप्रवेशा । आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं=चित्रितपशुविहगव्याप्तं, दारुपर्वतं=काष्ठरचितशैल-प्रतिकृतिं, गता=याता, भवेत्=स्यात् । इत्थं च विदूषकेण पद्मावतीस्थितिविषये विकल्पचतुष्टयं प्रदर्शितम् । ही ही=प्रमोदद्योतकं पदम् । शरत्कालनिर्मले=शरदृतु-

---

(ष० त०) "सर्जकाऽसनबन्धूकपुष्पप्रियकजीविकाः ।" इत्यमरः । असन-कुसुमैः सञ्चितः, तम् (तृ० त०) । व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितं=व्याघ्रस्य चर्म (ष० त०) । "अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री"त्यमरः । व्याघ्रचर्मणा अवगुण्ठितः, तम् (तृ० त०) । शिलापट्टकं=शिलानां पट्टकः, तम् (ष० त०) । अधिक-कटुकगन्धसप्तच्छदवनम्=अधिकः कटुको गन्धो येषां ते (बहु०) । सप्त छदा येषां ते सप्तच्छदाः (बहु०) । सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ।" इत्यमरः । अधिककटुकगन्धाश्च ते सप्तच्छदाः (कर्म०) । तेषां वनं, तत् (ष० त०) । आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं=मृगाश्च पक्षिणश्च मृगपक्षिणः (द्वन्द्व०) । आलिखिताश्च ते मृगपक्षिणः (क० धा०), तैः सङ्कुलः, तम् (तृ० त०) । दारुपर्वतकं=दारुनिर्मितः पर्वतो दारुपर्वतः (मध्यमपदलोपी स०) । दारुपर्वत इव दारुपर्वतकः, तम् "इवे प्रतिकृतौ" इस सूत्रसे कन् प्रत्यय । शरत्कालनिर्मले= शरच्चाऽसौ कालः (कर्म०) । तेन निर्मलं, तस्मिन् (तृ० त०) । अन्तरिक्षं= "नभोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम् ।" इत्यमरः । प्रसारितबलदेवबाहु-

---

होंगी, अथवा तीव्र गन्धवाले सप्तपर्ण वृक्षोंके वनमें प्रविष्ट होंगी वा चित्रलिखित पशु और पक्षियोंसे परिपूर्ण दारुपर्वत (लकड़ीसे बनाये गये कृत्रिम पहाड़) पर गई होंगी । (ऊपर देखकर) अहा ! शरत् ऋतुसे निर्मल आकाशमें बलरामजीकी फैलाई गई भुजाके समान

निर्मलेऽन्तरिक्षेप्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान् !]

राजा—वयस्य ! पश्याम्येनाम् !

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥२॥

स्वच्छे, अन्तरिक्षे=आकाशे, प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां=विस्तारितबलभद्र-भुजरमणीयां, समाहितम्=एकाग्रतापूर्वकं, गच्छन्तीं=यान्तीं, सारसपङ्क्तिं=सारसपक्षिश्रेणीं, पश्यतु=विलोकयतु ।

राजेति । एनां=सारसपङ्क्तिम् ।

अन्वयः—ऋज्वायतां विरलां नतोन्नतां निवर्तनेषु सप्तर्षिवंशकुटिलां निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य अम्बरतलस्य विभज्यमानां सीमाम् इव, एनां सारसपङ्क्तिं पश्यामि ॥ २ ॥

ऋज्वायतामिति । ऋज्वायतां=सरलदीर्घां, विरलां=क्वचिद्विच्छिन्नां, नतोन्नतां=बन्धुरां, निम्नोर्ध्वरूपेण स्थितामिति भावः । निवर्तनेषु=उभयभागेषु,

---

दर्शनीयां=बलदेवस्य बाहू (ष० त०) । प्रसारितौ च तौ बलदेवबाहू (क० धा०) । "पसादिअ" (प्रसादित०) ऐसे पाठमें प्रसादितः प्रसादं (स्वच्छतां) प्रापितौ प्रसादितौ, निर्मल बनाये गये यह तात्पर्य है । प्रसारितबलदेवबाहू इव दर्शनीया, ताम्, "उपमानानि सामान्यवचनैः" इस सूत्रसे कर्म० । यहाँपर उपमान "प्रसारितबलदेवबाहू" द्विवचन है परन्तु उपमेय "सारसपङ्क्ति" एक वचन है, इस कारणसे अलङ्कारशास्त्रके अनुसार "भग्नप्रक्रम" दोष होता है ।

ऋज्वायतामिति । ऋज्वायताम्=ऋजुश्चाऽसौ आयता, ताम् (कर्म०), विरला="पेलवं विरलं तनु" इत्यमरः । नतोन्नतां=नता चाऽसौ उन्नता, ताम्, (कर्म०) । सप्तर्षिवंशकुटिलां=सप्त च ते ऋषयः "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इस

सुन्दर तथा एकाग्रतापूर्वक जाती हुई सारस पक्षियोंकी पङ्क्ति (कतार) को आप देखें ।

राजा—मित्र ! सारस-पङ्क्तिको देखता हूँ ।

सीधी और फैली हुई विरल, ऊँची-नीची और दोनों भागोंमें सप्तर्षिमण्डलकी समान टेढ़ी अतः केंचुली छोड़नेवाले सर्पके पेटके समान निर्मल आकाशमण्डलकी विभाग की गई सीमाकी समान (इस सारस-पङ्क्तिको देख रहा हूँ) ॥ २ ॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एवं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारस-पंन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति। अम्भो। भट्टा। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो ! भर्ता।]

सप्तर्षिवंशकुटिलां=सप्तर्षिवर्गवक्रां, तथा च निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य=कञ्चुकरहितसर्पजठरस्वच्छस्य, अम्बरतलस्य=आकाशतलस्य, विभज्यमानां=क्रियमाणविभागां, सीमाम् इव=मर्यादारेखाम् इव, एनां=पूर्वाभिहितां, सारस-पङ्क्ति=पुष्कराह्वपक्षिश्रेणीं, पश्यामि॥ २॥

चेटीति। कोकनदमालापाण्डररमणीयां=रक्तोत्पलस्रक्–पाण्डुमनोहरां, समा-हितम्=एकाग्रभावपूर्वकं, गच्छन्तीं=यान्तीम्, एतां=सारसपङ्क्तिम्। अम्भो= आश्चर्यद्योतकमव्ययम्। भर्ता=पतिः, महाराज उदयन इति भावः।

सूत्रसे संज्ञामें समास हुआ है। सप्तर्षि कहनेसे कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ इनकी संज्ञा जानी जाती है। किसीके मतमें मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये सात सप्तर्षि माने गये हैं। सप्तर्षीणां वंशः (ष० त०), स इव कुटिला, ताम्, (उपमानपूर्वपद कर्म०)। निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य=निर्मुच्यत इति निर्मुच्यमानः। निर्+मुच्+लट् (शानच्) कर्ममें। स चाऽसौ भुजगः (कर्म०)। तस्य उदरं (ष० त०) तत् इव निर्मलम्, तस्य (उपमान० कर्म)। अम्बरतलस्य= अम्बरस्य तलं तस्य, ष० त० "अधःस्वरूपयोरस्त्री तलम्" इत्यमरः। विभज्य-मानां=विभज्यत इति विभज्यमाना, ताम्, वि+भज्+लट् (शानच्), टाप्, कर्ममें प्रयोग है। सीमाम्="सीमसीमे स्त्रियामुभे" इत्यमरः। इस श्लोकमें उपमा और उत्प्रेक्षाकी संसृष्टि है। वसन्ततिलका छन्द है॥ २॥

चेटी—कोकनदमालापाण्डररमणीयां=कोकनदानां माला (ष० त०)। "रक्तोत्पलं कोकनदम्" इस कोश वचनके अनुसार यद्यपि "कोकनद" पदका अर्थ रक्त कमल है, परन्तु यहाँपर उसका उपमेय सारसके अनुरोधसे यहाँपर लक्षणासे कोकनदका श्वेतकमल अर्थ करना चाहिए। कोकनदमाला इव पाण्डरा (उपमित०)। सा चाऽसौ रमणीया ताम् (कर्म०)। सारसपङ्क्ति=सार-

---

दासी—राजकुमारी एकाग्रतापूर्वक जाती हुई कमलोंकी पङ्क्तिकी समान सफेद और सुन्दर इस सारसों की पङ्क्तिको देखें देखें। अरे ! स्वामी ! (आ गये हैं।)

पद्मावती—हं ! अय्यउत्तो । अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि । ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो । [हम् ! आर्यपुत्रः । आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि । तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः ।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवेत् ।]

(तथा कुर्वन्ति)

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे । [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

राजा—कथं भवान् जानाति ।

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं । [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान् ।]

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक !

पद्मावतीति । हम्=अनुनयार्थे, तव कारणात्=भवदर्थम् । आर्यपुत्रदर्शनं=स्वामिविलोकनं, परिहरामि=प्ररित्यजामि । माधवीलतामण्डपं=वासन्तीवल्लीमण्डपम् ।

वासवदत्तेति । एवम् = इत्थं, माधवीलतामण्डपप्रवेश इति भावः ।

विदूषक इति । निर्गता=निष्क्रान्ता, भवन्तमदृष्ट्वेति शेषः । अपचितकुसुमान् = लूनपुष्पान्, शेफालिकागुच्छान् = निर्गुण्डीस्तवकान् ।

राजेति । विचित्रता = नैकवर्णता ।

सानां पङ्क्तिः, ताम् (ष० त०) । "पुष्कराह्वस्तु सारसः" इत्यमरः ।

विदूषकः—अपचितकुसुमान्=अपचितानि कुसुमानि येभ्यस्ते, तान् (बहु०) । शेफालिकागुच्छकान्=शेफालिकानां गुच्छकाः, तान् (ष० त०), "स्याद् गुच्छकस्तु स्तवकः" इत्यमरः । प्रेक्षताम् = प्र–उपसर्गपूर्वक "ईक्ष दर्शने" धातुसे लोट्+त (विधि अर्थमें) ।

पद्मावती—ओह ! आर्यपुत्र ! आर्ये ! आपके कारणसे आर्यपुत्रके दर्शनका परिहार करती हूँ । इस कारणसे वासन्तीलताके मण्डपमें प्रवेश करें ।

वासवदत्ता—ऐसा ही हो । (वैसा करती हैं ।)

विदूषक—महारानी पद्मावती यहाँ आकर निकल गयी होंगी ।

राजा—आप कैसे जानते हैं ?

विदूषक—फूल निकाले गये इन हरसिंगारके गुच्छोंको आप देखें ।

राजा—अहो ! वसन्तक ! फूलोंकी विचित्रता है ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण आणामि उज्ज इणीए वत्तामि त्ति । [वसन्तकसङ्कीर्तनेनाहंपुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्ते इति ।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे ।

विदूषकः—भो ! तह । (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सहो आदवो । ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामो । [भोस्तथा । ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः । तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः ।]

राजा—बाढम् । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभौ परिक्रामतः ।)

वासवदत्तेति । वसन्तकसङ्कीर्तनेन = वसन्तकनामोच्चारणेन ।

राजेति । अस्मिन् = निकटस्थे, आसीनौ = उपविष्टौ, आवामिति शेषः ।

विदूषक इति । शरत्कालतीक्ष्णः = शरदृतुतीव्रः, दुःसहः = दुर्मर्षणः ।

राजेति । बाढं = दृढं, समीचीनमिति भावः ।

विदूषक इति । एवम् = इत्थम्, ममाऽनुगमनमिति भावः ।

वासवदत्ता—वर्ते = "वृतु वर्तने" धातुसे लट्+इट् ।

राजा—आसीनौ="आस उपवेशने" धातुसे लट् के स्थानमें शानच् आदेश और "ईदासः" इससे ईत्व । प्रतीक्षिष्यावहे = प्रति–उपसर्गपूर्वक "ईक्ष" धातुसे लृट्+वहि ।

विदूषकः—शरत्कालतीक्ष्णः = शरच्चाऽसौ कालः (कर्म०) । तेन तीक्ष्णः (तृ० त०) । दुःसहः = दुःखेन सोढुं शक्यः, दुस्–उपसर्गपूर्वक "षह मर्षणे" इस धातुसे "ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्राऽर्थेषु खल्" इस सूत्रसे खल् प्रत्यय ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) वसन्तकका नाम लेनेसे मैं फिर उज्जयिनीमें हूँ ऐसा लग रहा है ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिलातलमें बैठकर हमलोग पद्मावतीकी प्रतीक्षा करें ।

विदूषक—श्रीमान् ! ऐसा ही करें । (बैठकर और फिर उठकर) ओह ओह ! यह शरत् ऋतुसे तीव्र और असह्य है । इसलिए इस वासन्ती मण्डपमें प्रवेश करें ।

राजा—अच्छी बात है । आगे बढ़ो ।

विदूषक—ऐसा ही हो । (दोनों घूमते हैं ।)

पद्मावती—एवं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ। किं दाणिं करेह्म ? [एवमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः। किमिदानीं कुर्मः ?]

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीणं ओलम्बलदं ओधूय भट्टारं वारइस्सं। [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्त्तारं वारयिष्यामि।]

पद्मावती—एवं करेहि। [एवं कुरु।] (चेटी तथा करोति।)

विदूषकः—अविहा अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [अविह अविह, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदो ह्मि। [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि।]

पद्मावतीति। एवम् = इत्थम्, आवन्तिकाया राजदर्शनपरिहरणादिकमिति भावः। आकुलं=विपर्यस्तं, कर्तुकामः = विधातुकामः।

चेटीति। मधुकरपरिनिलीनां=भ्रमरव्याप्ताम्, अवलम्बलताम् = आलम्बनवल्लीम्, अवधूय = कम्पयित्वा, भर्तारं = पतिं, राजानमिति भावः। वारयिष्यामि = निवारणं करिष्यामि, माधवीमण्डपप्रवेशादिति शेषः।

विदूषक इति। अविहा अविहा = विषादसूचकमव्ययम्। दास्याः पुत्रैः = नीचैः। पीडितोऽस्मि = व्यथितोऽस्मि, अहमेतान्निवारयामीति शेषः।

पद्मावती—कर्तुकामः = कर्तुं कामो यस्य सः (बहु०), तुं काममनसोरपि" इससे मकारका लोप।

चेटी—मधुकरपरिनिलीनां = मधुकरैः, परिनिलीना, ताम् (तृ० त०)। अवधूय=अव—उपसर्गपूर्वक "धूञ् कम्पने" धातुसे क्त्वाके स्थानमें ल्यप् आदेश।

विदूषकः—दास्याः पुत्रैः = "षष्ठ्या आक्रोशे" इससे अलुक् समास।

पद्मावती—आर्य वसन्तक इस प्रकारसे आकुल करना चाहते हैं। अब क्या करें ?

दासी—राजकुमारि ! भौंरोंसे व्याप्त इस सहारा ली गई लताको हिलाकर राजाको (जानेसे) रोकती हूँ।

पद्मावती—ऐसा ही करो। (दासी वैसा ही करती है।)

विदूषक—हाय ! हाय ! आप ठहरिए ठहरिए।

राजा—किसलिए ?

विदूषक—दासीपुत्र (नीच) भौंरोंसे पीडित हो गया हूँ।

राजा—मा मा भवानेवम् ! मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः ।

पश्य—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

राजेति । एवम्=इत्थं, मधुकरनिवारणमिति भावः । मा मा=मा कार्षीत्, मा कार्षीदिति शेषः । मधुकरसंत्रासः = भ्रमरभीतिः । परिहार्यः = त्याज्यः ।

अन्वयः—मधुमदकला मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढा मधुकराः पादन्यासविषण्णा वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

मधुमदकला इति । मधुमदकलाः = पुष्परसमदाव्यक्तमधुरशब्दाः, मदनार्ताभिः=कामाऽऽतुराभिः, प्रियाभिः=वल्लभाभिः, भ्रमरीभिरिति भावः । उपगूढाः = आलिङ्गिताः, मधुकराः = भ्रमराः, पादन्यासविषण्णाः=अस्मच्चरणनिक्षेपखिन्नाः सन्तः, वयम् इव, कान्तावियुक्ताः = प्रियाविरहिताः, स्युः=भवेयुः, अतो मधुकरास्त्रासजननेन न पीडनीया इति भावः ॥ ३ ॥

तस्मादिति । तस्मात्=कारणात्, मधुकरत्रासपरिहारादिति भावः । इह एव=अस्मिन् शिलातल एव । आसिष्यावहे = उपवेक्ष्यावः ।

राजा—परिहार्यः = परिहर्तुं योग्यः, परि+हृ+ण्यत् ।

मधुमदकला इति । मधुमदकलाः = मधुनो मदः (ष० त०) । कलः (मधुराऽस्फुटशब्दः) अस्ति येषां ते कलाः, "कल" शब्दसे "अर्श आदिभ्योऽच्" इस सूत्रसे अच् प्रत्ययः । "ध्वनौ तु मधुराऽस्फुटे कलः" इत्यमरः । मधुमदेन कलाः (तृ० त०) । मदनार्ताभिः=मदनेन आर्ताः, ताभिः (तृ० त०) । उपगूढाः= उप+गुह्+क्तः । पादन्यासविषण्णाः=पादयोर्न्यासः (ष० त०) । वि+सद्+क्तः=विषण्णाः । पादन्यासेन विषण्णाः (तृ० त०) । कान्तावियुक्ताः= कान्तया वियुक्ताः (तृ० त०) । आर्या छन्द है ॥ ३ ॥

आसिष्यावहे=आस+लृट्+वहि ।

राजा—आप ऐसा मत करें, मत करें । भौंरोंको डराना नहीं चाहिए ।

देखिए—

पुष्परसके मदसे मधुर शब्द वाले और कामपीडित प्रियाओं (भौंरियों) से आलिङ्गित भौंरे पैर रखनेसे खिन्न होकर हमलोगोंके समान प्रियाओंसे बिछुड़ जायेंगे ॥ ३ ॥

इस कारणसे यहीं बैठें ।

विदूषकः—एव्वं होदु। [ऐवं भवतु।]

(उभावुपविशतः।)

चेटी—भट्टिदारिए ! रुद्धा खु ह्म वयं। [भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् !]

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो ! [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्यसरीरो अय्यउत्तो ! [दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः।]

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी। [भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः।]

वासवदत्ता—एषा महुअराणं खु अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी। [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः।]

चेटीति। रुद्धाः=प्रतिरुद्धाः, वहिर्गमनाऽसमर्था इति भावः।

पद्मावतीति। दिष्ट्या=भाग्येन।

वासवदत्तेति। प्रकृतिस्थशरीरः=स्वस्थदेहः।

चेटीति। आर्यायाः=आवन्तिकायाः, दृष्टिः=नेत्रं, साऽश्रुपाता=वाष्पपतनयुक्ता।

वासवदत्तेति। वासवदत्ता रहस्यभेदभीतेरवहित्थां विदधाति—एषेति। मधु-

---

वासवदत्ता—प्रकृतिस्थशरीरः=प्रकृतौ तिष्ठतीति प्रकृतिस्थम्, प्रकृति+स्था+क। प्रकृतिस्थं शरीरं यस्य सः (बहु०)।

चेटी—साऽश्रुपाता=अश्रुणः पातः (ष० त०), अश्रुपातेन सहिता (तुल्ययोग बहु०)।

वासवदत्ता—काशकुसुमरेणुना=काशस्य कुसुमं (ष० त०), "अर्थो

विदूषक—ऐसा ही हो। (दोनों बैठते हैं।)

दासी—राजकुमारि ! हमलोग रोकी गईं।

पद्मावती—भाग्यसे आर्यपुत्र बैठ गये।

वासवदत्ता—(मन ही मन) भाग्यसे आर्यपुत्र स्वस्थ शरीरवाले हैं।

दासी—राजकुमारि ! आर्याकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं।

वासवदत्ता—भौंरोंके अविनयसे काश पुष्पका पराग गिरनेसे मेरे आँखोंमें आँसू भर गया है।

पद्मावती—जुज्जइ । [युज्यते ।]

विदूषकः—भो ! सुण्णं खु इदं पमदवणं । पुच्छिदव्वं किञ्चिअत्थि । पुच्छामि भवन्तं । [भोः ! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम् ! प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति । पृच्छामि भवन्तम् ।]

राजा—छन्दतः ।

विदूषकः—का भवदो पिआ । तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा । [का भवतः प्रिया ? तदानीं तत्र भवती वासवदत्ता इदानीं पद्मावती वा ।]

कराणां=भ्रमराणाम्, अविनयात्=विनयाऽभावात्, इतस्ततः सञ्चलनादिति भावः । काशकुसुमरेणुना=इक्षुगन्धपुष्परजसा, दृष्टिः=नेत्रं, सोदका=अश्रुयुक्ता, अस्तीति शेषः ।

पद्मावतीति । युज्यते=संभाव्यते ।

विदूषक इति । शून्यं=रिक्तम् । प्रष्टव्यं=प्रष्टुं योग्यम् ।

राजेति । छन्दतः=अभिप्रायतः ।

विदूषक इति । प्रिया=वल्लभा, वल्लभतरेति भावः । तदानीं=तस्मिन् व्यतीतकाले, इदानीम्=अधुना, विद्यमानेति शेषः ।

काशमस्त्रियाम् । इक्षुगन्धा पोटगलः पुंसि'' इत्यमरः । काशकुसुमस्य रेणुः, तेन (ष० त०) । सोदका=उदकेन (अश्रुजलेन) सहिता (तुल्ययोगबहु०) ।

विदूषकः—प्रष्टव्यं=प्रष्टुं योग्यं, प्रच्छ + तव्यत् ।

राजा—छन्दतः=छन्दात् इति, ''छन्द'' शब्दसे ''अपादाने चाऽहीयरुहोः'' इस सूत्रसे तसि । ''अभिप्रायश्छन्द आशयः'' इत्यमरः ।

विदूषकः—तदानीं=तस्मिन् काले 'तद्' शब्दसे ''तदो दा च'' इस सूत्रसे चकार-पाठके सामर्थ्यसे ''दानीम्'' प्रत्यय । इदानीम्=अस्मिन् काले, 'इदम्' शब्दसे ''दानीं च'' इस सूत्रसे ''दानीम्'' प्रत्यय ।

पद्मावती—सम्भव है ।

विदूषक—महाराज ! यह प्रमदवन (अन्तःपुरका बगीचा) शून्य है । कुछ पूछना है । आपसे पूछता हूँ ।

राजा—इच्छाके अनुसार (पूछिए ।)

विदूषक—उस समयकी महारानी वासवदत्ता और इस समयकी पद्मावती इन दोनोंमें आपको कौन ज्यादा प्यारी हैं ?

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कटे निक्खित्तो अय्यउत्तो । [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अहं अ मन्दभाआ । [अहं च मन्दभागा ।]

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भव । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा । [स्वैरं स्वैरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।]

राजा—वयस्य ! न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

राजेति । महति=अधिके, बहुमानसङ्कटे=अधिकसम्मानविपत्तौ, न्यस्यति=स्थापयति । वासवदत्ता-पद्मावत्योः कतरा मे प्रियतरेति प्रकाशयितुं न शक्नोमीति भावः ।

पद्मावतीति । निक्षिप्तः=स्थापितः; एतन्निर्धारयितुं स एव समर्थः स्यादिति भावः ।

वासवदत्तेति । मन्दभागा=अल्पभाग्या, अहं च, सङ्कटे निक्षप्ता इति भावः । "पद्मावती प्रियतरे"ति भर्तृवाक्यश्रवणसंभावनया अहमपि सङ्कटे निक्षिप्तेति शेषः ।

विदूषक इति । स्वैरं स्वैरं=स्वच्छन्दताऽनुसारमिति भावः । एका=वासवदत्ता, उपरता=दिवं गता, अपरा=पद्मावती, असन्निहिता=दूरस्थिता, अतएव यथार्थाशयवर्णने भीतिर्न कार्येति भावः ।

राजेति । वयस्य=मित्र !, न ब्रूयां=नो गदेयं, खलु=निश्चयेन । तत्र

राजा—बहुमानसङ्कटे=बहुमानेन सङ्कटः तस्मिन् (तृ० त०) । न्यस्यति=नि–उपसर्गपूर्वक "असु क्षेपणे" धातुसे लट्+तिप् ।

वासवदत्ता—मन्दभागा=मन्दो भागो (भाग्यम्) यस्याः सा (बहु०) ।

राजा—वयस्य=वयसा तुल्यो वयस्यः, तत्सम्बुद्धौ, वयस् शब्दसे "नौवयोधर्म०" इत्यादि सूत्रसे यत् प्रत्यय । "वयस्यः स्निग्धः सवयाः" इत्यमरः ।

राजा—आप क्यों अधिक सम्मान रूप विपत्तिमें मुझे डालते हैं ?

पद्मावती—जैसे सङ्कटमें आर्यपुत्र डाले गये हैं (वह वे ही जानते हैं ।)

वासवदत्ता—(मन ही मन) मैं अभागिनी भी (जैसे सङ्कटमें डाली गई ।)

विदूषक—आप इच्छाके अनुसार कहिए कहिए । (क्यों कि) एक (वासवदत्ता) तो मर गई और दूसरी (पद्मावती) पासमें नहीं है ।

राजा—मित्र ! मैं नहीं कहूँगा । तुम तो बकवादी हो ।

पद्मावती—एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण। [एतावता भणितमार्यपुत्रेण।]

विदूषकः—भो ! सच्चेग सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं। एसा सन्दट्ठा मे जीहा। [भोः ! सत्येन शपे, कस्मा अपि नाख्यास्ये। एषा संन्दष्टा मे जिह्वा।]

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम्।

पद्मावती—अहो ! इमस्स पुरोभाइदा। एत्ताएण हिअअं ण जाणादि।

हेतुमुपन्यस्यति—भवांस्त्विति। भवान्=त्वं, मुखरः=दुर्मुखः, मुखरत्वेन भवता रहस्ये प्रकाशिते सत्यहं संकटे पतिष्यामीति भावः।

पद्मावतीति। एतावता=एतत्प्रमाणेन, वाक्येनेति शेषः। आर्यपुत्रेण=भर्त्रा, भणितं=प्रतिपादितम्। "वासवदत्ता प्रियतरे"ति सङ्केतितमार्यपुत्रेणेति भावः।

विदूषक इति। भोः=श्रीमन् !, सत्येन=तथ्येन, शपे=आक्रोशामि, कस्मै अपि=जनाय, न आख्यास्ये=न कथयिष्यामि, शपथपूर्वकं सूचयामि भवदभिमतं न कस्मैचित्कथयिष्यामीति भावः।

राजेति। न उत्सहे=उत्साहं न करोमि, तव विश्वासाऽभावादिति भावः।

पद्मावतीति। अहो=आश्चर्यम्, अस्य=विदूषकस्य, पुरोभागिता=दोषैक-

ब्रूयाम्='ब्रू' धातुसे विधिलिङ्+मिप्। मुखरः=निन्दितं मुखं यस्य सः, 'मुख' शब्दसे "रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे 'र' प्रत्यय। "दुर्मुखे मुखराऽऽबद्धमुखौ" इत्यमरः।

पद्मावती—एतावता=एतत्परिमाणमस्य एतावत्, तेन, "एतद्" शब्दसे "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्" इस सूत्रसे वतुप् प्रत्यय। इतनेसे ही आर्यपुत्रने वासवदत्तामें अधिक प्रेमको प्रदर्शित किया यही तात्पर्य है।

विदूषकः—शपे="शप आक्रोशे" धातुसे लट्+इट्। कस्मै=आख्यान क्रियाके ग्रहणसे "क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" इस वार्तिकसे सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी।

पद्मावती—पुरोभागिता=पुरो भजत इति पुरोभागी, पुरस्—उपपदपूर्वक

पद्मावती—आर्यपुत्रने इतनेसे कह दिया।

विदूषक—महाराज ! मैं सत्यसे सौगन्ध (कसम) खाता हूँ। किसीसे भी नहीं कहूँगा। यह जीभ मैंने काटी।

राजा—मित्र ! कहनेके लिए उत्साह नहीं करता हूँ।

पद्मावती—अहो ! इनकी दोषमात्र देखनेकी आदत ! इतनेसे भी ये हृदयकी बात

[अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदयं न जानाति ।]

विदूषकः—किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं ! एसो रुद्धो अत्त भवं । [किं न भणति मम ? अनाख्यायास्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम् । एष रुद्धोऽत्र भवान् ।]

राजा—किं बलात्कारेण ?

विदूषकः—आम, बलक्कारेण । [आम्, बलात्कारेण ।]

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत् ।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं । वअस्सभावेण साविदो सि, जइ सच्चं

दर्शिता । एतावता = एतत्परिमाणेन, वाक्यविन्यासेनाऽपि इति शेषः । हृदयम् = अभिप्रायं, राज्ञो वासवदत्ताविषयमनुरागाऽतिशयरूपमिति भावः ।

विदूषक इति । मम = मत्पुरत इति भावः । अनाख्याय = अकथयित्वा, वासवदत्ता-पद्मावत्योः कतरा प्रेयसीति अप्रतिपाद्येति भावः । शिलापट्टकात् = पाषाणखण्डात् । आम् = स्वीकृतिद्योतकमव्ययम् ।

राजेति । बलात्कारेण = बलकरणेन, किं = किं शुश्रूषश इति भावः । तेन = कारणेन, पश्यामः = विलोकयामः, कथनीयमकथनीयं वेति विचारयामः ।

विदूषक इति । प्रसीदतु प्रसीदतु = प्रसादं करोतु करोतु, संभ्रमे द्विरुक्तिः ।

"भज सेवायाम्" धातुसे "सम्पृचानु०" इत्यादिसे घिनुण् प्रत्यय । "दोषैकदृक् पुरोभागी" इत्यमरः । पुरोभागिनो भावः, पुरोभागिन् + तल् + टाप् ।

विदूषकः—मम = चतुर्थीके अर्थमें सम्बन्ध सामान्यमें षष्ठी ।

राजा—बलात्कारेण = क्षीरस्वामीने "बलात्" इस पदको हठ अर्थमें विद्यमान निपात माना है । बलात्करणं बलात्कारः, तेन, भावमें घञ् प्रत्यय ।

विदूषकः—शापितः = शप् + णिच् + क्तः ।

[नहीं जानते हैं ।

विदूषक—आप मुझसे क्यों नहीं कहते हैं ? कहे विना इस शिलाखण्डसे एक पग भी नहीं जा सकते हैं । यह आप रोके गये ?

राजा—क्या जबर्दस्तीसे ?

विदूषक—जी हाँ, जबर्दस्तीसे ।

राजा—तब देखते हैं ।

विदूषक—आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । सत्य नहीं कहते हैं तो मैं मित्र भावसे कसम

ण भणासि । [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान् । वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि ।]

राजा—का गतिः । श्रूयताम्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो! अञ्ञादवासं वि एत्थं बहुगुणं सम्पज्जइ । [भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।]

वयस्यभावेन=मित्रभावेन, शापितः=शापं प्रापितः ।

राजेति । का गतिः=क उपाय इति भावः, विवशभावेन कथयामीति शेषः ।

अन्वयः—रूपशीलमाधुर्यैः यद्यपि पद्मावती मम बहुमता; तु वासवदत्ताबद्धं मे मनो न हरति तावत् इत्यन्वयः ॥ ४ ॥

पद्मावतीति । रूपशीलमाधुर्यैः=सौन्दर्यसच्चरित्रप्रीतिविशेषैः, यद्यपि, पद्मावती=मगधराजकुमारी, मम नवपरिणीतेति भावः । मम=उदयनस्य, बहुमता=अधिकेच्छाविषयीभूता, तु=परन्तु, पूर्वोक्तगुणगणसत्त्वे बहुमतत्वेऽपि, वासवदत्ताबद्धं=वासवदत्ताकृष्टं, मे=मम, मनः=चित्तं, न हरति=नाऽधिकमाकर्षति । बहोः कालाद्वासवदत्ताकृष्टं मे मनो नवोढा पद्मावती न तादृशमाकर्षतीति भावः ॥ ४ ॥

वासवदत्तेति । परिखेदस्य=वियोगरूपस्य दुःखस्य, वेतनं=भृतिः, पारितो-

---

पद्मावती—रूपशीलमाधुर्यैः=रूपं च शीलं च माधुर्यं च रूपशीलमाधुर्याणि तैः (द्वन्द्वः), "शुचौ तु चरिते शीलम्" इत्यमरः । बहुमता=बहु (अधिकं, यथा तथा) मता (सुप्सुपा) । वासवदत्ताबद्धं=वासवदत्तायां बद्धं, तत् (स० त०) ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—अज्ञातवासः=न ज्ञातः अज्ञातः (नञ्०) । अज्ञातश्चाऽसौ

खाता हूँ ।

राजा—क्या उपाय है ? सुनिए—

सौन्दर्य, उत्तम चरित्र और प्रीति विशेषसे पद्मावती यद्यपि मुझे बहुत अच्छी लगती है, परन्तु वह वासवदत्तामें आकृष्ट मेरे मनको आकृष्ट नहीं करती है ॥ ४ ॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) बस बस । इस विरह रूप दुःखका पारितोपिक दे दिया, अहो ! यहाँपर छिपकर रहना भी अधिक गुणवाला हुआ ।

चेटी—भट्टिदारिए ! अदक्खिण्णो खु भट्टा । [भर्तृदारिके ! अदाक्षिण्यः खलु भर्ता ।]

पद्मावती—हला ! मा मा एव्वं ! सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि । [हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।]

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं । [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।]

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

षिकमिति भावः । अज्ञातवासोऽपि=अविदितस्थितिरपि, वहुगुणः=अधिक-गुणसम्पन्नः ।

चेटीति । अदाक्षिण्यः=दाक्षिण्यरहितः, सर्वत्र समभावरहित इति भावः ।

पद्मावतीति । एवम्=इत्थं, मा मा=मा वादीः, मा वादीः, "अदक्षिणो भर्ता" इति मा भाषिष्ठा इति भावः । सदाक्षिण्यः=दाक्षिण्यसहितः एव, सर्वत्र समभावसम्पन्न एवेति भावः । तत्र हेतुं निर्दिशति—य इति । यः=आर्यपुत्रः, इदानीम् अपि=अस्मिन्समयेऽपि, वासवदत्ताया अस्थितावपीति भावः ।

वासवदत्तेति । भद्रे=कल्याणि, अभिजनस्य=स्ववंशस्य, सदृशं=तुल्यम्, अनुरूपमिति भावः । मन्त्रितं=भाषितम् ।

राजेति । उक्तं=कथितम् ।

वासः (कर्म०) । वहुगुणः=वहुर्गुणो यस्य सः (बहु०) ।

चेटी—अदाक्षिण्यः=दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यं, दक्षिण+ष्यञ् । अविद्य-मानं दाक्षिण्यं यस्य सः (नञ्बहु०) ।

वासवदत्ता—अभिजनस्य="कुलान्यभिजनाऽन्वयौ" इत्यमरः ।

दासी—राजकुमारि ! राजा उदार नहीं हैं ।

पद्मावती—सखि ! ऐसा मत कहो, मत कहो । आर्यपुत्र उदार ही हैं, जो कि अभी तक आर्या वासवदत्ताके गुणोंकी याद कर रहे हैं ।

वासवदत्ता—कल्याणि ! आपने अपने कुलके अनुसार कहा ।

राजा—मैंने कहा ! अब आप कहें । उस समयकी वासवदत्ता वा इस समयकी पद्मावती आपको कौन ज्यादा अच्छी लगती है ।

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो। [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः।]

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण। उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ। [किं मे विप्रलपितेन। उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते।]

राजा—वैधेय! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे?

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण? [किं मामपि बलात्कारेण?]

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण।

विदूषकः—तेण हि ण सक्कं सोढुं। [तेन हि न शक्यं श्रोतुम्।]

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम्।

पद्मावतीति। वसन्तकः=विदूषकः, वसन्तकसमः प्रीतिभेदजिज्ञासुरिति भावः।

विदूषक इति। विप्रलपितेन=अनर्थकवचनेन, उभे अपि=द्वे अपि, तत्रभवत्यौ = माननीये, देव्यौ, वासवदत्तापद्मावत्याविति भावः। बहुमते= अधिकसम्मते।

राजेति। वैधेय=हे मूर्ख!, बलात्=बलमाश्रित्य।

विदूषक इति। तेन=बलात्कारेण।

राजेति। महाब्राह्मणः=श्रेष्ठविप्रः, परिहासेन एतत्कथनम्। प्रसीदतु प्रसी-

---

विदूषक—विप्रलपितेन="प्रलापोऽनर्थकं वचः" इत्यमरः।

राजा—वैधेय="अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेय-बालिशाः।" इत्यमरः बलात्= बलमाश्रित्य, "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति पञ्चमी।

विदूषकः—मां=पृच्छसीति शेषः।

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु=संभ्रममें द्विरुक्ति। महाब्राह्मण=महांश्चासौ

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसन्तक (सदृश) हो गये।

विदूषक—मेरे निरर्थक वचनसे क्या लाभ? मुझे तो दोनों ही महारानियाँ अच्छी लगती हैं।

राजा—मूर्ख! मुझसे जबर्दस्तीसे सुनकर अब आप क्यों नहीं कहते हैं?

विदूषक—क्या मुझसे भी जबर्दस्तीसे (सुनना चाहते हैं)?

राजा—और क्या? जबर्दस्ती से।

विदूषक—तब तो नहीं सुन सकते हैं।

राजा—महाब्राह्मण प्रसन्न हों प्रसन्न हों, इच्छाके अनुसार कहिए।

विदूषकः—इदाणिं सुणादु भवं। तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा। तत्तहोदी पदुमावदो तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ सदक्खिणा। अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता—काहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति। [इदानीं शृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता—कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ! सुमरेहि दाणिं एदं। [भवतु भवतु, वसन्तक! स्मरेदानीमेतत्।]

दतु=प्रसन्नो भवतु भवतु, संभ्रमे द्विरुक्तिः। स्वैरं=स्वेच्छाऽनुसारमिति भावः। अभिधीयतां=कथ्यताम्।

विदूषक इति। बहुमता=अधिकसम्मता। तरुणी=युवतिः, दर्शनीया=दर्शनयोग्या, सुन्दरीति भावः। अकोपना=कोपरहिता, सदाक्षिण्या=औदार्यसहिता, उदारेति भावः। स्निग्धेन=घृतादिस्नेहसम्बद्धेन, भोजनेन=खाद्यपदार्थेन, प्रत्युद्गच्छति=प्रत्युद्व्रजति, अन्विष्येति शेषः।

वासवदत्तेति। भवतु भवतु=अस्तु अस्तु, स्मर=अध्यानं कुरु, विषयोऽयं स्मृतिविषयीभूतः।

ब्राह्मणः, तत्सम्बुद्धौ, (क० धा०), परिहासमें यह उक्ति है।

विदूषकः—अकोपना=न कोपना (नञ्०)। अनहङ्कारा=अविद्यमानः अहङ्कारः यस्याः सा (नञ्बहु०)। मधुरवाक्=मधुरा वाक् यस्याः सा (बहु०), "स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाऽधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु" इस सूत्रसे पूर्व (मधुरा) पदका पुंवद्भाव हुआ है। सदाक्षिण्या=दाक्षिण्येन सहिता (तुल्ययोगबहु०)।

वासवदत्ता—स्मर=स्मृ+लोट्+सिप्। याद करो। अब मुझसे भोजनकी प्राप्तिका अनुभव नहीं होगा यह तात्पर्य है।

विदूषक—इस समय आप सुनें। माननीया वासवदत्ता मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। माननीया पद्मावती भी युवति, सुन्दरी, क्रोध और अहङ्कार न करनेवाली, मधुर वचन बोलनेवाली और उदार हैं। यह भी दूसरा महान् गुण है। वासवदत्ता आर्य वसन्तक कहाँ गये? ऐसा कहकर स्निग्ध (चिकना चुपड़ा) भोज्य पदार्थसे मुझे ढूँढती थीं।

वासवदत्ता—अच्छा अच्छा! वसन्तक! इस समय आप इसकी याद करें।

राजा—भवतु भवतु वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहाः वासवदत्ता? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—(सविषादम्) एवम् ? उपरता ।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥ ५ ॥

राजेति । देव्यै=महाराज्ञ्यै ।

विदूषक इति । अविहा=खेदद्योतकमव्ययमेतत् । चिरात्=बहोः कालात् । उपरता=दिवं गता ।

राजेति । सविषादं=सखेदम् ।

अन्वयः—अनेन परिहासेन मे मनः त्वया व्याक्षिप्तम् । तत इयं वाणी पूर्वाऽभ्यासेन तथा एव निःसृता ।। ५ ।।

अनेनेति । अनेन=पूर्वोक्तेन, परिहासेन=केलियुक्तवाक्येन, "वासवदत्ता पद्मावती वा कतरा प्रियतरेति" रूपेणेति भाव. । मे=मम, मनः=चित्तं, त्वया=भवता, व्याक्षिप्तं=दूरं प्रेरितं, ततः=तस्मात्कारणात्, इयम्=एपा, अधुना प्रयुक्तेति भावः । वाणी = वाक्, पूर्वाऽभ्यासेन = पुरातनसंस्कारेण, तथा एव = पूर्वसमयतुल्या एव, निःसृता = निर्गता, वासवदत्तायामुपरतायामपि त्वदीयपरिहासेन साऽधुनाऽपि वर्तत इति मत्वा वाणी निर्गतेति भावः ।। ५ ।।

राजा—वासवदत्तायै = कथनक्रियाके योगमें "क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" इस वार्तिकसे सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी। यहाँपर "अकथितं च" इस सूत्रसे कर्मसंज्ञा होनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं है ।

विदूषकः—उपरता = उप+रम्+क्त+टाप् ।

अनेनेति । व्याक्षिप्तं = वि+आङ्+क्षिप्+क्तः । पूर्वाऽभ्यासेन=पूर्वश्चाऽसौ अभ्यासः, तेन (कर्म०) । अनुष्टुप् छन्द है ।। ५ ।।

राजा—अच्छा अच्छा वसन्तक ! यह सब मैं महारानी वासवदत्ताको कहूँगा ।

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ! वासवदत्ता कहाँ है ? बहुत समय हुआ, वासवदत्ता स्वर्गवासिनी हो गई ।

राजा—(खेद के साथ) हाँ ? वासवदत्ता चल बसीं ।

इस परिहाससे तुमने मेरे मनको बहुत दूर (आगे) खींचा, इस कारणसे पहलेके अभ्याससे मेरी वाणी उसी प्रकार निकल गई ।। ५ ।।

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ। [रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि । अदो ! पिअं णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि । [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि । अहो ! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।]

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं । अणदिक्कमणीओ हि विही । ईदिसं दाणिं एवं । [धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदृशमिदानीमेतत् ।]

राजा—वयस्य ! जानाति भवानवस्थाम् ! कुतः ।

पद्मावतीति । रमणीयः = मनोहरः कथायोगः = कथनसम्बन्धः नृशंसेन = घातुकेन, वियोगशोकोत्पादनेन नृशंससदृशेनेति भावः । विसंवादितः = विसंवादं प्रापितः, विनाशित इति भावः ।

वासवदत्तेति । विश्वस्ता = जातविश्वासा, अप्रत्यक्षं=परोक्षरूपं यथा तथा ।

विदूषक इति । धारयतु धारयतु=आत्मानं प्रकृतिस्थं कारयतु कारयत्विति भावः । संभ्रमे द्विरुक्तिः । विधिः=भाग्यम्, अनतिक्रमणीयः = न उल्लङ्घनीयः । इदानीम् = अधुना, ईदृशम् = एतादृशं, भाग्यमिति शेषः ।

पद्मावती—नृशंसेन = "नृशंसो घातुकः क्रूरः" इत्यमरः । विसंवादितः = वि+सं+वद्+णिच्+क्तः ।

वासवदत्ता—विश्वस्ता = वि+श्वस्+क्त+टाप् । अपनी प्रशंसा परोक्ष रूपसे सुना जाना प्रीतिका विषय होता है, प्रत्यक्षमें तो वैसे भी लोग प्रशंसा करते हैं, यह भाव है ।

विदूषकः—धारयतु=धृ+णिच्+लोट्+तिप् ।

राजा—वयस्य=वयसा तुल्यः, तत्सम्बुद्धौ । वयस्+वत् ।

पद्मावती—क्रूर विदूषकने मनोहर कथा प्रसङ्गको बिगाड़ डाला ।

वासवदत्ता—(मन ही मन) अच्छा अच्छा मैं विश्वस्त हूँ । अहो ! ऐसा वचन जो अप्रत्यक्ष रूपके सुना जाता है, यह प्रीतिका विषय है ।

विदूषक—आप अपनेको सँभालें सँभालें । भाग्यका उलङ्घन नहीं किया जा सकता है । अभी यह ऐसा ही है ।

राजा—मित्र ! आप मेरी अवस्थाको नहीं जानते हैं । क्योंकि—

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं । जाव मुहोदअं आणेमि ! (निष्क्रान्तः ।) [अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्र भवतो मुखम् । यावन्मुखोदकमानयामि ।]

पद्मावती—अय्ये ! बप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं । जाव णिक्कमह्म ।

अन्वयः—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम् । स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति तु एषा यात्रा यत् इह बाष्पं विमुच्य बुद्धिः प्राप्तानृण्या (सती) प्रसादं याति ।

दुःखमिति । बद्धमूलः=दृढमूलः, अनुरागः=प्रणयः, त्यक्तुं=मोक्तुं, दुःखं=कष्टं, यथा तथा भवतीति शेषः । स्मृत्वा स्मृत्वा=भूयो भूयः स्मरणं कृत्वा, दुःखं=कष्टं, नवत्वं=नूतनत्वं, याति=प्राप्नोति । अनुभूतं दुःखं मुहुः स्मरणेन नूतनं भवतीति भावः । तु=परन्तु, एषा=इयं, यात्रा=लोकस्थितिः, यत्; इह=अस्मिन्, दुःखानुभवे, बाष्पम्=अश्रु, विमुच्य=त्यक्त्वा, बुद्धिः=निश्चयात्मकं मनः, प्राप्तानृण्या=आसादितानृणत्वा, कृताऽनुरागनिष्कृतिः सतीति भावः । प्रसादं=नैर्मल्यं, याति=प्राप्नोति । अश्रुपातेन निर्यातिताऽनुरागऋणमिव चित्तं किञ्चिदुच्छ्वसितं भवतीति भावः । शालिनी वृत्तम् ॥ ६ ॥

विदूषक इति । अश्रुपातक्लिन्नम्=बाष्पपतनार्द्रम् । मुखोदकं=वदनप्रक्षालनजलम् ।

पद्मावतीति । बाष्पाकुलपटान्तरितम्=अश्रुव्याप्तवस्त्राच्छादितम् । निष्क्रामामः

दुःखमिति । बद्धमूलः=बद्धं मूलं यस्य सः (बहु०) । स्मृत्वा=स्मृ+क्त्वा । प्राप्तानृण्या=अविद्यमानम् ऋणं यस्य सः अनृणः (नञ्व०) । अनृणस्य भाव आनृण्यम्, अनृण+ष्यञ् । प्राप्तम् आनृण्यं यया सा (बहु०) ।

विदूषकः—अश्रुपातक्लिन्नम्=अश्रुणां पातः (ष० त०) तेन क्लिन्नं (तृ० त०) । यह "मुख" का विशेषण है ।

पद्मावती—बाष्पाकुलपटान्तरितं बाष्पेण आकुलः (तृ० त०) स चाऽसौ

दृढ मूलवाला प्रेम छोड़ना मुश्किल है । बारंबार याद करनेसे दुःख नया हो जाता है । परन्तु यह लोकस्थिति है, जो कि यहाँपर आँसू बहाकर चित्त प्रियजनके ऋणसे उन्मुक्त होकर नैर्मल्यको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

विदूषक—आपका मुख आँसुओंके गिरनेसे आर्द्र हो गया है । मुख धोनेके लिए जल लाता हूँ । (निकलता है) ।

पद्मावती—आर्ये ! आर्यपुत्रका मुख आँसुओंसे पूर्ण वस्त्रसे ढका गया है । अब हमलोग

[आर्ये ! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम् । यावन्निष्क्रामामः ।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । अहव चिट्ठ तुवं । उवकण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं । अहं एव्व गमिस्सं । [एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ । [सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला प्रविश ।]

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा ।) एसा तत्तहोदी पदुमावदी ! [एषा तत्रभवती पद्मावती !]

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ ! किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक ! किमेतत् ?]

=निर्गच्छामः, त्वया सहिताया मम निर्गमनस्याऽयमेवाऽसर इति भावः ।

वासवदत्तेति । उत्कण्ठितम्=उत्सुकम्, उज्झित्वा=त्यक्त्वा, अयुक्तम्=अनुचितम् । अहम् एव=उदयनविलोकनपरिहारार्थमिति शेषः ।

चेटीति । सुष्ठु=समीचीनम् । उपसर्पतु=समीपं गच्छतु, भर्तृसमीप इति भावः ।

विदूषक इति । नलिनीपत्रेण=कमलिनीदलेन ।

पद्मावतीति । एतत्=इदं, किम्=आर्यपुत्रस्याऽश्रुपातकारणं किमिति भावः ।

पटः (क० धा०), तेन अन्तरितम् (तृ० त०) ।

चेटी—उपसर्पतु=उप+सृप्+लोट्+तिप् ।

वहाँसे निकलें ।

वासवदत्ता—ऐसा ही हो, अथवा आप ठहरिए । उत्सुक पतिको छोड़कर बाहर निकल जाना उचित नहीं है । मैं ही जाऊँगी ।

दासी—आर्या ठीक कहती हैं । राजकुमारी पतिके पास जायँ ।

पद्मावती—क्या मैं आर्यपुत्रके पास जाऊँ ?

वासवदत्ता—सखि ! जाइए । (ऐसा कहकर वहाँसे निकलती है ।)

विदूषक—(कमलके पत्तेसे जल लेकर) ये माननीया पद्मावती (आईं) ।

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या है ?

विदूषकः—एदं इदं । इदं एदं । [एतदिदम् । इदमेतद् ।]

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्या भणतु ।]

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेण सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गह्णदु होदी इदं मुहोदअं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम् । तद् गृह्णादु भवतीदं मुखोदकम् ।]

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिणो एव्व होदि । (उपेत्य) जेदु अय्यसत्तो । इदं मुहोदअं । [अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । जयत्वार्यपुत्रः । इदं मुखोदकम् ।]

राजा—अये ! पद्मावती ? (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषक इति । एतत् इदम्=इदम् एतद्, रहस्यंगोपनमपश्यतः किंकर्तव्यविमूढस्य विदूषकस्य जलमुद्दिश्य अर्धवाक्यम् ।

पद्मावतीति । भणतु=कथयतु, कारणमिति शेषः ।

विदूषक इति । वासवदत्तास्मरणे राज्ञो रोदनं गोपयन्, प्रत्युत्पन्नमतिर्विदूषकः कथयति—भवतीति । भवति=दीप्यमाने, वातनीतेन=वायुप्रापितेन, काशकुसुमरेणुना=पोटगलपुष्परजसा, साऽश्रुपातम्=अश्रुपूरितम् ।

पद्मावतीति । अहो=आश्चर्यम् । सदाक्षिण्यस्य=दक्षिणस्य, परिजनः=अनुचरः । जयतु=उत्कर्षातिशयेन वर्तताम् ।

राजेति । पद्मावती=समायातेति शेषः । अपवार्य=अपवारितं कृत्वा,

विदूषकः—अक्षिनिपतितेन=अक्ष्णोः निपतितः, तेन (स० त०) । काशकुसुमरेणुना=काशस्य कुसुमं, (ष० त०) तस्य रेणुः, तेन (ष० त०) ।

पद्मावती—सदाक्षिण्यस्य=दाक्षिण्येन सहितः, तस्य (तुल्ययोग-बहु०) ।

राजा—अपवार्य=अपवारितं कृत्वा, अप+वृ+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) ।

विदूषक—यह वह । वह यह ।

पद्मावती—कहें कहें आर्य कहें ।

विदूषक—श्रीमति ! हवासे उड़ाये गये काश पुष्पके परागके आँखमें पड़नेसे राजाका मुख आँसूसे पूर्ण है । इस लिए आप मुख धोनेके इस जलको ले लें ।

पद्मावती—(मन ही मन) अहो ! उदार पुरुषका अनुचर भी उदार ही होता है । (पास जाकर) आर्यपुत्रकी जय हो । यह मुख धोनेका जल है ।

राजा—ऐं ! पद्मावती ? (केवल विदूषकको सुनाकर) वसन्तक ! यह क्या है ?

विदूषकः—(कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

राजा—साधु वसन्तक ! साधु । (आचम्य) पद्मावति । आस्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ! ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ ७ ॥

अन्यस्याऽश्रव्यत्वं कृत्वेति भावः । इदम्=एतत्, किं=किं प्राप्तम् ?

विदूषक इति । एवम् इव=इत्थम् इव, सर्वं वृत्तं व्यतिकरं श्रावयतीति भावः ।

राजेति । साधु=समीचीनम् । आचम्य=आचमनं कृत्वा, मुखप्रक्षालनोत्तरमिति शेषः । आस्यताम्=उपविश्यताम् ।

पद्मावतीति । आज्ञापयति=आदिशति ।

अन्वयः—हे भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साऽश्रुपातम् ॥ ७ ॥

शरदिति । हे भामिनि=हे कोपने !, शरच्छशाऽङ्कगौरेण=शरदचन्द्रशुक्लेन, वाताविद्धेन=समीरप्रेरितेन, काशपुष्पलवेन=पोटगलकुसुमलेशेन, इदम्=एतत्, मम=मे, मुखं=वदनं, साऽश्रुपातम्=अश्रुपतनयुक्तम्, अस्तीति शेषः । अश्रुपात-

---

साहित्यदर्पणके अनुसार अपवारितका लक्षण है—"तद्भवेदपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते । त्रिपताक-करेणाऽन्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥" (६–१३९) ।

शरदिति । शरच्छशाऽङ्कगौरेण=शशः अङ्कः यस्य सः (बहु०) । शरदि शशाऽङ्कः (स० त०), स इव गौरः (उपमितकर्म०) । काशपुष्पलवेन=काशपुष्पस्य लवः, तेन, (ष० त०), "स्त्रियां मात्रा त्रुटी पुंसि लवलेशकणा-

---

विदूषक—(कानमें) यह ऐसा है ।

राजा—वाह वसन्तक ! वाह ! (मुख धोकर) पद्मावती ! बैठो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र जैसी आज्ञा करते हैं । (बैठती है) ।

राजा—पद्मावती !

शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान सफेद वायुसे उड़ाये गये काश पुष्पके परागसे मेरे मुख में अश्रुपात हुआ ॥ ७ ॥

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ ८ ॥

विदूषकः—उइदं तत्तहोदी मअधराअस्स अवरह्णकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं । सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उप्पादेदि । ता उट्ठेदु दाव भवं । [उचितं तत्रभवती मगधराजस्यापराह्णकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा

स्य कारणान्तरं नाऽस्तीति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् । इयं कामं धीरस्वभावा, तु स्त्रीस्वभावः कातरः ।

इयमिति । नवोद्वाहा=नूतनपरिणया, नवपरिणीतेति भावः, इयम्=एषा, बाला=युवतिः, पद्मावतीति भावः, सत्यं=तथ्यं, वासवदत्तास्मरणेन मदीयं वदनमश्रुपूरितमेतादृशमिति भावः, श्रुत्वा=आकर्ण्य, व्यथां=दुःखं, व्रजेत्=प्राप्नुयात् । मम वल्लभ उपरतां वासवदत्तां ध्यायति मामुपेक्षत इति विचार्येति भावः । यद्यपि, इयं=पद्मावती, कामं=पर्याप्तं यथा तथा, धीरस्वभावा=धैर्यसम्पन्ना, अस्तीति शेषः, तु=परन्तु, स्त्रीस्वभावः=नारीप्रकृतिः, कातरः=अधीरः, भवतीति शेषः । उपरतां सपत्नीं प्रति पत्युः प्रणयाऽतिशयं ज्ञात्वा पद्मावती च्युतधैर्या भविष्यतीति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

विदूषक इति । अपराह्णकाले=दिवसतृतीययामे, सुहृज्जनदर्शनं=मित्र-

---

ऽणवः ।" इत्यमरः ॥ ७ ॥

इयमिति—नवोद्वाहा=नव उद्वाहः (परिणयः) यस्याः सा (बहु०) धीरस्वभावा=धीरः स्वभावः यस्याः सा (बहु०) ॥ ७ ॥

विदूषकः—अपराह्णकाले=अह्नः अपरम् अपराह्णः, "पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाऽधिकरणे" इससे एकदेशिसमास । "अह्नोऽह्न एतेभ्यः" इससे अहन् शब्दके स्थानमें अह्न आदेश और "अह्नोदन्तात्" इससे मकारके स्थानमें णत्व हुआ है । अपराह्णश्चाऽसौ कालः तस्मिन् (क० धा०) । सुहृज्जनदर्शनं=शोभनं हृदयं

(मन ही मन)

नव-विवाहिता यह युवती सच्ची बात सुनकर दुःखित होगी । यद्यपि यह बाला पूर्ण रूपसे धैर्यवाली है परन्तु स्त्रीका स्वभाव कातर होता है ॥ ८ ॥

विदूषक—माननीय मगधराजका अपराह्णकालमें आपको आगे रखकर मित्रोंका साक्षा-

सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ।। ९ ।।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

विलोकनं, सत्कारः=आदरः, प्रतीष्टः=स्वीकृतः, उत्पादयति=जनयति ।

राजेति । बाढं=भृशम्, उत्पादयतीति शेषः । प्रथमः=मुख्यः । कल्पः=विधिः ।

अन्वयः—लोके विशालानां गुणानां सत्काराणां च कर्तारो नित्यशः सुलभाः, तु विज्ञातारो दुर्लभाः ।

बाढमिति । लोके=जगति, विशालानां=महतां, गुणानां=दयादाक्षिण्यादीनां, सत्काराणां च=आदराणां च, कर्तारः=अनुष्ठातारः, नित्यशः=प्रायः, सुलभाः=सुप्राप्याः, तु=परन्तु, विज्ञातारः=बोद्धारः, महत्त्वसम्पन्नानां गुणानामादराणां चेति शेषः । दुर्लभाः=दुष्प्राप्याः, गुणानामादराणां च कर्तारो भुवि सुलभाः, परं तादृशानां गुणानां सत्काराणां च ज्ञातारो दुष्प्राप्या इति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।। ९ ।।

निष्क्रान्ताः=निर्गताः ।

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

येषां ते सुहृदः (बहु०) ते च ते जनाः (क० धा०), तेषां दर्शनम् (ष० त०) । उत्पादयति=उद्+पद्+णिच्+लट्+तिप् ।

राजा—कल्पः="कल्पः शास्त्रे विधौ न्याये संवर्ते ब्रह्मणो दिने ।" इति शाश्वतः ।

बाढमिति । सुलभाः=सुखेन लब्धुं शक्याः, सु+लभ्+खल्+जस् । दुर्लभाः=दुर्+लभ्+खल्+जस् ।। ९ ।।

त्कार करना उचित है । सत्कारसे स्वीकृत सत्कारप्रीतिको पैदा करता है । इसलिए आप उठें ।

राजा—अच्छी बात है । मुख्य विधि है । (उठकर)

महान् गुण और सत्कारोंको करनेवाले लोग हमेशा सुलभ होते हैं परन्तु उनके जानकार दुर्लभ होते हैं ।। ९ ।।

(सब लोग निकल गये ।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।



अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका ।)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं । [मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इअह्मि । किं करीअदु ? [हला ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं-भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति । [हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—हद्धि । [हा धिक् ।]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्य अवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं । एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामवन्तिकां शब्दायस्व । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।]

पद्मिनिका इति । शीर्षवेदनया=शिरःपीडया । शब्दायस्व=आह्वायेति भावः । निवेदय=ज्ञापय ।

मधुकरिका—क्रियताम्="कृ" धातुसे कर्ममें लोट् ।

पद्मिनिका—शीर्षवेदनया=शीर्षस्य वेदना तया (ष० त०) । "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम् ।" इत्यमरः । शब्दायस्व=शब्दं कुरु,

---

(तब पद्मिनिका नामकी दासी प्रवेश करती है।)

पद्मिनिका—मधुकरिके ! मधुकरिके ! जल्दी आओ ।

(प्रवेश कर)

मधुकरिका—सखि ! यह मैं हूँ । क्या किया जाय ?

पद्मिनिका—सखि ! तुम क्या नहीं जानती हो ? राजकुमारी पद्मावती शिरकी वेदनासे दुःखित हैं ।

मधुकरिका—हा धिक् !

पद्मिनिका—सखि ! शीघ्र जाओ, आर्या आवन्तिकाको बुलाओ । राजकुमारीकी शिरकी पीडाको ही बताओ । तब वे स्वयं आयेंगी ।

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहिं कहाहिं भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि। [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति।]

मधुकरिका—जुज्जइ। कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ? [युज्यते। कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। गच्छ दाणिं तुवं अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअ अण्णेसामि। [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा। गच्छेदानीं त्वम्। अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि।]

मधुकरिका—एव्वं होदु। (निष्क्रान्ताः) [एवं भवतु।]

मधुकरिका इति। करिष्यति=विधास्यति।

पद्मिनिका इति। मधुराभिः=मनोहराभिः। विनोदयति=अपनयति।

मधुकरिका इति। शयनीयं=शय्या। रचितं=सज्जितम्।

पद्मिनिका इति। समुद्रगृहके=तन्नामके स्थाने। आस्तीर्णा=कल्पिता। अन्विष्यामि=गवेषयामि।

"शब्द" पदसे "शब्दवैरकलहाऽभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे" इस सूत्रसे क्यङ् होकर लोट्+थास्। क्यङ्में ङित् होनेसे "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" इससे आत्मनेपद।

पद्मिनिका—विनोदयति=वि+नुद+णिच्+लट्+तिप्।

मधुकरिका—शयनीयं=शय्यते अस्मिन् ऐसा विग्रह कर "शीङ् स्वप्ने" धातुसे "कृत्यल्युटो बहुलम्" इस सूत्रसे अधिकरणमें अनीयर्। कुत्र=कस्मिन्निति "किम्" शब्दसे "सप्तम्यास्त्रल्" इससे त्रल् प्रत्यय और "किम्" शब्दके स्थानमें "कु ति होः" इस सूत्रसे "कु" आदेश।

पद्मिनिका—निवेदनार्थं=निवेदनाय इदम्, "चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः" इस सूत्रसे "अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्" इस वार्त्तिकसे निवेदन क्रियाका विशेषण होनेसे नपुंसकलिङ्ग।

मधुकरिका—सखि ! वे क्या करेंगी ?

पद्मिनिका—इस समय वे मनोहर कहानियोंसे राजकुमारीको शिरोवेदनाको दूर करेंगी।

मधुकरिका—उचित है। राजकुमारीकी शय्या कहाँ सजाई गई है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह नामके स्थानमें शय्या बिछाई गई है। अब तुम जाओ। मैं भी राजाको निवेदन करनेके लिए आर्य वसन्तकको ढूँढ़ती हूँ।

मधुकरिका—ऐसा ही हो। (निकलती है)

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वड्ढइ । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि ! पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । अयि ! पद्मिनिका ? पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं—भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति । [आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि । [भवति ! सत्यं ? न जानामि ।]

विदूषक इति । देवीवियोगविधुरहृदयस्य = वासवदत्ताविरहविकलचित्तस्य । पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य = पद्मावतीपरिणयप्रेरितस्य, विषयसुखं प्रतीति शेषः । अत्यन्तसुखावहे = अतिशयानन्दप्रदे । मदनाऽग्निदाहः = कामाऽनलसन्तापः ।

विदूषकः—देवीवियोगविधुरहृदयस्य = देव्या वियोगः (ष० त०), विधुरं हृदयं यस्य सः (बहु०), "वैकल्येऽपि च विश्लेषे विधुरं विकले त्रिषु ।" इति त्रिकाण्डशेषः । देवीवियोगेन विधुरहृदयः, तस्य (तृ० त०) । पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य = पाणेः ग्रहणम् (ष० त०), पद्मावत्याः पाणिग्रहणं (ष० त०), तेन समीरितस्य (तृ० त०) ।

पद्मिनिका—इस समय आर्य वसन्तकको कहां देखूँगी ?

(तब विदूषक प्रवेश करता है ।)

विदूषक—आज महारानी वासवदत्ताके वियोगसे विकल चित्तवाले तथा पद्मावतीके साथ विवाह करनेसे विषय सुखमें प्रेरित माननीय वत्सराजके अत्यन्त सुखप्रद मङ्गल उत्सवमें कामाग्निका सन्ताप बहुत ज्यादा बढ़ रहा है । (पद्मिनिका को देखकर) पद्मिनिके ! यहाँ क्या हो रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य ! वसन्तक ! राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्दसे दुःखित हैं ? क्या आप नहीं जानते ?

विदूषक—श्रीमति ! सचमुच ? मैं नहीं जानता ।

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि।]

(निष्क्रान्तौ)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः।

पद्मिनिका इति। शीर्षाऽनुलेपनं=शिरोऽनुलेपनभेषजं, तत्प्राप्त्यर्थमिति शेषः। त्वरयामि = त्वरां करोमि।

प्रवेशकः।

अन्वयः—कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहम्) लावाणके हुतवहेन

पद्मिनिका—भर्त्रे=निवेदन क्रियाके योगमें सम्प्रदान होनेसे चतुर्थी। निवेदय= नि–उपसर्गपूर्वक "विद्" धातुसे णिच् होकर लोट् मध्यमपुरुषका एकवचन।

प्रवेशकः=इसका लक्षण पहले ही लिख चुके हैं।

श्लाघ्यामिति। पुनरागतदारभारः = दाराणां भारः (ष० त०), "भार्या-

---

पद्मिनिका—तब आप इसे राजाको निवेदन करें। तब तक मैं भी सिरदर्दको हटाने-वाले लेप लानेके लिए शीघ्रता करती हूँ।

विदूषक—पद्मावतीकी शय्या कहाँ तैयार की गई है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह नामके स्थानमें शय्या बिछाई गई है।

विदूषक—आप जायँ। तब तक मैं भी महाराजको निवेदन करूँगा।

(दोनों निकल गये)

प्रवेशक समाप्त।

(तब राजा प्रवेश करते हैं।)

राजा—समय क्रमसे फिर विवाह करनेवाला मैं, लावाणक ग्राममें आगसे जली,

लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥ १ ॥

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु दाव भवं । [त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

हृताऽङ्गयष्टिं श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां तां हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ॥ १ ॥

श्लाघ्यामिति । कालक्रमेण=समयपरिपाट्या, पुनरागतदारभारः=भूय आगतपत्नीभारः, परिणीतपद्मावतीक इति भावः, अहमिति शेषः । लावाणके=तदाख्यग्रामे, हुतवहेन=अग्निना, हृताऽङ्गयष्टिं=दग्धतनुलतां, श्लाघ्यां=प्रशंसनीयाम्, अवन्तिनृपतेः=अवन्तिराजस्य, सदृशीं=समानां, तनूजां=पुत्रीं, गुणगणाऽनुरूपामिति भावः, ताम्=असकृदनुभूतां, वासवदत्तामिति भावः । हिमहतां=तुषारनाशितां, पद्मिनीम् इव=कमलिनीम् इव, चिन्तयामि=स्मरामि । अत्रोपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

विदूषकः—त्वरतां=त्वरां करोतु ।

राजा—किमर्थं=किं कारणमिति भावः ।

जायाऽथ पुंभूम्नि दाराः" इत्यमरः । "दार" शब्द पत्नी वाचक होकर भी पुंलिङ्गमें नित्यबहुवचनान्त है । पुनरागतो दारभारो यस्य सः (बहु०) । वासवदत्ताकी मृत्युके अनन्तर फिर विवाह करनेवाला यह तात्पर्य है । "अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेकमपि द्विजः ।" इस दक्षस्मृतिके वचनके अनुसार राजाका दूसरा विवाह उचित है । श्लाघ्यां=श्लाघितुं योग्या ताम्, श्लाघ्+ण्यत्+टाप् । हुतवहेन=हुतं वहतीति, तेन, हुत+वह+अच् । हृताङ्गयष्टिं=अङ्गम् एव यष्टिः (रूपक०), यहाँपर चन्द्रालोककार जयदेवके "स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभास, रूपकम्" इस उक्तिके अनुसार आभासरूपक अलङ्कार है । हृता अङ्गयष्टिः यस्याः सा, ताम् (बहु०) ॥ १ ॥

विदूषकः—त्वरताम्="(ञि) त्वरा" धातुसे लोट्+त ।

प्रशंसनीय अवन्तिनरेशकी योग्य पुत्री उन वासवदत्ताको बरफसे ताडित कमलिनीके समान याद कर रहा हूँ ॥ १ ॥

विदूषक—आप जल्दी करें, जल्दी करें ।

राजा—क्यों ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा। [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता।]

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः—पदुमिणिआए कहिदं। [पद्मिनिकया कथितम्।]

राजा—भोः ! कष्टम्,

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

अन्वयः—रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां प्रियां लब्ध्वा अद्य मम शोको मन्द इव। पूर्वाऽभिघातसरुजः अनुभूतदुःखः अपि पद्मावतीम् अपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

रूपश्रियेति। रूपश्रिया=सौन्दर्यसम्पत्त्या, समुदितां=संयुक्तां, न केवलं सौन्दर्यसम्पत्त्या अपि तु गुणतश्च = दयादाक्षिण्यादिगुणैश्च, युक्तां=सम्पन्नां, प्रियां= वल्लभां, पद्मावतीमिति भावः। लब्ध्वा=प्राप्य, अद्य=अस्मिन्समये, मम=उदयनस्य, वासवदत्ताविप्रयुक्तस्येति भावः। शोकः=मन्युः, वासवदत्ताविषयक इति भावः, मन्द इव=मन्थर इव, स्तोकं न्यून इवेति भावः। पूर्वाऽभिघातसरुजः= प्राचीनदैवप्रहारपीडितः, अनुभूतदुःख = निर्विष्टकष्टः, अपि, पद्मावतीम् अपि= मगधराजकुमारीम् अपि, तथा एव=तेन प्रकारेण एव, वासवदत्तामिव विनाशं

रूपश्रियेति। लब्ध्वा=लभ्+क्त्वा। पूर्वाऽभिघातसरुजः=पूर्वश्चाऽसौ अभिघातः (कर्म०)। रुजया सहितः सरुजः (तुल्ययोगे बहु०)। यहाँपर रोगवाचक "रुजा" शब्द लक्षणासे पीडावाचक हुआ है। पूर्वाऽभिघातेन सरुजः (तृ० त०) अनुभूतदुःखः=अनुभूतं दुःखं येन सः (बहु०)।

विदूषक—महारानी पद्मावती सिरदर्दसे बेचैन हैं।

राजा—किसने ऐसा कहा ?

विदूषक—पद्मिनिकाने कहा।

राजा—ओह ! कष्ट है।

सौन्दर्यसम्पत्ति और गुणोंसे युक्त प्रिया (पद्मावती) को पाकर आज मेरा शोक कम-सा हुआ था। पहलेके (भाग्यके) आघातसे पीडित होकर दुःखका अनुभव करके पद्मावतीको भी उसी (वासवदत्ताकी) तरह होनेवाली सम्भावना कर रहा हूँ ॥ २ ॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा।]

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

विदूषकः—एदु एदु भवं। [एत्वेतु भवान्।]

(उभौ परिक्रामतः।)

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु भवं। [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशतु भवान्।]

राजा—पूर्वं प्रविश।

विदूषकः—भो ! तह। (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [भोः ! तथा। अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एसो खु दीपप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अज्जं काओअरो। [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः अयं काकोदरः]

प्राप्स्यन्तीमिति भावः। समर्थयामि=संभावयामि। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तम्॥ १॥

अथेति। अथ=प्रश्नार्थकमव्ययम्।

विदूषकः इति। दीपप्रभावसूचितरूपः=प्रदीपमहिमज्ञापितस्वरूपः, वसुधातले=

राजा—आदेशय=आङ्+दिश्+णिच्+लोट्+सिप्।

विदूषकः—दीपप्रभावसूचितरूपः=दीपस्य प्रभावः (ष० त०), सूचितं रूपं यस्य सः (बहु०) दीपप्रभावेण सूचितरूपः (तृ० त०)। वसुधातले=

पद्मावती किस स्थानमें हैं ?

विदूषक—समुद्रगृह नामके स्थानमें उनकी शय्या बिछाई गई है।

राजा—तब तो उसका मार्ग दिखलायें।

विदूषक—आइए आप आइए।

(दोनों घूमते हैं।)

विदूषक—यह समुद्रगृह है। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

विदूषक—जी ! अच्छी बात है। (प्रवेश कर) ओह ! ठहर जाइए, ठहर जाइए।

राजा—क्यों ?

विदूषक—दीपकके प्रकाशसे रूप देखा गया, जमीन पर रेंगता हुआ यह सर्प है।

राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य ।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥ ३ ॥

भूतले, परिवर्तमानः=चेष्टमानः, काकोदरः=सर्पः ।

राजेति । सस्मितं=मन्दहास्यपूर्वकम् । अहो=आश्चर्यम्, वैधेयस्य=मूर्खस्य, सर्पव्यक्तिः=भुजङ्गप्रतीतिः ।

अन्वयः—हे मूर्ख ! त्वम् ऋज्वायतां क्षितौ भ्रष्टां मुखतोरणलोलमालां सर्पम् अवगच्छसि । या निशि मन्दाऽनिलेन किञ्चित्परिवर्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि करोति ॥ ३ ॥

ऋज्वायतामिति । हे मूर्ख=हे मूढ !, त्वं=विदूषकः, ऋज्वायतां=सरल-दीर्घां, क्षितौ=भुवि, भ्रष्टां=पतितां, मुखतोरणलोलमालां=मुख्यबहिर्द्वारचञ्चल-स्रजं, सर्पं=भुजङ्गम्, अवगच्छसि=जानासि । या=मुखतोरणलोलमाला, निशि=रात्रौ, मन्दाऽनिलेन, मन्थरवातेन, किञ्चित्=ईषत्, परिवर्तमाना=

वसुधायाः तलं, तस्मिन् (ष० त०), "वसुधोर्वी वसुन्धरा ।" इति, "अधः-स्वरूपयोरस्त्री तलम्" इति चाऽमरः । परिवर्तमानः=परिवर्तत इति, परि+वृत्+लट्+शानच् "आने मुक्" इस सूत्रसे मुक् आगम हुआ है, काकोदरः=काकस्येव उदरं यस्य सः (व्यधिकरणबहु०) । "कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी ।" इत्यमरः ।

राजा—वैधेयस्य=विधातुं योग्यं विधेयम्, विधानमित्यर्थः । वि+धा+यत् । विधेयस्य अयं वैधेयः, तस्य, "विधेय" शब्दसे "तस्येदम्" इस सूत्रसे अण् और "तद्धितेष्वचामादेः" इस सूत्रसे आदिवृद्धि हुई है । कार्यविधानका अधिकारी मूर्ख (अज्ञ) होता है । "अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः ।" इत्यमरः ।

ऋज्वायतामिति । ऋज्वायताम्=ऋजुश्चाऽसौ आयता, ताम् (कर्म०),

राजा—(प्रवेश कर और देखकर मुस्कराहटके साथ ।)

अहो ! मूर्खको सर्पकी प्रतीति हो गई है । हे मूर्ख ! तुम सीधी और लम्बी, जमीनपर गिरी हुई मुख्य बाहरके दरवाजेकी हिलती हुई मालाको सर्प समझ रहे हो । जो कि रातमें

विदूषकः—(निरूप्य) सुट्ठु भवं भणादि। ण हु अअं काओअरो। (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [सुष्ठु भवान् भणति। न खल्वयं काकोदरः। तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम्।

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः।

परितश्चेष्टमाना सती, भुजगस्य=सर्पस्य, विचेष्टितानि=विलुण्ठनकर्माणि, करोति=विदधाति। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३ ॥

विदूषक इति। निरूप्य=दृष्ट्वा, सुष्ठु=समीचीनं, निर्गता=निष्क्रान्ता।

राजेति। वयस्य=मित्र !, अनागतया=अनायातया, भवितव्यं=भाव्यम्।

राजेति। ज्ञेयं=ज्ञातव्यम्।

अन्वयः—हि शय्या अवनता न, तथा आस्तृतसमा, व्याकुलप्रच्छदा न। अमलं शिरोपधानं शीर्षाऽभिघातौषधैः क्लिष्टं न। रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता। प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः शीघ्रं स्वयं न मुञ्चति ॥४॥

शय्येति। हि=यस्मात्कारणात्, शय्या=शयनीयम्, अवनता न=देहभारेण

मुखतोरणमालां=मुखं च तत्तोरणम् (कर्म०)। मुखतोरणे माला, ताम् (स० त०)। मन्दाऽनिलेन=मन्दश्चाऽसौ अनिलः, तेन (कर्म०) ॥ ३ ॥

विदूषकः—आगत्य=आङ् + गम् + क्त्वा (ल्यप्)।

राजा—अनागतया=न आगता अनागता, तया (नञ्०)। भवितव्यम्=भू + तव्यत्। ज्ञेयम्=ज्ञा + यत्।

शय्येति। आस्तृतसमा=आस्तृता चाऽसौ समा (कर्म०)। व्याकुलप्रच्छदा=

मन्द वायुसे हिलती हुई सर्पकी कुछ चेष्टाओंको कर रही है ॥ ३ ॥

विदूषक—(देखकर) आप ठीक कहते हैं। यह सर्प नहीं है। (प्रवेश कर और देखकर) माननीय पद्मावती यहाँ आकर निकली हुई होंगी।

राजा—मित्र ! वे (पद्मावती) नहीं आई हुई होंगी।

विदूषक—आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें क्या जानना है ? देखो—

शय्या झुकी नहीं है, चादर पहलेकी समान है, शरीरके लोटपोट करनेसे सिकुड़ी

रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥ ४ ॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सि सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदिं पडिवालेदु

निम्नीभूता न, तथा=तेनैव प्रकारेण, आस्तृतसमा=आस्तरणवस्त्रालङ्कृता तुल्यरूपा, व्याकुलप्रच्छदा न=देहपरिवर्तनेन सङ्कुचितनिचोला न, शय्येति शेषः। एवं च अमलं=निर्मलं, शिरोपधानं=मस्तकोपबर्हः, शीर्षाऽभिघातौषधैः= मस्तकवेदनाभेषजैः, क्लिष्टं न=मलीमसं न। तथैव रोगे=रुजायां, दृष्टिविलोभनं=नेत्राकर्षणं, जनयितुम्=उत्पादयितुं, काचित्=काऽपि, शोभा=कान्तिरचना, न कृता=नो विहिता, प्राणी=जनः, रुजा=रोगेण कारणभूतेन, शयनं=शय्यां, प्राप्य=आसाद्य, पुनः=भूयः, शीघ्रं=सत्वरं, स्वयम्=आत्मना, न मुञ्चति=न त्यजति, वैकल्येन स्थानान्तरं गन्तुं न प्रवर्तत इति भावः। अनुमानालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४ ॥

विदूषक इति। तत्रभवतीं=पद्मावतीमिति भावः, प्रतिपालयतु=प्रतीक्षताम्।

व्याकुलः प्रच्छदो यस्याः सा (बहु०)। अमलम्=अविद्यमानं मलं यस्य तत् (नञ्बहु०), शिरोपधानं=शिरस उपधानं (ष० त०), शॄ+कः=शिरः, यद्यपि शिरः शब्द असुन्प्रत्ययान्त ही अधिकतर प्रयुक्त है, तथापि कहीं-कहीं "शिरोवाची शिरोऽदन्तो, रजोवाची रजस्तथा।" व्याख्यासुधाकी इस उक्तिसे कप्रत्ययाऽन्त भी प्रयुक्त होता है। "उत्तमाऽङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्।" इति "उपधानं तूपबर्हः" इति चाऽमरः। शीर्षाभिघातौषधैः=शीर्षस्य अभिघातः (ष० त०), तस्य औषधानि, तैः (ष० त०)। क्लिष्टं= "क्लिशू विबाधने" धातुसे क्तप्रत्यय। दृष्टिविलोभनं=दृष्ट्योर्विलोभनं, तत् (ष० त०)। जनयितुं=जन्+णिच्+तुमुन्। प्राणी=प्राणाः सन्ति यस्य सः, प्राण+इनिः। रुजा="रुज्" शब्दसे "हेतौ" इस सूत्रसे तृतीया। इस श्लोकमें शय्याके अवनमनाऽभाव आदि हेतुसे पद्मावतीके आगमनाऽभावरूप साध्यका साधन होनेसे अनुमान अलङ्कार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ४ ॥

विदूषकः—मुहूर्त्तकम्=यह स्वल्प समयका उपलक्षण है। "कालाऽध्वनोर-

---

नहीं है। सफेद तकिया सिरदर्दकी दवाओंसे मलिन नहीं है। रोगमें नेत्रोंको लुभानेके लिए कोई सजावट नहीं की गई है। रोगके कारण बिछौनेमें जाकर मनुष्य अपने आप शीघ्र नहीं छोड़ता है ॥ ४ ॥

विदूषक—तो इस शय्यामें कुछ समय तक बैठकर आप उन (पद्मावती) की

भवं । [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवती प्रतिपालयतु भवान् ।]

राजा—बाढम् । (उपविश्य) वयस्य ! निद्रां मां बाधते । कथ्यतां काचित् कथा ।

विदूषकः—अहं कहइस्सं । हो त्ति करेदु अत्तभवं । [अहं कथयिष्यामि । हों इति करोत्वत्रभवान् ।]

राजा—बाढम् ।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम । तहिं अहिअरमणीआणि उदअ-ह्वाणाणि वत्तन्ति किल । [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम । तत्राधिकरमणीयान्युदक-स्नानानि वर्तन्ते किल ।]

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं । [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि ।]

राजेति । कथा=प्रबन्धकल्पना ।

विदूषक इति । होम्=श्रवणसूचकमव्ययमेतत् । नगरी=पुरी, तत्र=तस्याम्, अधिकरमणीयानि=अतिशयसुन्दराणि, उदकस्नानानि=जलाशयस्थानानि । अन-भिप्रेता=अनीप्सिता ।

त्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया ।

राजा—वयस्य=वयसा तुल्यो वयस्यः, तत्सम्बुद्धौ, वयस्+यत् ।

विदूषकः—होम्=यह अनुकरणार्थक है । उदकस्नानानि=उदकेन स्नान्ति एषु, तानि, "ष्णा शौचे" धातुसे "करणाऽधिकरणयोश्च" इस सूत्रसे अधिकरणमें ल्युट् । अनभिप्रेता=न अभिप्रेता, (नञ्तत्पु०) ।

प्रतीक्षा करें ।

राजा—अच्छी बात है । (बैठकर) मित्र ! नींद मुझे सता रही है । कुछ कथा कहिए ।

विदूषक—मैं कहता हूँ । आप 'हाँ' कहिए ।

राजा—अच्छा ।

विदूषक—उज्जयिनी नामकी नगरी है । वहाँ बहुत ही मनोहर स्नानके योग्य जलाशय है ।

राजा—क्या उज्जयिनी नामकी (नगरी) ?

विदूषक—यह कथा पसन्द नहीं हो तो दूसरी कहूँगा ।

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥ ५ ॥

अपि च,

राजेति। न अभिप्रेता (इति) न=अभिप्रेता एव।

अन्वयः—प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः स्नेहात् प्रवृत्तं नयनाऽन्तलग्नं बाष्पं मम एव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्या अधिपतेः सुतायाः स्मरामि ॥ ५ ॥

स्मरामीति। प्रस्थानकाले=प्रयाणसमये, उज्जयिनीतो वत्सराज्यं प्रतीति शेषः। स्वजनम्=आत्मीयजनं, मातापित्रादिकमिति भावः। स्मरन्त्याः=ध्यातन्त्याः, अत एव स्नेहात्=प्रणयात् हेतोः, प्रवृत्तं=जनितं, नयनाऽन्तलग्नं=नेत्रप्रान्तसम्बद्धं, बाष्पम्=अश्रु, मम एव=उदयनस्य एव, उरसि=वक्षःस्थले, पाययन्त्याः=मुञ्चन्त्याः, अवन्त्या=अवन्तिदेशेन उपलक्षितस्य, अधिपतेः=स्वामिनः, मालवेश्वरस्य, प्रद्योतस्येति भावः। सुतायाः=पुत्र्याः, वासवदत्ताया इति भावः। स्मरामि=चिन्तयामि। उपजातिवृत्तम् ॥ ५ ॥

अपि च=अन्यच्च।

स्मरामीति। अवन्त्याधिपतेः=यहाँपर अवन्त्या अधिपतिः, ऐसा विग्रह कर षष्ठीतत्पुरुष समास करेंगे तो अवन्त्यधिपतिः, तस्य, अवन्त्यधिपतेः, ऐसा रूप बनेगा, समास न करके व्यास वाक्य रखेंगे तो अवन्त्या अधिपतेः ऐसा प्रयोग होगा, अत एव यहाँपर व्याकरणविरुद्ध (च्युतसंस्कृति) दोष हटानेके लिए "अवन्त्या" इस पदको उपलक्षणमें तृतीयान्त समझना चाहिए अर्थात् अवन्तिदेशेन उपलक्षितस्य, अवन्तिदेशसे उपलक्षित अधिपति अर्थात् राजा प्रद्योतकी। यह सरलप्रक्रिया है। नयनाऽन्तलग्नं=नयनयोः अन्तौ (प्रान्तभागौ), (ष० त०)। तयोः लग्नम् (स० त०)। पातयन्त्याः=पातयतीति पातयन्ती, तस्याः, पत+णिच्+लट् (शतृ)+ङस्। सुतायाः="स्मरामि" इस क्रिया पदके योगमें "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इस सूत्रसे कर्ममें षष्ठी। उपजाति छन्द है ॥ ५ ॥

राजा—मित्र ! यह कथा नापसन्द है यह बात नहीं। परन्तु (उज्जयिनीसे मेरे साथ) प्रस्थानके समयमें स्वजन (माता-पिता आदि) को स्मरण करने वाली नेत्रकी छोरमें स्नेहसे निकलने वाली आँसूको मेरे ही छातीमें गिराने वाली उज्जयिनीके स्वामीकी पुत्री (वासवदत्ता) को स्मरण करता हूँ ॥ ५ ॥

बहुशोऽप्युपदेशेसु यथा मामोक्षमाणया ।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं । अत्थि णअरं बह्मदत्तं णाम । तहिं किल राजा कंपिल्लो णाम । [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि । अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम । तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम ।]

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति ।)

अन्वयः—उपदेशेषु अपि बहुशो माम् ईक्षमाणया यया स्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितं कृतम् ॥ ५ ॥

बहुश इति । उपदेशेषु अपि = मत्कर्तृकवीणावादनशिक्षणेषु अपि, बहुशः = बहुवारं, मां = शिक्षकम्, ईक्षमाणया = पश्यन्त्या, यया = वासवदत्तया, स्रस्त-कोणेन = भ्रष्टवीणावादनसाधनेन, हस्तेन = करेण, आकाशवादितं=व्योमवादनं, शून्यस्थलवादनम्, कृतं = विदितम्, आसक्तिविशेषण राजमुखदर्शन-व्यग्रत्वेन अस्थाने वादनं कृतमिति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ६ ॥

विदूषक इति । अन्याम् = अपरां, कथामिति भावः । नगरं = पुरम् ।

राजेति । किमिति = किमुक्तम् इति भावः ।

बहुश इति । बहुशः = बहुवारमिति, बहु शब्दसे "बह्वल्पार्थाच्छस् कारका-दन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे शस् प्रत्यय । यहाँपर वासवदत्ताके राजा उदयनको बीन सीखनेके समय वारंवार देखना प्रणयाऽतिशयके हेतुसे जानना चाहिए, जिससे कि हाथसे कोणका गिरना शून्य प्रदेशमें न जाना भी उन्हें प्रतीत नहीं हुआ । स्रस्तकोणेन = स्रस्तः कोणो यस्मात्तेन, (बहु०) यह पद "हस्तेन" इसका विशेषण है । "कोणो वीणादि-वादनम्" बीन आदि बजानेके साधनको "कोण" भाषामें "मिजराव" कहते हैं ॥ ६ ॥

(बीन बजानेके) उपदेशमें मुझे बारंबार देखनेवाली जिसने कोण (मेजराब) से रहित हाथने आकाशवादित (शून्य स्थलमें वादन) किया ॥ ६ ॥

विदूषक—अच्छा दूसरी (कथा) कहता हूँ । ब्रह्मदत्त नामका नगर है । वहाँ काम्पिल्य नामके राजा हैं ।

राजा—क्या कहा ? क्या कहा ?

विदूषक—(फिर वही कहता है ।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम् ।

विदूषकः—किं राआ बह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ?]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राजा बह्मदत्तो, णअरं कपिल्लं । (इति वहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं गह्लिअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी च ।)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

विदूषक इति । मुहूर्तकं = कञ्चित्कालम् । प्रतिपालयतु=प्रतीक्षताम् । ओष्ठगतम् = अधरगतं, कण्ठस्थमिति भावः । सुप्तः = निद्राणः । वेला = कालः । प्रावारकम् = उत्तरासङ्गम् ।

चेटीति । दृढम् = अधिकम् ।

राजा—अभिधीयताम् = अभि + धा (कर्ममें) + लोट् ।

विदूषकः—सुप्तः = स्वप् + क्तः । प्रावारकं=प्रावार एव प्रावारकः, स्वार्थमें कन् प्रत्यय । द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा ।" इत्यमरः । निष्क्रान्तः =निस् + क्रम् + क्तः ।

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ऐसा कहो ।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

राजा—यह ऐसा ही है ।

विदूषक—तो आप कुछ समय तक प्रतीक्षा करें, जब तक स्मरण करता हूँ । राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य । (इस प्रकारसे बारंबार वही पढ़कर) अब आप सुनिए । अरे ! आप सो गये ? यह समय बहुत ठण्डा है । अपना ओढ़ना लेकर आता हूँ (निकल जाता है ।)

(तब आवन्तिकाके वेशमें वासवदत्ता और दासी भी प्रवेश करती हैं ।)

दासी—आर्या, आइए आइए । राजकुमारी शिरकी पीड़ासे बहुत आकुल हैं ।

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा ।]

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि। [तेन ह्यग्रतो याहि।]

(उभे परिक्रामतः।)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु अय्या। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। (निष्क्रान्ता।) [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशत्वार्या। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे। विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्य विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा। जाव पविसामि (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजणस्स पमादो। अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीव-

---

वासवदत्तेति। अग्रतः=पुरः।

चेटीति। शीर्षाऽनुलेपनं=शिरोलेपनभेषजमिति भावः आनेतुमिति शेषः। त्वरयामि=त्वरां करोमि।

वासवदत्तेति। ईश्वराः=देवाः, मे=मम, विषय इति शेषः। अकरुणाः=निर्दयाः। विरहपर्युत्सुकस्य=मद्वियोगोत्कण्ठितस्य। विश्रमस्थानभूता=मनो-

---

चेटी—स्तीर्णा = स्तॄ+क्त+टाप्।

वासवदत्ता— अग्रतः = अग्रात् इति, अग्र+तसिः। याहि = या+लोट्+सिप्। त्वरयामि=त्वरां करोमि, त्वरा+णिच्+लट्+मिप्।

वासवदत्ता—ईश्वराः=ईशत इति, "ईश ऐश्वर्ये" धातुसे "स्थेशभासपिस-कसो वरच्" इस सूत्रसे "वरच्" प्रत्यय। अकरुणाः=अविद्यमाना करुणा येषां ते

वासवदत्ता—हा धिक् ! पद्मावतीकी शय्या कहाँ रची गई है ?

दासी—समुद्रगृह (नामक स्थान) में शय्या बिछाई गई है।

वासवदत्ता—तो आगे बढ़ो।

(दोनों घूमती हैं।)

दासी—यह समुद्रगृह है। आर्या प्रवेश करें। तब तक मैं भी शिरमें लगानेके लेपके लिए शीघ्रता करती हूँ। (चली जाती है।)

वासवदत्ता—अहो ! मेरे प्रति देवतालोग निर्दय हैं। (मेरे) विरहसे उत्कण्ठित आर्यपुत्रके विश्रामके स्थानरूप यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई। पहले प्रवेश करती हूँ।

सहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदी ओसुत्ता । जाव उवविसामि ! अहव अञ्ञासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उव-विसामि । (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरोआए होदव्वं ! अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मे आलिङ्गेहि त्ति । जाव सइस्सं (शयनं नाटयति) । [अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्य-पुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता । यावत् प्रविशामि । अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परि-त्यजति । इयं पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि । किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्टयाऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासा । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामा-लिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।]

विनोदपात्रभूता. अस्वस्था=रुग्णा । परिजनस्य=सेवकजनस्य, प्रमादः=अनवधा-नता । दीपसहायां=प्रदीपसहचराम्, अवसुप्ता=निद्राणा । अन्यासनपरिग्रहेण=आस-नान्तरस्वीकारेण, प्रतिभाति=प्रतीतो भवति । उपविशन्त्याः=उपवेशनं कुर्वत्याः प्रह्लादितम् इव = आनन्दितम् इव । दिष्टया=भाग्येन, अविच्छिन्नसुख-

---

(नञ्वहु०) । विरहपर्युत्सुकस्य = विरहेण पर्युत्सुकः तस्य (तृ० त०) । विश्रमस्थानभूता=विश्रमस्य स्थानं (ष० त०) । विश्रमस्थानं भूता (सुप्सुपा०) । प्रमादः=प्र + मद् + घञ्, "प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः । दीपसहायां=दीपः सहायो यस्याः सा, ताम् (वहु०)' । अन्यासनपरिग्रहेण=अन्यच्च आसनम् (क० धा०), तस्य परिग्रहः, तेन (ष० त०) अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा = अवि-च्छिन्नः सुखो निःश्वासो यस्याः सा (वहु०) । निवृत्तरोगया=निवृत्तो रोगो

(प्रवेश कर और देखकर) अहो ! नौकरोंकी गलती । जिन्होंने बीमार पद्मावतीको केवल दीयेके सहारे छोड़ दिया है । यह पद्मावती सो रही है । तब तक बैठती हूँ । अथवा दूसरे आसनपर बैठनेसे स्नेह थोड़ा-सा प्रतीत होता है । इस कारण इसी शय्यामें बैठती हूँ । (बैठकर) क्या कारण है कि इनके साथ बैठनेवाली मेरा हृदय आज आह्लादित सा हो रहा है । भाग्यसे इनका निःश्वास अविच्छिन्न सुखसे युक्त हो रहा है । इस कारण इनको रोगसे रहित होना चाहिए । अथवा बिछौनेके एक छोरमें सोनेसे मुझे आलिङ्गन करो ऐसी सूचना कर रही हैं । तो सोती हूँ । (सोनेका अभिनय करती है ।)

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठम्हि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो । [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोच्चि जणो । जाव मुहूत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठिं हिअअं च तोसेमि । [दिष्टया स्वप्नायते खल्वार्य-

---

निःश्वासा=विच्छेदरहितवदनश्वासा । निवृत्तरोगया=रोगरहितया । एकदेशसंविभागतया=एकभागविभागत्वेन । आलिङ्ग=आश्लिष्य । शयिष्ये=शयनं करिष्यामि । नाटयति=अभिनयति ।

राजेति । स्वप्नायते=स्वप्नं पश्यति ।

वासवदत्तेति । सहसा=अतर्कित एव । निष्फलः=फलशून्यः ।

राजेति । अवन्तिराजपुत्रि=अवन्तिभूपकुमारि !, हा=तस्याः शोच्यत इति भावः ।

वासवदत्तेति । तोषयामि=सन्तुष्टं करोमि ।

यस्याः सा निवृत्तरोगा, तया (बहु०) । भवितव्यं=भू + तव्यत् (भावमें) । एकदेशसंविभागतया=एकश्चाऽसौ देशः (क० धा०) तस्मिन् संविभागः (स० त०), तस्य भाव एकदेशसंविभागता तया (एकदेशसंविभाग + तल् + टाप्) । शयिष्ये="शीङ् स्वप्ने" धातुसे लृट् + इट् ।

राजा—स्वप्नायते=स्वप्नं करोतीति ऐसा विग्रह कर स्वप्न शब्दसे "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् होकर लट् + त । स्वप्नका लक्षण है—"सुप्तस्य मानसिकज्ञानविशेषः स्वप्नः" अर्थात् सोये हुए व्यक्तिके मानसिकज्ञानविशेषको "स्वप्न" कहते हैं ।

वासवदत्ता—प्रतिज्ञाभारः=प्रतिज्ञाया भारः (ष० त०) । निष्फलः=

राजा—(स्वप्न देखते हैं ।) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) हैं ! आर्यपुत्र ! पद्मावती नहीं ? क्या मैं देखी गई हूँ ? आर्य यौगन्धरायणका महान् प्रतिज्ञाभार मेरे दर्शनसे व्यर्थ हो गया ।

राजा—हा ! अवन्ति राजकुमारि !

वासवदत्ता—भाग्यसे आर्यपुत्र स्वप्न देख रहे हैं । यहाँ कोई मनुष्य नहीं है । तब

पुत्रः। नात्र कश्चिज्जनः। यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि।]

राजा—हा! प्रिये! हा! प्रियशिष्ये! देहि मे प्रतिवचनम्।

वासवदत्ता—आलवामि भद्र! आलवामि। [आलपामि भर्तः! आलपामि]

राजा—किं कुपितासि?

वासवदत्ता—ण हि ण हि, दुक्खिदह्मि। [नहि नहि, दुःखितास्मि।]

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि?

वासवदत्ता—इदो वरं किं? [इतः परं किम्?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि?

राजेति। प्रियशिष्ये=दयितच्छात्रि। प्रतिवचनं=प्रत्युत्तरम्।

वासवदत्तेति। आलपामि=आलापं करोमि।

राजेति। कुपिता = क्रुद्धा।

वासवदत्तेति। न हि न हि=न न, कुपिता नाऽस्मीति भावः। प्रत्युत दुःखिता =संजातदुःखा, अस्मि।

राजेति। किमर्थं=केन कारणेनेति भावः। अलङ्कृता=भूषिता।

वासवदत्तेति। इतः=अस्मात्, विरहदुःखादिति भावः। परम्=अनन्तरं, किं=किमर्थमलङ्कारधारणमिति भावः।

राजेति। विरचिकां=तन्नाम्नीं दासीं, कदाचिद्राज्ञो भोगिनीस्थानीया-

---

निर्गतं फलं यस्मात्सः (बहु०)। तोषयामि=तुष + णिच् + लट् + मिप्।

राजा—प्रियशिष्ये = प्रिया चाऽसौ शिष्या, तत्सम्बुद्धौ (क० धा०)।

वासवदत्ता—आलपामि = आङ् + लप + मिप्। "स्यादाभाषणमालापः" इत्यमरः।

राजा—विरचिकाम्=विरचिका नामकी एक दासी थी, जिसपर एकबार

तक कुछ समयतक बैठकर अपने नेत्र और हृदयको सन्तुष्ट करती हूँ।

राजा—हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये! मुझे उत्तर दो।

वासवदत्ता—भद्र! बोलती हूँ बोलती हूँ।

राजा—क्या तुम क्रुद्ध हो?

वासवदत्ता—नहीं नहीं, दुःखित हूँ।

राजा—क्रुद्ध नहीं हो तो क्यों अलङ्कार नहीं पहनी हुई हो?

वासवदत्ता—इस (दुःख) से दूसरा क्या कारण है?

राजा—क्या विरचिका (दासी) को स्मरण करती हो?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि विरचिआ ? [आ अपेहि इहापि विरचिका ?]

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि । (हस्तौ प्रसारयति ।)

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि । को वि मं पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्याप-लम्बिअं अय्यउत्तस्य हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता) । [चिरं स्थितास्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रल-म्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय ओरोप्य गमिष्यामि ।

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ । हा ! धिक् ।

मिति भावः ।

वासवदत्तेति । आ=कोपद्योतकमव्ययम् । अपेहि=अपगच्छ ।

राजेति । विरचिकार्थं=विरचिकाख्य दास्यर्थम् इति भावः । प्रसादयामि=प्रसन्नां करोमि । हस्तौ प्रसारयति=अञ्जलिं बध्नातीति भावः ।

वासवदत्तेति । चिरं = बहुकालपर्यन्तम् । पश्येत् = विलोकयेत् । तत्=तस्मात्कारणात् । शय्याप्रलम्बितं=शयनावस्रस्तं, शयनीये=शय्यायाम्, आरोप्य=स्थापयित्वा ।

राजा आसक्त हुए थे, यह बात बृहत्कथामञ्जरीमें है ।

वासवदत्ता—अपेहि=अप+इण्+लोट्+सिप् ।

राजा—विरचिकाऽर्थं=विरचिकायै इदम् यथा तथा (च० त०) । यह प्रसादन क्रियाका विशेषण है । विरचिकाके लिए तुमसे मिन्नत करता हूँ यह तात्पर्य है । प्रसारयति=प्र+सृ+णिच्+लट्+मिप् ।

वासवदत्ता—पश्येत्=दृश्+लिङ्+तिप् । सम्भावनामें लिङ् । शय्याप्रल-म्बितं=शय्यायां प्रलम्बितस्तम् (स० त०) । आरोप्य=आङ्+रुह+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) ।

राजा—तिष्ठ तिष्ठ=सम्भ्रम (घबड़ाहट) में द्विरुक्ति है ।

वासवदत्ता—(क्रोधके साथ) ओह ! हटिए, यहाँ भी विरचिका ?

राजा—इस लिए विरचिकाके लिए तुम्हें मनाता हूँ । (दोनों हाथ फैलाते हैं ।)

वासवदत्ता—मैं बहुत समय तक ठहरी हूँ । कोई मुझे देख लेगा । इसलिए जाती हूँ । अथवा शय्यासे लटके हुए आर्यपुत्रके हाथको शय्यामें रखकर जाऊँगी (वैसा ही कर निकलती है ।)

राजा—(एकाएक उठकर) वासवदत्ते ! ठहरो ठहरो । हाय ! धिक्कार है ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥ ७ ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ! चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

अन्वयः—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः, ततः अयं मनोरथो भूताऽर्थः (वा) इति व्यक्तं न जानामि ॥ ७ ॥

निष्क्रामन्निति । सम्भ्रमेण=त्वरया, निष्क्रामन्=निर्गच्छन्, समुद्रगृहप्रकोष्ठादिति शेषः । अहं, द्वारपक्षेण=प्रतीहारपार्श्वभागेन, ताडितः=आहतः, अस्मीति शेषः । ततः=तस्मात्कारणात्, अयं वासवदत्तायाः स्पर्शः । भूताऽर्थः=सत्यरूपः, (अथवा) मनोरथः=अभिलाषः (एव) इति, व्यक्तं=स्पष्टं, न जानामि=नो वेद्मि । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ७ ॥

विदूषक इति । प्रतिबुद्धः=जागरितः ।

राजेति । प्रियम्=अभीष्टम्; आवेदये=ज्ञापयामि । धरते=अवतिष्ठते ।

विदूषक इति । अविहा=विषादार्थकमव्ययम् । उपरता=मृता ।

निष्क्रामन्निति । सम्भ्रमेण="सम्भ्रमस्त्वरा ।" इत्यमरः । भूतार्थः=भूतश्चाऽसौ अर्थः (क० धा०) । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ७ ॥

विदूषकः—प्रतिबुद्धः = प्रति+बुध्+क्तः । उपरता = उप + रम्+क्त+टाप् ।

मैं घबड़ाहटसे निकलता हुआ द्वारके पार्श्वभागसे ठोकर खा गया हूँ । इस कारणसे यह वासवदत्ताका स्पर्श सचमुच है वा कोरा मनोरथ है यह स्पष्टरूपसे नहीं जानता हूँ ॥ ७ ॥

विदूषक—(प्रवेश कर) अरे ! आप जाग गये ।

राजा—मित्र ! मैं आपको प्रीतिका विषय जताता हूँ, वासवदत्ता मौजूद है (जीती है) ।

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ? वासवदत्ता कहाँ है ? बहुत दिन हुए वासवदत्ता मर गई है ।

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥ ८ ॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण । आ उदअह्णाणसङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे । [अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न । आ ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।]

अन्वयः—हे सखे ! (वासवदत्ता) शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता । "दग्धा" इति ब्रुवता रुमण्वता पूर्वं वञ्चितः अस्मि ॥ ८ ॥

शय्यायामिति । हे सखे=हे मित्र !, शय्यायां=शयनीये, अवसुप्तं=निद्राणं, मां, बोधयित्वा=जागरयित्वा, गता=याता, वासवदत्तेति शेषः, दग्धा=भस्मीकृता, वासवदत्तेति शेषः । इति=इत्थं, ब्रुवता=वदता, रुमण्वता=तदाख्यमन्त्रिणा, पूर्वं=प्रथमं, वञ्चितः=प्रतारितः, अस्मि=अभूवमिति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

विदूषक इति । एतत्=वासवदत्तादर्शनम् । असम्भावनीयं न=असम्भाव्यं न, सम्भाव्यमेवेति भावः । उदकस्नानसंकीर्तनेन=जलमज्जनचर्चाकरणेन । तत्रभवतीं=माननीयां, वासवदत्तामिति भावः । चिन्तयता=ध्यायता, भवतेति शेषः । सा=वासवदत्ता ।

शय्यायामिति । अवसुप्तम्=अव+स्वप्+क्तः । बोधयित्वा=बुध+णिच्+क्त्वा । दग्धा=दह्+क्त+टाप् ।

विदूषकः—असम्भावनीयं=सम्भावयितुं योग्यं सम्भावनीयम् । सं+भू+णिच्+अनीयर् । न सम्भावनीयम् (नञ्त०) । उदकस्नानसंकीर्तनेन=उदकेन स्नान्ति येषु ते उदकस्नानानि, सरांसीत्यर्थः, उदक+ष्णा+ल्युट् (अधिकरणमें) । तेषां कीर्तनं, तेन (ष० त०) । चिन्तयता=चिन्तयतीति चिन्तयन्, तेन, चिन्त+णिच्+लट्+शतृ+टा । स्वप्ने+स्वप्+नन्+ङि ।

राजा—मित्र ! ऐसा नहीं, नहीं ।

हे मित्र ! वासवदत्ता शय्यामें सोये हुए मुझे जगाकर चली गई । (वासवदत्ता) जल गई ऐसा कहते हुए रुमण्वान् नामके मन्त्रीसे पहले मैं ठगा गया हूँ ॥ ८ ॥

विदूषक—हाय ! यह अनहोनी बात नहीं है । जलस्नानकी चर्चा करनेसे और वासवदत्ताकी याद करते हुए आपने उन्हें स्वप्नमें देखा होगा ।

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद्, विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! वअस्स ! एदस्सिं णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे । [भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।]

राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥ १० ॥

राजेति । एवम्=इत्थम् ।

अन्वयः—तावत् अयं स्वप्नो यदि ? अप्रतिबोधन धन्यम् । अथवा अयं विभ्रमः स्यात्, चिरं मे विभ्रमः अस्तु हि ॥ ९ ॥

यदीति । तावत्=वाक्यालङ्कारे, अयं=वासवदत्तादर्शनव्यापारः, स्वप्नो यदि स्वापश्चेत्, तर्हि अप्रतिबोधनं=जागरणाऽभावः, धन्यं=पुण्यवत्, अथवा=पक्षान्तरे, अयं=वासवदत्तादर्शनव्यापारः, विभ्रमः=भ्रान्तिः, स्यात्=भवेत्, तर्हि, चिरं=बहुकालं यावत्, मे=मम, विभ्रमः=भ्रान्तिः, वासवदत्तादर्शनहेतुभूतेति शेषः । अस्तु=भवेत्, हि=निश्चयेन । स्वप्नाद् भ्रान्तेर्वा वासवदत्तादर्शनं भवेच्चेदह धन्यो भवेयमिति भावः ॥ ९ ॥

विदूषक इति । यक्षिणी=यक्षपत्नी ।

राजेति । न न=यक्षिणीति त्वया यदुक्तं, तन्नेति भावः ।

अन्वयः—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः

यदीति । अप्रतिबोधनं=न प्रतिबोधनम् (नञ्-तत्पु०) । धन्यं=धन+यत् ॥९॥

विदूषकः—यक्षी=यक्ष+ङीप् ।

स्वप्नस्येति । चारित्रं=चरित्रमेव, चरित्र+अण् (स्वार्थमें) । रक्षन्त्या=

राजा—ऐसा ! मैंने स्वप्न देखा ?

यह स्वप्न है तो, न जागना ही भाग्यकी बात है । अथवा यह भ्रान्ति है तो बहुत समयतक मुझे भ्रान्ति ही होती रहे ॥ ९ ॥

विदूषक—हे मित्र ! इस नगरमें अवन्तिसुन्दरी नामकी यक्षी निवास करती है, उसे आपने देखा होगा ।

राजा—नहीं नहीं ।

स्वप्नके अन्तमें जगे हुए मैंने चरित्रकी भी रक्षा करती हुई वासवदत्ताके नेत्रोंमें अञ्जन

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

(वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताऽञ्जनं दीर्घालकं मुखं दृष्टम् ॥ १० ॥

स्वप्नस्येति । स्वप्नस्य=स्वापस्य, अन्ते=अवसाने, विबुद्धेन=जागरितेन, मयेति शेषः । चरित्रम् अपि=सद्वृत्तम् अपि, जीवनेन सहेति शेषः । रक्षन्त्याः= पालयन्त्याः, वासवदत्ताया इति शेषः । नेत्रविप्रोषिताऽञ्जनं=नयनाऽपगतकज्जलं, दीर्घालकम्=आयतचूर्णकुन्तलं, प्रोषितभर्तृकानियमपरिपालनेनेति भावः । मुखम्= आननं, दृष्टम्=अवलोकितम् । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—संत्रस्तया तया देव्या यः अयं बाहुः निपीडितः । स्वप्ने उत्पन्न-संस्पर्शः (सन्) अपि रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

योऽयमिति । संत्रस्तया=अतिशयभीतया, तया, देव्या=कृताऽभिषेकया, वासवदत्तया इति भावः । यः, अयम्=एषः, बाहुः=भुजः, मदीय इति शेषः । निपीडितः=आत्मकरेण गृहीतः, शयनीय आरोपित इति भावः । तेन कारणेन, स्वप्ने=निद्रायाम्, उत्पन्नसंस्पर्शः = जाताऽमर्शनः सन्, अपि रोमहर्षं = रोमाञ्चं, सात्त्विकं भावमिति भावः, न मुञ्चति=न त्यजति, देव्या वासवदत्तायाः करस्प-

---

रक्षतीति रक्षन्ती, तस्याः, रक्ष+लट् (शतृ)+ङीप्+ङस् । नेत्रविप्रो-षिताऽञ्जनं = विप्रोषितम् अञ्जनं यस्मिस्तत् विप्रोषिताऽञ्जनम् (बहु०) । नेत्रयोः विप्रोषिताऽञ्जनम् (स० त०) । दीर्घाऽलकं = दीर्घा अलका यस्मिस्तत् (बहु०), ये दोनों पद "मुखम्" इसके विशेषण हैं । "क्रीडां शरीरसंस्कारं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ।" महर्षि याज्ञवल्क्यकी इस उक्तिके अनुसार राजा उदयनके विरहमें वासवदत्ताने नेत्रोंमें कज्जल नहीं लगाया और केश-संस्कारके न करनेसे लम्बे अलकोंको धारण किया है यह समझना चाहिए ॥ १० ॥

योऽयमिति । संत्रस्तया=सं+त्रस्+क्त+टाप्+टा । उत्पन्नसंस्पर्शः=उत्पन्नः संस्पर्शो यस्य सः (बहु०) । रोमहर्षं=रोम्णां हर्षः, तम् (ष० त०) ॥११॥

(कज्जल) से रहित अलकोंवाले मुखको देखा ॥ १० ॥

और भी मित्र ! देखो देखो ।

अत्यन्त डरती हुई देवी (वासवदत्ता) ने जो मेरा यह हाथ पकड़ा, स्वप्नमें स्पर्श होनेपर भी (अभीतक=जागरित अवस्थामें भी) रोमाञ्चित हो रहा है ॥ ११ ॥

९ स्व०

विदूषकः—मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ। एदु एदु भवं। चउस्सालं-पविसामो। [मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्। चतुःशालं प्रविशामः।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः। अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्।

र्शनाऽधुनापि मम बाहौ रोमाञ्चो वर्तत एनेति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ११ ॥

विदूषक इति। अनर्थम् = असंभाव्यं विषयं, चिन्तयित्वा = ध्यात्वा। मा= विषण्णो नो भवत्विति भावः। चतुःशालं = शालाचतुष्टयोपेत गृहविशेषं, प्रवि-शामः = प्रवेशं कुर्मः।

काञ्चुकीय इति। आर्यपुत्रः = माननीय इति भावः। जयतु = उत्कर्षाऽति-शयेन वर्तताम्। अमात्यः=मन्त्री, बलसमुदायेन = सैन्यसमूहेन, आरुणिः=तन्नामकं भवच्छत्रुम्, अभिघातयितुं=व्यापादयितुम्, उपयातः = उपगतः। मामकानि= मदीयानि, हस्त्यश्वरथपदातीनि = करिहयस्यन्दनपत्तीनि, विजयाऽङ्गानि = जय-

---

विदूषकः—चतुःशालं = चतस्रः अन्योन्याऽभिमुखाः शाला यस्मिस्तत् (बहु०)। "सञ्जवनं त्विदम्। चतुःशालम्।" इत्यमरः।

काञ्चुकीयः—अमात्यः = अमा (सह) समीपे वा भवः, "अव्ययात्त्यप्" इस सूत्रसे "अमेहक्वतसित्रेभ्य एव" इस वार्तिकके नियमके अनुसार "अमा" शब्दसे त्यप् प्रत्यय। "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः" इत्यमरः। बलसमुदायेन = बलानां समुदायः, तेन (ष० त०)। अभिघातयितुम् = अभि + हन् + णिच् + तुमुन्। मामकानि=मम इमानि, अस्मद् शब्दसे अण् प्रत्यय और "तवकममका-वेकवचने" इस सूत्रसे "ममक" आदेश। "हस्त्यश्वरथपदातीनि = हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च हस्त्यश्वरथं, "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इस सूत्रसे सेनाङ्ग

विदूषक—इस समय आप असम्भाव्य विषयकी चिन्ता करके विषण्ण मत हों। आप आइए आइए। चार शालाओंसे युक्त गृहमें प्रवेश करें।

(प्रवेश कर)

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र (महाराज) की जय हो। हमलोगों के महाराज दर्शकने आपको कहा है—आपके मन्त्री ये रुमण्वान बड़े सेनासमूहके साथ आरुणिको मारनेके लिए

अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा, वत्साश्च हस्ते तव ॥ १२ ॥

साधनानि, सन्नद्धानि=उद्यतानि, सन्तीति शेषः ।

अन्वयः—(हे राजन् !) ते रिपवो भिन्नाः । भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः । या पार्ष्णी, तस्या अपि भवत्प्रयाणसमये विधानं कृतम् । अरिप्रमाथजननं यद् यत् साध्यं, तत् तत् मया अनुष्ठितम् । बलैः त्रिपथगा नदी अपि तीर्णा च । वत्साश्च तव हस्ते (सन्ति) ॥ १२ ॥

भिन्ना इति । (हे राजन्=हे भूपाल !), ते=तव, रिपवः=शत्रवः, भिन्नाः=भेदप्राप्ताः, नानाविधैरुपायैरिति शेषः । भवद्गुणरताः=त्वद्दयादाक्षिण्याद्यनुरक्ताः, पौराः=नागरिकाः, समाश्वासिताः=अल्पकालादेव विजयलक्ष्म्यलङ्कृतो वत्सराज आगमिष्यती"ति आश्वासनं प्रापिताः । या पार्ष्णी=सैन्यपृष्ठं, तस्या अपि, भवत्प्रयाणसमये=त्वद्विजययात्राकाले, विधानं=रचनं, कृतं=विहितम् । अरिप्रमाथ-

---

होनेसे समाहारमें द्वन्द्व । हस्त्यश्वरथयुक्ताः पदातयो येषु तानि (बहु०), यह "विजयाऽङ्गानि" इस पदका विशेषण है । विजयाऽङ्गानि=विजयस्य अङ्गानि (उपकरणानि) (ष० त०) । सन्नद्धानि=सं+नह+क्तः ।

भिन्ना इति । रिपवः="रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः ।" इत्यमरः । भिन्नाः=भिद्+क्तः । भवद्गुणरताः=भवतो गुणाः (ष० त०), तेषु रताः (स० त०) । पौराः=पुरि भवाः, "पुर्" शब्दसे "तत्र भवः" इस सूत्रसे अण् प्रत्ययः । समाश्वासिताः = सम्+आङ्+श्वस्+णिच्+क्तः । पार्ष्णी="पार्ष्णिः स्त्रीपुंसयोः पादमूले स्याद् ध्वजिनीकटौ ।" इति रन्तिदेवः । "कृदिकारादक्तिनः" इस सूत्रसे "पार्ष्णि" शब्द इकारान्त और ईकारान्त भी है । भव-

---

आये हुए हैं । उसी प्रकार मेरी विजयके अङ्गभूत हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैन्य भी (लड़नेके लिए) तैयार हैं । इस कारणसे आप उठिए । और भी—

आपके शत्रुओंमें भेद कर दिया गया है । आपके गुणोंमें अनुरक्त नागरिकोंको समाश्वासन दिया गया है । आपके आक्रमणके समयमें जो सेनाका पृष्ठ भाग है उसका भी विधान

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ १३ ॥

जननं=शत्रुनाशोत्पादकं, यत् यत्, साध्यं=साधनीयं, तत् तत्, मया=दर्शकेन, अनुष्ठितं=सम्पादितम् । बलैः=सैन्यैः, त्रिपथगा=त्रिमार्गगा, स्वर्गमर्त्यपातालगामिनी, गङ्गेति भावः, नदी=सरित्, अपि, तीर्णा च=तरणविषयीकृता च । इत्थं, वत्साश्च = वत्सदेशाश्च, तव=भवतः, हस्ते=करे, सन्तीति शेषः, पुनरपि वत्सदेशा भवदायत्ताः संवृत्ता इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महाऽर्णवाभे युधि उपेत्य दारुणकर्मदक्ष तम् आरुणिं नाशयामि ॥ १३ ॥

उपेत्येति । नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे=गजेन्द्रतुरङ्गतरणाऽऽधारे, विकीर्णबाणोग्रतरङ्ग-

---

त्प्रयाणसमये=भवतः प्रयाणं (ष० त०) तस्य समयस्तस्मिन् (ष० त०) । अरिप्रमाथजननं = अरीणां प्रमाथः (ष० त०) । जनयतीति जननम्, "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे "कृत्यल्युटो बहुलम्" इस सूत्रमें बहुल-ग्रहण करनेके सामर्थ्यसे कर्ताके अर्थमें ल्युट् (अन) प्रत्यय । अरिप्रमाथस्य जननम् (ष० त०) । अनुष्ठितम्=अनु + स्था + क्तः । त्रिपथा = त्रयाणां पथां समाहारः त्रिपथं, "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" इस सूत्रसे समास और "संख्यापूर्वो द्विगुः" इससे उसकी द्विगुसंज्ञा "ऋक्पूरब्धूः प्रथामानक्षे" इससे समासान्त अप्रत्यय होकर "स नपुसंकम्" इस सूत्रसे नपुसंकलिङ्गता हुई है । त्रिपथेन गच्छतीति त्रिपथगा (उपपदसमास), डप्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् । "भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि ।" इत्यमरः । "त्रिपथगा नदी" कहनेसे स्वंग, मर्त्य और पाताल तीन मार्गोंसे जानेवाली नदी, गङ्गा विवक्षित है । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १२ ॥

उपेत्येति । नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे=नागानाम् इन्द्रा नागेन्द्राः (ष० त०) ।

किया गया है । शत्रुओंको नाश करने वाला जो-जो साधनीय विषय है वह सब मैंने तैयार किया है । सेनाओंने गङ्गानदीको पार कर लिया है । अब वत्स देश आपके हाथ में है ॥१२॥

राजा—(उठकर) अच्छी बात है । यह (मैं) अभी—

हाथी और घोड़ोंसे पार किये गये और बिखरे हुए बाणरूप भयङ्कर तरङ्गोंसे भययुक्त

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

पञ्चमोऽङ्कः ।

—:※:—

भङ्गे=विक्षिप्तशरभयङ्करोर्मिकौटिल्ययुक्ते, महार्णवाभे=महासागरसदृशे, युधि=युद्धे, उपेत्य=संप्राप्य, दारुणकर्मदक्षं=भीषणक्रियानिपुणं, तं=पूर्वोक्तम्, आरुणिं=तन्नामकं, क्षत्रियं, नाशयामि=हन्मि ॥ ९३ ॥

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

—:※:—

"मतङ्गजो गजो नागः" इत्यमरः। नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्च नागेन्द्रतुरङ्गम्। सेनाङ्ग होनेसे समाहारद्वन्द्व। नागेन्द्रतुरङ्गेण तीर्णः तस्मिन् (तृ० त०)। विकीर्ण-बाणोग्रतरङ्गभङ्गे=विकीर्णाश्च ते बाणा विकीर्णबाणाः (क० धा०)। उग्राश्च ते तरङ्गाः उग्रतरङ्गाः (क० धा०)। विकीर्णबाणा एव उग्रतरङ्गाः (रूपक०), तैः भङ्गः (भयम्) यस्मिन्, तस्मिन् (व्यधिकरणबहु०), "भङ्गस्तरङ्गे भेदे च रुग्विशेषे पराजये। कौटिल्ये भय-विच्छित्योः" इति हैमः। महार्णवाऽऽभे=महांश्चाऽसौ अर्णवः (क० धा०) तस्य इव आभा (कान्तिः) यस्य, तस्मिन् (व्यधिकरणबहु०)। युधि=योधनं युत्, तस्याम् "युध संप्रहारे" इस धातुसे "संपदादिभ्यच्" इस सूत्रसे क्विप् प्रत्यय। "समुदायः स्त्रियः संयत्समित्याजिसमिद्युधः।" इत्यमरः। "युध्" शब्द स्त्रीलिङ्गमें है, परन्तु नाटककार भास कविने यहाँपर उसे पुंलिङ्गमें प्रयोग किया है, इसलिए व्याकरणलक्षण-हीन होनेसे "च्युतसंस्कृति" नामक दोष हुआ है। दारुणकर्मदक्षं=दारुणं च तत् कर्म (क० धा०), तस्मिन् दक्षः, तम् (स० त०)। नाशयामि=नश्+णिच्+लट्+मिप्। यहाँ रूपक और उपमाकी संसृष्टि है। उपेन्द्रवज्रा छन्द है ॥ १३ ॥

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

—:※:—

महान् समुद्रके समान युद्धमें भयङ्कर कर्ममें निपुण उस आरुणि नामके शत्रुको मारता हूँ ॥ १३ ॥

(सब निकलते हैं।)

इति पञ्चम अङ्क ।



अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय —एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या

काञ्चुकीय इति । कः=जनः, काञ्चनतोरणद्वारं=सुवर्णमयवहिर्द्वारम्, अशून्यम्=अतिरिक्तम्, सनाथमिति भावः ।

किं क्रियतां=किं विधीयताम् ।

काञ्चुकीय इति । भवति=शोभमाने !, वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय=वत्सराष्ट्रप्राप्तिसमृद्धोत्कर्षाय, निवेद्यतां=विज्ञाप्यताम् । महासेनस्य=उज्जयिनीपतेः,

---

काञ्चुकीयः—काञ्चनतोरणद्वारं=तोरणं च तद्द्वारम् (क० धा०), 'तोरणोऽस्त्री वहिर्द्वारम्" इत्यमरः । यहाँपर तोरण शब्दसे ही वहिर्द्वारकी प्रतीति होतीहै, तव फिर द्वार शब्दका प्रयोग कैसे ? ऐसी शङ्का होती है, इसका समाधान तोरण शब्दसे दूसरे पदार्थकी प्रतीति हटाने के लिए द्वार शब्दका प्रयोग किया गया है । काञ्चनं च तत्तोरणद्वारम् (क० धा०) ।

काञ्चुकीयः—निवेद्यतां निवेद्यताम् = संभ्रममें द्विरुक्ति । वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय=वत्सानां राज्यम् (ष० त०), तस्य लाभः (ष० त०) । प्रवृद्ध उदयो यस्य सः, (वहु०) वत्सराज्यलाभेन प्रवृद्धोदयः, तस्मै (तृ० त०) । रैभ्यसगोत्रः=समानं गोत्रं यस्य सः सगोत्रः (वहु०), यहाँपर "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूप-

---

(तव काञ्चुकीय प्रवेश करता है ।)

काञ्चुकीय—अरे ! यहाँ कौन सुनहले वाहरी द्वारको अपनी उपस्थितिसे संपन्न बना रहा है ?

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी (द्वारपालिका)—आर्य ! मैं विजया हूँ क्या करूँ ?

काञ्चुकीय—भद्रे ! वत्सराज्यकी प्राप्तिसे उदयसे. समृद्ध उदयनको निवेदन करो निवेदन करो—महासेनके पाससे ये रैभ्यगोत्रवाले ये काञ्चुकीय और माननीय महारानी

चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति।

प्रतीहारी—अय्य! अदेशकालो पडिहारस्स। [आर्य। अदेशकालः प्रतीहारस्य।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो। अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा। तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति। [शृणोत्वार्यः। अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता। तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द ईव श्रूयत इति।]

सकाशात्=समीपात्, रैभ्यसगोत्रः=रैभ्यगोत्रोत्पन्नः, प्राप्तः=समायातः, तत्र-भवत्या=माननीयया, अङ्गारवत्या=प्रद्योतनृपपत्न्या, प्रेषिता=प्रहिता, वासवदत्ताधात्री=वासवदत्तोपमाता, प्रतीहारभूमिं=द्वारभुवम्, उपस्थितौ=सन्निहितौ।

प्रतीहारीति। प्रतीहारस्य=द्वारपालस्य। अदेशकालः=देशरहितः कालरहितश्च, अवसर इति शेषः। द्वारपालोऽस्मिन्नवसरे राजस्थिते देशे गन्तुं न शक्नोतीति भावः। सूर्यामुखप्रासादगतेन=पद्मावतीमुख्यभवनप्राप्तेन, केनाऽपि=

स्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु" इस सूत्रसे समानके स्थानसे "स" आदेश हुआ है। रैभ्यस्य सगोत्रः (ष० त०) रैभ्य गोत्रवाला, यह "काञ्चुकीय" इसका विशेषण है। अथवा "गोत्रं नाम्न्यचले कुले" इस कोशके अनुसार "रैभ्य" नामवाला ऐसा भी अर्थ हो सकता है। वासवदत्ताधात्री=वासवदत्ताया धात्री (ष० त०), "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु।" इत्यमरः।

प्रतीहारी—अदेशकालः=देशश्च कालश्च देशकालौ (द्वन्द्व०) अविद्यमानौ, देशकालौ यस्य सः (नञ्बहु०)। यहाँपर "अदेशकालः" इसका विशेष्य "अवसरः" यह पद ऊह्य है। राजाके समीप जानेके लिए देश और कालका उपयुक्त अवसर नहीं है यह तात्पर्य है। सूर्यामुखप्रासादगतेन=सूर्यामुखं चाऽसौ प्रासादः (क०

अङ्गारवतीसे भेजी गई आर्या वसुन्धरा नामकी वासवदत्ताकी धाय द्वारमें उपस्थित है।

प्रतीहारी—आर्य! इस समय द्वारपालके जानेके लिए अनुकूल न देश है न काल ही है।

काञ्चुकीय—कैसे जानेके लिए देश और काल अनुकूल नहीं है?

प्रतीहारी—आर्य! सुनिए। आज महाराजके सूर्यामुख प्रासादमें जानेपर किसी पुरुषने बीन बजाई। उसे सुनकर महाराजने कहा—घोषवती नामक बीनके समान शब्द सुना जा रहा है।

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो–कुदो इमाए वीणाए आगमो त्ति। तेण भणिअं—अह्मेहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा। जइ प्पओअण इमाए, उवणीअदु भट्टिणो त्ति। तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा। तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं–दिट्ठासि घोसवदि ! सा हु ण दिस्सदि त्ति। अय्य ! ईदिसो अणवसरो। कहं णिवेदेमि ? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः–कुतोऽस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्–अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्म-लग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति। तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता। ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्–

अविज्ञातजनेन, वीणा=वल्लकी, वादिता=ताडिता। घोषवत्या=घोषवतीनाम्न्या वीणायाः।

प्रतीहारीति। ततः=तदनन्तरं, पृष्टः=अनुयुक्तः। कुतः=कस्मात्पुरुषात् स्थानाद्वा, आगमः=प्राप्तिः। भणितम्=उक्तम्। नर्मदातीरे=रेवातटे। कूर्चगुल्म-लग्ना=दर्भस्तम्बसम्बद्धा, वीणेति शेषः, अनया=वीणया। प्रयोजनं यदि=कार्यं चेत्। भर्त्रे=स्वामिने, उपनीयतां=समर्प्यताम्। अङ्के=उत्सङ्गे, मोहं= मूर्च्छाम्। ततः=अनन्तरं, मोहप्रत्यागतेन=मूर्च्छानिवृत्तेन, प्राप्तचैतन्येनेति भावः। बाष्पपर्याकुलेन=नयनजलव्याकुलेन, मुखेन=आननेन, उपलक्षितेनेति शेषः।

धा०)। "सूर्यामुखप्रासादः" इसका अर्थ हुआ, सूर्यामुखनामक राजाका प्रासाद। सूर्यामुखप्रासादं गतः, तेन (द्वि० त०)। वादिता=वद+णिच्+क्त+टाप्।

प्रतीहारी—कुतः=कस्मात् (जनात् स्थानाद्वा), किम्+तसिल्। कूर्चगुल्म-लग्ना=कूर्चानां गुल्मः (ष० त०) तस्मिन् लग्ना (स० त०)। उपनीयतां= उप+नी+लोट् (कर्मणि)+त। "मया" यह शेष अर्थ है, मुझसे यह बीन सौंपी जाय, यह इसका तात्पर्य है। अङ्के="उत्सङ्ग-चिह्नयोरङ्कः" इत्यमरः। मोहप्रत्यागतेन=मोहात्प्रत्यागतः, तेन (प० त०)। बाष्पपर्याकुलेन=बाष्पेण

काञ्चुकीय—तब तब ?

प्रतीहारी—तब वहाँ जाकर महाराजने पूछा—तुम्हें कैसे इस बीनकी प्राप्ति हुई ? उसने कहा—मैंने नर्मदाके किनारे कुशोंकी झाड़ीमें लगी हुई इस बीनको देखा। महाराजको इससे प्रयोजन हो तो, सौंपी जाय। समर्पित उस बीनको गोदमें रखकर महाराज मूर्च्छित हुए। तब होशमें आकर आँसूसे आकुल मुखवाले महाराजने कहा--हे घोषवति ! तू देखी

दृष्टासि घोषवति ! सा खलु नं दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः । कथं निवेदयाम्मि ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यताम् । इदमपि तदाश्रयमेव ।

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पसादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं ! [आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।]

काञ्चुकीयः—भवति । तथा ।

(उभौ निष्क्रान्तौ ।)

मिश्रविष्कम्भकः ।

भर्त्रा=स्वामिना, राज्ञा इत्यर्थः । सा=वासवदत्ता । ईदृशः=एतादृशः, अनवसरः=प्रसङ्गाऽभावः, कथं=केन प्रकारेण, निवेदयामि=ज्ञापयामि ।

काञ्चुकीय इति । निवेद्यतां=विज्ञाप्यताम् । इदम्=निवेदनम्, तदाश्रयं=वासवदत्ताविषयम् ।

प्रतीहारीति । इयम्=एषा, अहम् । निवेदयापि=विज्ञापयामि । अवतरति=अवरोहति । निवेदयिष्यामि=विज्ञापयिष्यामि ।

मिश्रविष्कम्भकः ।

पर्याकुलं, तेन (तृ० त०) । मुखेन=उपलक्षणमें तृतीया । निवेदयामि=नि+विद्+णिच्+लट्+मिप् ।

काञ्चुकीयः—तदाश्रयम्=सा (वासवदत्ता) आश्रयो यस्य तत् (बहु०) ।

प्रतीहारी—अवतरति=अव+तृ+लट्+तिप् । मिश्रविष्कम्भकः=मिश्रश्चाऽसौ विष्कम्भकः (क० धा०), भूत (व्यतीत) और भविष्यत् (होनेवाले)

गई, पर वे (वासवदत्ता) नहीं देखी जा रही है । आर्य ! इस प्रकार जानेका (उचित) अवसर नहीं है । कैसे निवेदन करूँ ?

काञ्चुकीय—भद्रे ! निवेदन करो । यह (निवेदन) भी वासवदत्तासे सम्बन्ध रखता ही है ।

प्रतीहारी—आर्य । यह मैं निवेदन करती हूँ । ये महाराज सूर्यामुखप्रासादसे उतर रहे हैं । इसलिए यहींपर निवेदन करूँगी ।

काञ्चुकीय—भद्रे ! ऐसा ही करो ।

(दोनों जाते हैं ।)

मिश्रविष्कम्भक ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता (सती) (सम्प्रति) कथं नु विहगगणरजोविकीर्णदण्डा (सती) प्रतिभयम् अरण्यवासम् अध्युषिता असि ।

श्रुतसुखेत्यादि । हे श्रुतिसुखनिनदे=कर्णानन्दशब्दयुक्ते, वीणे इति शेषः । देव्याः=वासवदत्तायाः । स्तनयुगले=पयोधरयुग्मे, जघनस्थले च=कटिपुरोभागस्थाने च, सुप्ता=शयिता सती, पूर्वमिति शेषः । सम्प्रति कथं नु=केन प्रकारेण नु, विहगगणरजोविकीर्णदण्डा=पक्षिसमूहधूलिव्याप्तप्रवाला (सती), प्रतिभय=भयङ्करम्, अरण्यवासं=वननिवासम्, अध्युषिता=स्थिता, असि=वर्तसे ॥२॥

चरित्रका निदर्शन विष्कम्भकमें होता है। यहाँपर महाराज उदयनके फिर राज्यकी प्राप्ति भूत (व्यतीत) चरित्र और उन्हें रैभ्य और वसुन्धरासे निवेदन किये जानेवाले वृत्तान्तका प्रतीहारी (नीच) और काञ्चुकीय (मध्यम) पात्रसे निदर्शन होनेसे यह मिश्रविष्कम्भक वा संकीर्ण विष्कम्भक है । उसका लक्षण है—"स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।"

श्रुतीति । श्रुतिसुखनिनदे=श्रुत्योः सुखः (स० त०), श्रुतिसुखो निनदो यस्याः सा श्रुतिसुखनिनदा, तत्सम्बुद्धौ (बहु०) । "शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः ।" इत्यमरः । स्तनयुगले=स्तनयोर्युगलं, तस्मिन् (ष० त०) । जघनस्थले=जघनस्य स्थलं, तस्मिन् (ष० त०) । विहगगणरजोविकीर्णदण्डा=विहगानां गणः (ष० त०), तस्य रजांसि (ष० त०) । विकीर्णो दण्डो यस्याः सा (बहु०) । विहगगणरजोभिः विकीर्णदण्डा (तृ० त०) । प्रतिभयं= "भयङ्करं प्रतिभयम्" इत्यमरः । अरण्यवासम्=उष्यते यस्मिन्निति वासः, "वस निवासे" धातुसे "हलश्च" इस सूत्रसे अधिकरणमें घञ् । अरण्यम् एव वासः, तम्

(तब राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं ।)

राजा—कानोंको सुख देनेवाले शब्दोंसे सम्पन्न हे वीणे ! (पहले तू) महारानी वासवदत्ताके स्तनोंमें और जघन (कटिपुरोभाग) में सोनेवाली होकर अभी पक्षियोंसे उड़ाई गई धूलोंसे व्याप्त दण्ड (डांड़) वाली हो कैसे भयङ्कर वनवासको प्राप्त हुई ? ॥ १ ॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥१॥

अपि चेति । अपि च=अन्यच्च । अस्निग्धा=स्नेहरहिता । तपस्विन्याः=शोच्यायाः वासवदत्ताया इति शेषः ।

अन्वयः—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि, विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि च (न स्मरसि) ॥ २ ॥

श्रोणीति । (या त्वं, तपस्विन्याः) श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि=कटिधारणकक्षाऽधोभागसंपीडनानि, खेदस्तनान्तरसुखानि=खेदे (प्रयासे सति) स्तनान्तरसुखानि (कुचमध्यानन्दकराणि), विरहे=वियोगे, माम्=उदयनम्, उद्दिश्य=अनूद्य, परिदेवितानि=विलपितानि, एवं च वाद्यान्तरेषु=वीणावाद-

---

(रूपक०), अधिपूर्वक वस धातुके योगमें "उपान्वध्याङ्वसः" इस सूत्रसे आधारकी कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया। यहाँपर पुष्पिताग्रा नामक अर्धसम वृत्त है। उसका लक्षण है—

"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" ॥ १ ॥

अपि चेति । तपस्विन्याः=तपः अस्या अस्तीति तपस्विनी, तस्याः, तपस्–शब्दसे "तपःसहस्राभ्यां विनीनी" इस सूत्रसे विनिप्रत्यय होकर तदन्त 'तपस्विन्'–शब्दसे स्त्रीत्वविवक्षामें 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय ।

श्रोणीति । श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि=श्रोण्या समुद्वहनानि, (तृ० त०), "कटिः श्रोणिः" इत्यमरः। 'श्रोणि' शब्दसे "कृदिकारादक्तिनः" इस सूत्रसे ङीष् प्रत्यय हुआ है। पार्श्वेन निपीडितानि (तृ० त०), श्रोणिसमुद्वहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च तानि (द्वन्द्व०)। खेदस्तनान्तरसुखानि=स्तनयोरन्तरं (ष० त०), तस्मिन् सुखानि (स० त०)। खेदे (सति) स्तनान्तरसुखानि (स० त०)। वाद्याऽन्तरेषु=वाद्यस्य (वीणायाः) अन्तराणि, तेषु

और भी, हे घोषवति ! तू स्नेहसे रहित है, जो कि बेचारी वासवदत्ताके—

कटिमें धारण और बगलमें रखना, परिश्रम होनेपर स्तनोंके बीचमें सुखसे आलिङ्गन, वियोगमें मुझे उद्देश्य कर विलाप करना और वीणा बजानेके मध्यभागोंमें मुस्कुराहटसे युक्त वचन (इन विषयोंकी याद नहीं करती है।) ॥ २ ॥

विदूषकः—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं संन्तप्पिअ । [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम् ।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ३ ॥

नाऽवसरमध्येषु, उपगूहितानि = आलिङ्गनानि, च, न स्मरसि = न ध्यायसि, अत एव अस्निग्धाऽसि इति योज्यानि । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २ ॥

विदूषक इति । अतिमात्रम् = अत्यर्थं, संतप्य = सन्तापं कृत्वा, अलं = पर्याप्तं, भवान् विषण्णो मा भूदिति शेषः ।

अन्वयः—चिरप्रसुप्तो मे कामः वीणया प्रतिबोधितः, यस्या घोषवती प्रिया; तां देवीं तु न पश्यामि ॥ ३ ॥

चिरप्रसुप्त इति । चिरप्रसुप्तः = बहुकालं यावच्छयितः, मे = मम, कामः = अभिलाषः, वासवदत्ताविषयक इति शेषः । वीणया = घोषवतीनाम्न्या वल्लक्या, प्रतिबोधितः = उद्बोधितः । यस्याः = देव्याः, वासवदत्ताया इति भावः । घोषवती = इयं निकटस्था वीणा, प्रिया = अभीष्टाः, तां = तादृशीं, देवीं तु = वासवदत्तां तु, न पश्यामि = नो विलोकयामि । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३ ॥

(ष० त०), "अन्तरमवकाशाऽवधिपरिधानाऽन्तर्धिभेदतादर्थ्ये । छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च ।" इत्यमरः । सस्मितानि = स्मितेन सहितानि (तुल्ययोगबहु०) । स्मितका लक्षण है—"ईषद्विकासि नयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताऽधरम् ।" अर्थात् जिस हास्यमें नेत्र कुछ विकसित होता है और ओष्ठ कुछ हिलता है उसे "स्मित" कहते हैं ॥ २ ॥

विदूषकः—सन्तप्य = सं + तप + क्त्वा (ल्यप्) ।

चिरप्रसुप्त इति । चिरप्रसुप्तः = चिरं प्रसुप्तः (सुप्सुपा०) । प्रतिबोधितः = प्रति + बुध् + णिच् + क्तः ॥ ३ ॥

विदूषक—आप इस समय ज्यादा सन्ताप करके (अधिक खिन्न न हों) ।

राजा—मित्र ! ऐसा नहीं नहीं ।

बहुत समयसे सोये हुए मेरे अभिलाषको बीनने जगा दिया । जिसे घोषवती (वीणा) प्रिय थी, उन महारानी वासवदत्ताको नहीं देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः ।) [यद् भवानाज्ञापयति ।]

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टा । एसो खु महासेणस्स सआसादो रैब्भसगोत्तो कंचुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ताधत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा । [जयन्तु भर्ता । एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहार-मुपस्थितौ ।]

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम् ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसन्तकेति । शिल्पिजनसकाशात्=वैणिककारुसमीपात्, घोषवतीं=वासवदत्ता-वीणां, नवयोगां=नूतनतन्त्र्यादिसम्बन्धयुक्तां, कृत्वा= विधाय ।

प्रतीहारीति । जयतु =सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । महासेनस्य = उज्जयिनीपतेः । देव्या=राज्ञ्या, अङ्गारवत्या=महासेनपत्न्या, प्रतिहारं=द्वारम् ।

राजेति । तेन=कारणेन, तावत्=वाक्याऽलङ्कारे, आहूयताम्=आकार्यताम् ।

वसन्तकेति । शिल्पिजनसकाशात्=शिल्पं (क्रियाकौशलम्) यस्य स शिल्पी, शिल्प+इनिः । स चाऽसौ जनः (क० धा०), तस्य सकाशः, तस्मात् (ष० त०) । नवयोगां=नवः योगः (तन्त्र्यादिसम्बन्धः) यस्याः सा, ताम् (बहु०) ।

प्रतीहारी—वासवदत्ताधात्री वासवदत्ताया धात्री (ष० त०) ।

राजा—आहूयताम् =आङ्+ह्वेञ्+लोट् (कर्ममें)+त ।

वसन्तक ! कारीगरोंके पाससे घोषवतीको मरम्मत कराकर जल्दी ले आओ ।

विदूषक—आप जो आज्ञा करते हैं (करूँगा) । (बीनको लेकर निकलता है ।)

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—महाराजकी जय हो । महाराज महासेनके यहाँसे रैभ्यगोत्रमें उत्पन्न काञ्चुकीय और महारानी अङ्गारवतीसे भेजी गई आर्या वसुन्धरा नामवाली वासवदत्ताकी धाय भी द्वारमें उपस्थित (हाजिर) हैं ।

राजा—तब पद्मावतीको बुलाओ ।

प्रतीहारी—महाराजकी जो आज्ञा । (निकल जाती है)

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च ।)

प्रतिहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं ? महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे आदिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं । [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

राजेति । अयम्=एषः, अल्पकालसम्पन्न इति भावः, वृत्तान्तः=उदन्तः । पद्मावतीपरिणयस्वरूपः, राज्यपुनःप्राप्तिस्वरूपश्चेति भावः । विदितः किन्नु= ज्ञातः किम् ?

पद्मावतीति । ज्ञातिकुलस्य=वन्धुवंशस्य, कुशलवृत्तान्तं=क्षेमोदन्तम् ।

राजेति । अनुरूपं=योग्यं, स्वकुलसदृशमिति भावः । अभिहितम्=उक्तम् । आस्यताम्=उपविश्यताम् ।

पद्मावती—ज्ञातिकुलस्य=ज्ञातेः कुलं, तस्य, (ष० त०) । "सगोत्र-वान्धवज्ञातिवन्धुस्वस्वजनाः समाः ।" इत्यमरः । श्रोतुम्=श्रु+तुमुन् ।

राजा—महासेनने क्या यह वृत्तान्त (मेरा विवाह करना और राज्यको पाना) शीघ्र जान लिया ?

(तब पद्मावती और प्रतीहारी प्रवेश करती हैं ।)

प्रतीहारी—राजकुमारी पधारें पधारें ।

पद्मावती—आर्यपुत्रकी जय हो ।

राजा—पद्मावति ! तुमने क्या सुना ? महासेनके पाससे रैभ्यगोत्रवाले काञ्चुकीय और माननीया अङ्गारवतीसे भेजी गई आर्या वसुन्धरा नामवाली वासवदत्ताकी धाय भी द्वारमें उपस्थित हैं ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! ज्ञाति (वन्धु) वंशका कुशलवृत्तान्त सुनना मुझे प्रिय लगता है ।

राजा—तुमने यह उचित कहा कि वासवदत्ताके वन्धुजन मेरे स्वजन हैं । पद्मावति ! बैठो । अभी तुम क्यों नहीं बैठ रही हो ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एदं जणं पेक्खिस्सदि ? [आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यति ?]

राजा—कोऽत्र दोषः ?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि । [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति ।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति । तस्मादास्यताम् ।

पद्मावतीति । उपविष्टः=निषण्णः, भवानिति शेषः । जनं=काञ्चुकीयादिकमिति भावः । द्रक्ष्यति=विलोकयिष्यति, वासवदत्तायाः सपत्न्या मया सहोपविष्टं भवन्तं दृष्ट्वा वासवदत्तापरिजनो दुःखितो भविष्यतीति भावः ।

राजेति । अत्र=अस्मिन् विषये, त्वया सह ममोपवेशन इति भावः । कः, दोषः=दूषणम् ।

पद्मावतीति । अपरः=अन्यः, परिग्रहः=पत्नी, इति=कारणात्, जनः, उदासीनम्, इव=तादृशं यथा स्यात्तथा इव । भवति=वर्तते ।

राजेति । कलत्रदर्शनार्हं=पत्नीविलोकनयोग्यं, जनं=गृहस्थं, मामिति शेषः, कलत्रदर्शनात्=पत्नीविलोकनात्, परिहरति=वर्जयति, इति=इत्थं, बहुदोषम्=अधिकदूषणम्, उत्पादयति=जनयति । तस्मात्=कारणात् ।

पद्मावति—द्रक्ष्यति=दृश्+लृट्+तिप् । परिग्रहः="पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः ।" इत्यमरः ।

राजा—कलत्रदर्शनार्हं=कलत्रस्य दर्शनम् (ष० त०), "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः ।" इत्यमरः । कलत्रदर्शनम् अर्हतीति, तम् (उपपद०) । "अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेकमपि द्विजः ।" दक्षस्मृतिके इस वचनके अनुसार गृहस्थ पत्नीदर्शनके योग्य होता है यह राजाका अभिप्राय है ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मेरे साथ बैठकर क्या आप उन लोगोंको देखेंगे ?

राजा—इसमें क्या दोष है ?

पद्मावती—आर्यपुत्रकी दूसरी पत्नी है यह समझकर उन्हें उदासीनता होती है ।

राजा—पत्नीदर्शनके योग्य (गृहस्थ) जनको पत्नीको देखनेसे रोकना है यह बात बहुत दोषको पैदा करती है । इसलिए बैठो ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविश्य) अय्यउत्त ! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति। आर्यपुत्र ! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेव संवृत्ता।]

राजा—पद्मावति ! एवमेतत्।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।

पद्मावतीति। तातः=पिता, वासवदत्तापिता, महासेन इति भावः। वा=अथवा, अम्बा=माता, वासवदत्ताजननी, अङ्गारवतीति भावः। भणिष्यति=कथयिष्यति, इति=हेतुना, आविग्ना इव=भीता इव, संवृत्ता=सम्भूता।

राजेति। एतत्=इदं, त्वच्छङ्कनमित्यर्थः एवम्=इत्थं, योग्यमिति भावः।

अन्वयः—किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम्। मया कन्या अपहृता अपि। सा च न रक्षिता। चलैः भाग्यैः महद्वासगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्र इव भीतः अस्मि॥ ४॥

किमिति। किं वक्ष्यति=किं कथयिष्यति, तातो महासेनः, अम्बा अङ्गारवती, वा इति शेषः। इति=अस्मिन्विषये, मे=मम, उदयनस्य, हृदयं=चित्तं, परिशङ्कितं=परिशङ्कायुक्तं विद्यते। मया=उदयनेन, कन्या=कुमारी, अङ्गारवती-महासेनकन्या वासवदत्तेति भावः। अपहृता=अपहरणविषयीकृता, उज्जयिनीतः

पद्मावती—आविग्ना=ईषत् विग्ना, "कुगतिप्रादयः" इस सूत्रसे समास, आङ्—उपसर्गपूर्वक "ओविजी भयसंचलनयोः" इस धातुसे क्त प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् होकर "आविग्ना" पद बनता है। कुछ डरी हुई, या कुछ चञ्चल यह तात्पर्य है।

किमिति। वक्ष्यति=वच्+लृट्+तिप्। कन्या=नायिकाके तीन भेद होते हैं—स्वकीया, परकीया और साधारणी। उनमें परकीयाके दो भेद होते हैं—परोढा और कन्या। उज्जयिनीमें राजा उदयनसे वीन सीखनेवाली वासव-

---

पद्मावती—आर्यपुत्र जो आज्ञा करते हैं (करती हूँ।)। (बैठकर) आर्यपुत्र ! पिताजी वा माताजी क्या कहेंगी ऐसा विचार कर मैं डरी हुई सी हो गई हूँ।

राजा—पद्मावति ! यह ऐसा ही है।

पिताजी अथवा माताजी क्या कहेंगी ऐसा सोचकर मेरा हृदय शङ्कायुक्त है। मैंने उनकी

---

१. "अथ नायिका त्रिभेदा स्वाऽन्या साधारणी चेति।" सा० द० ३-५६।

भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥ ४ ॥

पद्मावती—ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले ? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ?]

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा । [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

परिणयं विनैव कौशाम्बीं प्रापितेति शेषः, अयमर्थः, कन्यापदेन ध्वन्यते । सा च= तादृशी वासवदत्ता च, न रक्षिता=न त्राता, लावाणकग्रामे अग्निदाहतो न रक्षितेति भावः । परकीया कन्याऽपहृता नो रक्षिता चेति अपराधद्वयं सञ्जातम् इति व्यज्यते । इत्थं च, चलैः=चञ्चलैः, भाग्यैः=भागधेयैः, जन्मान्तरकर्मपरिणामभूतैरिति भावः । महदवाप्तगुणोपघातः=मान्यजनप्राप्तगुणनाशः, एतादृशोऽहमिति शेषः । पितुः=तातस्य, जनितरोषः=उत्पादितकोपः, पुत्र इव=तनय इव भीतः=त्रस्तः, अस्मि=भवामि । उपमाऽलङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तम् ॥४॥

पद्मावतीति । प्राप्तकाले=आसादितसमये, उचिताऽवसर इति भावः । किं= वस्तु, रक्षितुं=त्रातुं, न शक्यं=शक्तिविषयभूतं न, परमुचिताऽवसराऽभावात्सा वासवदत्ता रक्षां न प्राप्तेति भावः । अत्र 'णं' नु इति पाठान्तरे प्राप्तकाले= आसादितमृत्यौ जने सति, किं रक्षितुं=त्रातुं, शक्यं=शक्तिविषयीभूतं, नु= इति वितर्के, मृत्यौ सन्निहिते सति कोऽपि रक्षितुं न शक्यः, इति भावः ।

दत्ता उस समय कन्यारूप परकीया थीं यह तात्पर्य है । महदवाप्तगुणोपघातः= गुणानाम् उपघातः (ष० त०) । अवाप्तो गुणोपघातो येन सः (बहु०) । महताम् अवाप्तगुणोपघातः (ष० त०) । जनितरोषः=जनितो रोषो येन सः (बहु ०) ॥ ४ ॥

पद्मावती—प्राप्तकाले=प्राप्तश्चाऽसौ काल: (क० धा०) ।

कन्याको छीन लिया पर उसकी रक्षा नहीं की । चञ्चल भाग्योंसे बड़ोंके गुणोंको नष्ट करनेवाला मैं पिताको क्रुद्ध करनेवाले पुत्रके समान डर गया हूँ ॥ ४ ॥

पद्मावती—उचित अवसरमें क्या नहीं बचाया जा सकता है ?

प्रतीहारी—ये काञ्चुकीय और धाय द्वारपर उपस्थित हैं ।

राजा—उन्हें शीघ्र प्रवेश कराओ ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता)। [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च।)

काञ्चुकीयः—

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः।
किं नाम दैव! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः॥ ५॥

अन्वयः—इदम् सम्बन्धिराज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः, पुनः नृपसुतानिधनं स्मृत्वा महान् विषादः (अस्ति) हे दैव! परैः अपहृतं राज्यं देव्याः कुशलं च स्यात् यदि? तर्हि भवता किं नाम न कृतम्?॥ ५॥

सम्बन्धिराज्यमिति। इदम्=एतत्, सम्बन्धिराज्यं = भर्तृजामातृराष्ट्रम्, एत्य=आगत्य, ममेति शेषः। मम=काञ्चुकीयस्य, महान्=अधिकः, हर्षः= प्रमदः, पुनः=भूयः, नृपसुतानिधनं=राजकुमारीमरणं, वासवदत्तामृत्युमिति भावः। स्मृत्वा=चिन्तयित्वा, महान्=प्रचुरः, विषादः=खेदः, मम अस्तीति शेषः। हे दैव!=हे विधे!, परैः=शत्रुभिः अपहृतं=स्वाधीनीकृतं, राज्यं=राष्ट्रं, तथैव देव्याः=वासवदत्तायाः, कुशलं च=क्षेमं च, स्यात् यदि=भवेच्चेत्? तर्हि भवता=त्वया, किं नाम=क्षेमं, न कृतं=नो विहितं स्यात् अस्मद्भर्तृजामात्रा परैरपहृतं राज्यं च पुनः प्राप्तम् एवमेव वासवदत्तायाः क्षेमं चाऽपि भवेच्चेत् अस्माकं सर्वमभीष्टं सम्पन्नं स्यादिति भावः॥ ५॥

सम्बन्धिराज्यमिति। सम्बन्धिराज्यं=सम्बन्धिनो राज्यं, तत् (ष० त०)। नृपसुतानिधनं=नृपस्य सुता (ष० त०), तस्या निधनं, तत् (ष० त०)। राज्यं=राज्ञो भावो राज्यम्, 'राजन्' शब्दसे "राजाऽसे" इस सूत्रसे यक् प्रत्यय, वसन्ततिलका छन्द है॥ ५॥

प्रतीहारी—महाराजकी जो आज्ञा। (निकलती है।)

(तब काञ्चुकीय, धाय और द्वारपालिका प्रवेश करती हैं।)

काञ्चुकीय—इस सम्बन्धी (उदयन) के राज्य में आकर बहुत हर्ष हो रहा है, फिर राजकुमारी (वासवदत्ता) के मरणकी याद कर बहुत खेद भी हो रहा है। हे दैव! शत्रुओं से छीने गये राज्यकी प्राप्तिके साथ यदि देवी वासवदत्ताका भी कुशल होता तो तुमने क्या किया नहीं होता?॥ ५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः।]
काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः।
धात्री—जेदु भट्टा। [जयतु भर्ता।]
राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयाऽस्तमयप्रभुः।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ? ॥ ६ ॥

राजेति। सबहुमानं=बहुमानसहितं यथा तथा।

अन्वयः—पृथिव्यां राजवंश्यानाम् उदयाऽस्तमयप्रभुः (एवं च) मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा कुशली अपि ? ॥ ६ ॥

पृथिव्यामिति। पृथिव्यां=भूलोके, राजवंश्यानां=राजवंशोत्पन्नानां क्षत्रियाणाम्, उदयाऽस्तमयप्रभुः=उत्कर्षाऽपकर्षसमर्थः, एवं च मया = उदयनेन सह, काङ्क्षितबान्धवः = अभीष्टबन्धुभावः, सः=लोकप्रसिद्धः, राजा=महाराजः, महासेन इति भावः। कुशली अपि=अनामयः किम् इति प्रश्नः। अनुष्टुप्छन्दः ॥६॥

प्रतिहारी—उपसर्पतु=उप+सृप्+लोट्+तिप्।

राजा—सबहुमानं=बहुश्चाऽसौ मानः (क० धा०)। बहुमानेन सहितं यथा तथा (तुल्ययोगबहु०) यह क्रियाविशेषण है।

पृथव्यामिति। राजवंश्यानां=राज्ञां वंश्याः, तेषाम् (ष० त०) उदयाऽस्तमयप्रभुः=उदयनम् उदयः, उद्-उपसर्गपूर्वक "इण् गतौ" धातुसे "एरच्" इस सूत्रसे अच् प्रत्यय। इसी तरहसे अस्तमयनम् अस्तमयः, अस्तम्+इण्+अच्। उदयश्च अस्तमयश्च उदयाऽस्तमयौ (द्वन्द्व), तयोः प्रभुः (स० त०)। काङ्क्षितबान्धवः=बन्धोर्भावो बान्धवम्, बन्धु+अण्। काङ्क्षितं बान्धवं येन सः (बहु०)। कुशली = कुशल+इनिः ॥ ६ ॥

प्रतीहारी—ये महाराज हैं, आर्य ! उनके पास जायें।
काञ्चुकीय—(निकट आकर) आर्यपुत्रकी जय हो ?
धाय—स्वामीकी जय हो।
राजा—(बहुत सम्मानके साथ) आर्य !

पृथ्वीमें राजकुलमें उत्पन्न क्षत्रियोंके उत्कर्ष और अपकर्ष करनेमें समर्थ और मुझसे बन्धुत्वकी इच्छा रखनेवाले वे राजा (उज्जयिनीपति) कुशल हैं ? ॥ ६ ॥

काञ्चुकीयः—अथ किम्? कुशली महासेनः। इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति।

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः। (उपविशति)

काञ्चुकीयः—दिष्टया परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति। कुतः—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते॥ ७॥

काञ्चुकीय इति। वैदेहीपुत्रस्य = विदेहराजकुमारीतनयस्य, सदृशं=योग्यम्, भवत एतादृशविनयप्रदर्शनं मातृकुलाऽनुरूपमेवेति भावः। आसनस्थेन एव= सिंहासनस्थेन एव।

अन्वयः—ये कातरा अपि वा अशक्ताः तेषु उत्साहो न जायते। हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते॥ ७॥

कातरा इति। ये = जनाः, कातराः=भीरवः, अपि वा = अथवा, अशक्ताः= असमर्थाः, तेषु = तादृशेषु, कातरेषु = अशक्तेषु वा, उत्साहः = अध्यवसायः, न

काञ्चुकीयः—सर्वंगतं=सर्वं गतं, तत् (द्वि० त०)।

राजा—आज्ञापयति = आङ्+ज्ञा+णिच्+लट्+तिप्।

काञ्चुकीयः—वैदेहीपुत्रस्य=वैदेह्याः पुत्रः तस्य (ष० त०)। आसनस्थेन= आसने तिष्ठतीति, तेन, आसन+स्था+कः। श्रोतव्यः=श्रु+तव्यत्। दिष्टया= "दिष्टया समुपजोषं त्वेत्यानन्दे" इत्यमरः। यह अव्यय है।

कातरा इति—कातराः = "अधीरे 'कातरस्त्रस्नौ भीरुभीरुकभीलुकाः।

काञ्चुकीय—और क्या? महासेन कुशली हैं। यहाँ भी सब लोगोंका कुशल पूछते हैं।

राजा—(आसनसे उठकर) महासेन क्या आज्ञा करते हैं?

काञ्चुकीय—वैदेही (मिथिलाकी राजकुमारी) के पुत्र आपका यह विनय प्रदर्शन उचित है। आसनमें बैठकर ही आपको महासेनका सन्देश सुनना चाहिए।

राजा—महासेन जो आज्ञा करते है (बैठते हैं।)

काञ्चुकीय—भाग्यसे शत्रुओंसे छीना गया राज्य फिर लौटा लिया। क्योंकि—

जो डरपोक और असमर्थ हैं, उनमें उत्साह नहीं होता है। क्योंकि अकसर उत्साही

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेन प्रभावः । कुतः—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तु नृपोऽत्र कि कारणम् ॥ ८ ॥

जायते = न उत्पद्यते । हि = यतः, प्रायेण = वहुधा, नरेन्द्रश्रीः = राजलक्ष्मीः, सोत्साहैः एव = उत्साहसम्पन्नैरेव जनैः, भुज्यते = उपभुज्यते । अनुष्टुप्छन्दः ॥ ७ ॥

राजेति । सर्वं = सकलम्, एतत् = इदं, नरेन्द्रश्रीभोजनं, महासेनस्य = उज्जयिनीपतेः, प्रभावः = सामर्थ्यम् ।

तदेव प्रतिपादयति—अहमिति ।

अन्वयः—पूर्वं तावत् अहम् अवजितः, सुतैः सह लालितः । मया कन्या दृढम् अपहृता, भूयो न रक्षिता च । तस्या निधनम् अपि श्रुत्वा, मयि तथा एव स्वता । ननु उचितान् वत्सान् प्राप्तुम् अत्र नृपः कारणं हि ॥ ८ ॥

अहमिति । पूर्वं = पुरा, गजाखेटकप्रसङ्गे इति भावः । तावत् = वाक्यालङ्कारे, अहम् = उदयनः, अवजितः = पराजितः, तथाऽपि सुतैः सह = आत्मपुत्रैः सम, लालितः = वात्सल्यविषयीकृतः । एवं च मया = उदयनेन, कन्या = राजकुमारी, वासवदत्तेति भावः । दृढं = दृढतापूर्वकम्, अपहृता = अपहरणेन स्वराष्ट्रमानीता,

---

इत्यमरः । उत्साहः = "उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्" इत्यमरः । जायते = जनी + लट् + त ।

राजा—सर्वम् एतत् = यहाँपर पूर्वश्लोकस्थ नरेन्द्रश्रीभोजनरूप अर्थको लक्ष्य कर नपुंसकलिङ्गमें प्रयोग किया गया है ।

अहमिति । कन्या = "कन्या त्वजातोपमया सलज्जा नवयौवना ।" (सा० द० ६–६७) जिसका विवाह नहीं हुआ है वह लज्जावती और, नवीन यौवनवाली हो तो उसे कन्या नामकी परकीया नायिका कहते हैं । स्वता = स्वस्य

पुरुष ही राज्यलक्ष्मीका उपभोग करते हैं ॥ ७ ॥

राजा—आर्य ! यह सब महासेनका प्रभाव है । क्योंकि—

महासेनने पहले मुझे जीतकर अपने पुत्रोंके साथ पालन किया । मैंने उनकी कन्या-(वासवदत्ता) को दृढतासे हरण किया पर उन्हें नहीं बचा सका । उन (वासवदत्ता) की मृत्युका वृत्तान्त सुनकर भी मुझमें उनकी पहलेकी समान आत्मीयता है । मेरे पहलेके उपयुक्त वत्सराज्य पानेमें भी राजा (महासेन) ही कारण हैं ॥ ८ ॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः। देव्याः सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति।

राजा—हा! अम्ब!

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता।
मम प्रवासदुःखार्ता मार्ता कुशलिनी ननु? ॥ ९ ॥

परं भूयः = पुनः, न रक्षिता च = लावाणकग्रामेऽग्निदाहे, न त्राता च। हन्त! तस्याः = वासवदत्तायाः निधनम् अपि=मरणम् अपि, श्रुत्वा = आकर्ण्य, मयि= उदयने विषये, तथा एव=तादृशी एव, पौर्वकालिकी एवेति भावः, स्वता=आत्मीयता। ननु = आमन्त्रणे, हे आर्य! उचितान्=पूर्वोपभुक्तान्, वत्सान् = वत्सदेशान्, प्राप्तुं=भूयः आसादयितुम्, अधिकर्तुमिति भावः। अत्र=विषये, वत्सराज्यस्वायत्तीकरण इति भावः। नृपः = महाराजः, महासेन इति भावः। कारणं = हेतुः, हि = निश्चयेन तस्यैव शुभाशंसया वीर्याऽतिशयेन च ममाऽयमभ्युदय इति भावः ॥ ८ ॥

काञ्चुकीय इति। देव्याः = महाराज्ञाः, अङ्गारवत्या इति भावः। अत्रभवता = माननीया वासवदत्ता धात्री वसुन्धरेति भावः।

राजेति। अम्ब = मातः!

अन्वयः—षोडशाऽन्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु? ॥ ९ ॥

षोडशेति। षोडशाऽन्तःपुरज्येष्ठा=षोडशशुद्धान्तःस्थराज्ञीश्रेष्ठा, पुण्या=पवित्र-

---

भावः, स्व+तल्+टाप्। हरिणी छन्द है—"रसयुगहयैन्सौ म्रौ स्लौगौ यदा हरिणी तदा।" यह उसका लक्षण है ॥ ८ ॥

काञ्चुकीयः—कथयिष्यति="कथ वाक्यप्रबन्धे" धातुसे णिच्+लृट्+तिप्।

राजा—अम्ब = "अम्बा माता" इत्यमरः। नाटकमें माताको 'अम्बा' कहते हैं। 'अम्बा' शब्दसे सम्बुद्धिमें "अम्बाऽर्थनद्योर्ह्रस्वः" इससे ह्रस्व होता है।

षोडशेत्यादि। षोडशान्तःपुरज्येष्ठा = षोडशसु अन्तःपुरेषु ज्येष्ठा (उत्तर-

---

काञ्चुकीय—यह महासेनका सन्देश है। महारानी (अङ्गारवती) का सन्देश यहाँ माननीया (वसुन्धरा) कहेंगी।

राजा—हा मातः!

अन्तःपुरकी सोलह महारानियोंमें बड़ी, पवित्र और नगरकी देवताके समान और मेरे

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि । [अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ।

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं । [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः । उपरताऽप्यनुपरता ! 'महासेनपुत्री एवमनुक्रम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

चरित्रा, नगरदेवता=पुरदेवीस्वरूपा, एवं च मम=जामातुः, प्रवासदुःखार्ता=देशान्तरवासकष्टपीडिता, माता=जननीस्थानीया, श्वश्रूरङ्गारवतीति भावः । कुशलिनी ननु=अनामया किम् ? अनुष्टुप्छन्दः ॥ ९ ॥

धात्री इति । अरोगा=आरोग्यसम्पन्ना ।

राजेति । ईदृशम्=एतादृशं, वासवदत्तावर्जम् इति भावः ।

धात्री इति । सन्तप्तुं=सन्तापं कर्तुं, मा=न, प्रत्यतिष्ठेति शेषः ।

काञ्चुकीय इति । धारयतु=अवलम्वतां, स्वमिति शेषः । आर्यपुत्रेण=पत्या ।

पद०) । अन्तःपुरशब्दका अन्तःपुरस्थ राज्ञियोंमें लक्षण होता है । नगरदेवता=नगरस्य देवता (ष० त०) । प्रवासदुःखार्ता=प्रवासस्य दुःखं (ष० त०), तेन आर्ता (तृ० त०) । कुशलिनी=कुशल+इनि+ङीप् । यहाँ पर "ब्राह्मणं कुशलं पृच्छोक्षत्रवन्धुमनामयम् ।" इस मनुस्मृतिकी उक्तिके अनुसार 'कुशल' पदका अनामय अर्थ करना चाहिए ॥ ९ ॥

धात्री—अरोगा=अविद्यमानो रोगो यस्याः सा (नञ्वहु०), यहाँपर कुशलिनीका लक्ष्याऽर्थ अनामयाके अनुसार उत्तर दिया गया है ।

राजा—ईदृशम्=एतादृशम्, ऐसा अर्थात् वासवदत्तासे रहित यह तात्पर्य है ।

धात्री—अतिमात्रं=मात्राम् अतिक्रान्तं यथा तथा, "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इससे समास हुआ है । यह सन्तापक्रियाका विशेषण है ।

काञ्चुकीयः—उपरता=उप+रम्+क्त+टाप् । अनुकम्प्यमाना=अनु-

परदेशके वासके दुःखसे पीडित माताजी कुशल तो हैं ? ॥ ९ ॥

धाय—महारानी नीरोग हैं और सबके साथ आपका कुशल पूछती हैं ।

राजा—सबका कुशल पूछती हैं ? माताजी ! ऐसा ही कुशल है ।

धाय—स्वामी ज्यादा सन्ताप करनेके योग्य नहीं हैं ।

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र अपनेको संभालें । इस प्रकार आर्यपुत्रसे कृपा की जानेवाली

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

एवम्=इत्थम्, अनुकम्प्यमाना = अनुगृह्यमाणा ।

अन्वयः—कः कमिति । मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः ? रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? एवं लोको वनानां तुल्यधर्मः, काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

कः कमिति । मृत्युकाले=मरणसमये, कः = जनः, कं=जनं, रक्षितुं = त्रातुं, शक्तः = समर्थः । रज्जुच्छेदे=रश्मिभङ्गे सति, के=जनाः, घटं=कलशं, धारयन्ति =दधति, कूपपतनाद् घटं त्रायन्त इति भावः । मरणसमये प्राप्ते जनं त्रातुं न केऽपि प्रभवन्तीति द्रार्ष्टान्तिकयोजना । एवम्=इत्थमेव, लोकः = जनः, वनानां= वृक्षाणां, वनस्थानमिति शेषः । तुल्यधर्मः = समानस्वभावः, तमेव धर्मं निदर्शयति—काले काल इति । काले काले=समये-समये, छिद्यते = कृत्यते, रुह्यते= स्वयमेव उत्पद्यते च । यथा समये समये वने जनैर्वृक्षेषु छिन्नेस्वपि ते पश्चादुत्पद्यन्ते तथैव कालवशतो जनेषु मृतेष्वपि प्रारब्धवशतो भूयो जन्म प्राप्नुवन्ति अत्र विषये शोको व्यर्थ इति तात्पर्यम् । शालिनी छन्दः ॥ १० ॥

कम्प्यत इति, अनु+कपि+लट् (कर्म मे) (शानच्)+टाप् ।

कः कमिति । मृत्युकाले = मृत्योः कालः तस्मिन् (ष० त०) । शक्तः = शक्+क्तः । रज्जुच्छेदे = रज्जोश्छेदः, तस्मिन् (ष० त०) । तुल्यधर्मः=तुल्यो धर्मो यस्य सः (बहु०) । यहाँपर "धर्मादनिच् केवलात्" इस सूत्रसे समासान्त अनिच् प्रत्यय अपेक्षित था, परन्तु समासाऽन्तविधिकी अनित्यतासे नहीं हुआ यह समझना चाहिए । छिद्यते रुह्यते = यहाँपर दोनों जगह कर्मकर्तृवाच्य प्रयोग है । जैसे समय-समयमें वनमें पेड़ोंके काटे जानेपर भी वे फिर उगते हैं उसी तरह कालवश मरनेपर भी मनुष्य प्रारब्धवश फिर उत्पन्न होते हैं यह तात्पर्य है ।।१०।।

महासेनपुत्री (वासवदत्ता) मरकर भी जीती हैं ।

अथवा—

मरणके समयमें कौन किसे बचा सकता है ? रस्सीके टूटने पर कौन पेड़को धारण करते हैं (गिरनेसे बचा सकते हैं) ? । इसी तरह मनुष्य वृक्षोंके समान धर्मवाला है । जो कि (वृक्ष) समय-समयमें काटा जाता है और उत्पन्न भी हो जाता है ॥ १० ॥

राजा—आर्य मा मैवम्,

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥ ११ ॥

धात्री—आह भट्टिणी—उदरदा वासवदत्ता। मम वो महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पुढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति। एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो। अणग्गिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा। अत्तणो

राजेति। एवम्=इत्थम्, मा मा=मा वादीर्मा वादीरिति भावः।

अन्वयः—महासेनस्य दुहिता मे शिष्या प्रिया देवी च सा मया देहान्तरेष्वपि कथं स्मर्तुं शक्या न? ॥ ११ ॥

महासेनस्येति। महासेनस्य=प्रद्योतस्य, दुहिता=पुत्री, एवं च मे=मम, उदयनस्येत्यर्थः, प्रिया=अभीष्टा, शिष्या=छात्री, वीणावादन इति भावः। देवी=महाराज्ञी च, सा=वासवदत्ता, मया=पत्या, उदयनेनेति भावः। देहान्तरेषु अपि=शरीरान्तरेषु अपि, जन्मान्तरेषु अपीति भावः। कथं=केन प्रकारेण, स्मर्तुं=स्मरणं कर्तुं, शक्या न?=पार्या नेति काकुः—

"अन्यजन्मनि या विद्या ह्यन्यजन्मनि यद्धनम्।
अन्यजन्मनि या नारी ह्यग्रे धावति धावति॥"

इति स्मरणादिति भावः। ॥ ११ ॥

धात्री इति। भट्टिनी=स्वामिनी। गोपालकपालकौ=तन्नामधेयौ पुत्रौ, तादृश एव=तत्सदृश एव, प्रीत्याश्रय इति भावः। प्रथमं=प्राक्, अभिप्रेतः=

महासेनस्येति। शिष्या=शास्+क्यप्+टाप्। देहान्तरेषु=अन्ये देहा देहान्तराणि, तेषु, "मयूरव्यंसकादयश्च" इससे समास हुआ है।

धात्री—एतन्निमित्तम्=एतस्य निमित्तं यथा तथा (ष० त०)। अनग्नि-साक्षिकम्=अग्निः साक्षी यस्मिन् (कर्मणि) तद् यथा तथा (बहु०)। यह

राजा—आर्य! ऐसा मत कहिए, मत कहिए,

महासेनकी पुत्री और मेरी प्रिय शिष्या उन (वासवदत्ता) को मैं और शरीरोंमें भी कैसे भूल सकता हूँ? ॥ ११ ॥

धाय—महारानी कहती हैं—वासवदत्ता तो मर गई। मेरे और महासेनके लिए जैसे गोपाल और पालक हैं वैसे ही पहले ही सोचे गये आप दामाद हैं। इसीलिए आप उज्जयिनीमें लाये गये। आपको अग्निके साक्ष्यके विना ही वीन सिखानेके बहानेसे कन्या

चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो। अहअ अह्मेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा। एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि। [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता। मन वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति। एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।]

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या।

अभिप्रायविषयीभूतः, जामाता = दुहितृपतिः। एतन्निमितं = जामातृत्वसम्पादनार्थम्, उज्जयिनीं = विशालापुरीम्, आनीतः = प्रापितः। अनग्निसाक्षिकम् = अग्निसाक्ष्यरहितं यथा तथा, वीणाव्यपदेशेन = वल्लकीवादनशिक्षणव्याजेनेति भावः। दत्ता = समर्पिता, तुभ्यं दुहिता वासवदत्तेति शेषः। आत्मनः = स्वस्य, चपलतया = चञ्चलत्वेन, अधीरत्वेनेति भावः। अनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव = अनिष्पन्नपरिणयोत्सव एव। चित्रफलकायाम् = आलेख्यपीठिकायां, प्रतिकृतिं = मूर्तिम्। निर्वृत्तः = निष्पन्नः। एतां = चित्रफलकाम्। निर्वृतः = सुखी।

राजेति। अतिस्निग्धम् = अतिशयस्नेहसंपन्नम्, अनुरूपं च = उचितं च। अतिस्निग्धाऽनुरूपाऽभिधानं प्रतिपादयति—वाक्यमिति।

दानक्रियाका विशेषण है। वीणाव्यपदेशेन=वीणायाः व्यपदेशः, तेन (ष० त०)। अनिर्वृत्तविवाहमङ्गलः=न निर्वृत्तम् अनिर्वृत्तम् (नञ्०)। विवाहस्य मङ्गलम् (ष० त०)। अनिर्वृत्तं विवाहमङ्गलं यस्य सः (बहु०)। चित्रफलकायां = चित्रस्य फलकां, तस्याम् (ष० त०)। फलकके लिए 'फलका' स्त्रीप्रत्ययाऽन्त प्रयोग व्याकरणविरुद्ध होनेसे च्युतसंस्कृति दोषसे युक्त है।

दी गई। अपनी अधीरतासे आप विवाह संस्कारके विना ही चले गये। तब हम दोनोंने आपकी और वासवदत्ताकी मूर्तिको चित्रफलकमें लिखाकर विवाह संस्कार सम्पन्न किया। यह चित्रफलक आपके पास भेजा गया है। इसे देखकर आप दिलबहलाव करें।

राजा—पूजनीया महारानीने अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण और उचित वचन कहा है।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥ १२ ॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि । [आर्यपुत्र ! चित्रगतगुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । (चित्रफलकां दर्शयति ।) [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं ! अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए । (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? [हम् ! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?]

अन्वयः—एतत् वाक्यं राज्यलाभशतात् अपि प्रियतरम् । यत् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहो न विस्मृतः ॥ १२ ॥

वाक्यमिति । एतत्=इदं, पूर्वाऽभिहितमिति भावः । वाक्यं=पदसमूहः, राज्यलाभशतात् अपि=प्रभूतराष्ट्रप्राप्तेः अपि, प्रियतरम्=अत्यभीष्टम् । यत् अपराद्धेषु अपि=कृताऽपराधेषु अपि, विहितकन्याऽपहरणादिष्वपीति भावः । अस्मासु=मयि विषये । स्नेहः=वात्सल्यं, विस्मृतः न=विस्मृतिं प्रापितो न । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

पद्मावतीति । चित्रगतम् = आलेख्यस्थितं, गुरुजनं = पूज्यजनं, वासवदत्ता-

---

वाक्यमिति । राज्यलाभशतात्=राज्यस्य लाभः (ष० त०) तस्य शतं, (ष० त०), तस्मात् । "पञ्चमी विभक्ते" इससे पञ्चमी । प्रियतरम्=अतिशयेन प्रियम् "प्रिय" शब्दसे "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इस सूत्रसे तरप् प्रत्यय । अपराद्धेषु=अप्+राध्+क्तः ॥ १२ ॥

पद्मावती—अभिवादयितुम्=अभि+वद+णिच्+तुमुन् ।

यह वाक्य सैकड़ों राज्योंकी प्राप्तिसे भी अधिक प्रिय है । जो कि अपराध करनेवाले मेरे ऊपर भी वात्सल्य नहीं भुलाया ॥ १२ ॥

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्रमें गुरुजन (वासवदत्ता) का दर्शन कर प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धाय—राजकुमारी देखें देखें । (चित्रपट दिखलाती है ।)

पद्मावती—(देखकर मन ही मन) ओह ! ये आर्या आवन्तिके अधिक सादृश्य-वाली है । (प्रकटमें) आर्या यह (वासवदत्ता) आर्या (आवन्तिका) की समान

राजा—न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ?
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृति दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति ।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसीत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति ।)

मिति भावः । अभिवादयितुं=वन्दितुम् । अतिसदृशी=अतिशयसमाना ।

अन्वयः—अस्य=स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् ? इदं मुखमाधुर्यम् अग्निना कथं दूषितम् ? ॥ १३ ॥

अस्येति । अस्य=निकटस्थस्य, स्निग्धस्य=स्नेहपूर्णस्य, वर्णस्य=रूपस्य, दारुणा=कठोरा, विपत्तिः=विनाशः, कथं=केन प्रकारेण, जातेति शेषः । एवं च इदं=निकटस्थं, मुखमाधुर्यं=वदनसौन्दर्यम्, अग्निना=अनलेन, कथं=केन प्रकारेण, दूषितं=विकारं प्रापितम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १३ ॥

पद्मावतीति । प्रतिकृतिं=चित्रं, तुल्यरूपमिति भावः । सदृशी=तुल्यरूपा ।

अस्येति । स्निग्धस्य=स्निह + क्तः । विपत्तिः=वि + पद् + क्तिन् । मुखमाधुर्यं =मुखस्य माधुर्यम् (ष० त०) ।

पद्मावती—जानामि=ज्ञा + लट् + मिप् ।

(रूपवाली) हैं ।

राजा—समान नहीं । वही (वासवदत्ता ही) है । ऐसा मानता हूँ । हाय ! कष्ट है । ऐसे सुन्दर रूपकी कैसे कठोर विपत्ति हुई ? ऐसे मुखके सौन्दर्यको कैसे अग्निने दूषित किया ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—आर्यपुत्रकी चित्र देखकर ये (वासवदत्ता) आर्या (आवन्तिका) की समान हैं कि नहीं यह समझूँगी ।

धाय—राजकुमारी देखें देखें ।

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्रके चित्रकी आकृति मिलान होनेसे ये (वासवदत्ता) भी आर्या (आवन्तिका) की समान हैं ऐसा समझती हूँ ।

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि । [आर्यपुत्र । अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम् । [आम् ।]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि बह्मणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदंसणं परिहरदि । ता अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो । [आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः ।]

राजेति । चित्रदर्शनात्=आलेख्यविलोकनात्, प्रभृति=आरभ्य, प्रहृष्टोद्विग्नां=प्रसन्नां चञ्चलां च ।

पद्मावतीति । शदृशी=तुल्यरूपा, आम्=एवम् ।

राजेति । तेन=कारणेन, आनीयता=प्राप्यताम् ।

पद्मावतीति । कन्याभावे=कुमारीत्वे उद्वाहात्पूर्वकाल इति भावः । केनाऽपि=

राजा—चित्रदर्शनात्=चित्रस्य दर्शनं, तस्मात् (ष० त०), "प्रभृति"-के योगमें पञ्चमी । प्रहृष्टोद्विग्नां=प्रहृष्टा चाऽसौ उद्विग्ना (क० धा०), ताम् । आनीयताम्=आङ्+नी+लोट् (कर्ममें)+त ।

पद्मावती—प्रोषितभर्तृकां=प्रोषितः भर्ता यस्या सः (बहु०), "नद्यृतश्च"

राजा—महारानी ! चित्र देखनेके बाद तुम्हें प्रसन्न और चञ्चल-सी देख रहा हूँ । यह क्या है ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस (वासवदत्ताके) चित्रकी समान आकृतिवाली एक स्त्री यहीं रहती है ।

राजा—क्या वासवदत्ताकी समान ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो शीघ्र लाओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! मेरे विवाहसे पहले किसी ब्राह्मणने "मेरी बहन" कहकर

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति ।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रवासिना । भगिनिका = दयापात्रभूता स्वसा । न्यासः = निक्षेपः । निक्षिप्तः = स्थापितः । प्रोषितभर्तृका = प्रवासोषितस्वामिका, सा ब्राह्मणभगिनिकेति भावः । परपुरुषदर्शनम् = अन्यनरविलोकनं, परिहरति = परित्यजति । आर्याम् = आवन्तिकाम् । जानातु = वेत्तु ।

अन्वयः—विप्रस्य भगिनी यदि (तर्हि) व्यक्तम् अन्या भविष्यति । लोके परस्परगता रूपतुल्यता दृश्यते ।

यदीति । विप्रस्य = ब्राह्मणस्य, भगिनी = स्वसा, यदि = चेत्, तर्हीति शेषः । व्यक्तं = स्पष्टं यथा स्यात्तथा, अन्या = अपरा, वासवदत्ताया भिन्नेति शेषः । भविष्यति = वर्तिष्यते । पूर्वोक्तं समर्थयते—परस्परगतेति । लोके = संसारे, परस्परगता = मिथःस्थिता, रूपतुल्यता = आकारसादृश्यं, दृश्यते = अवलोक्यते । आकारसादृश्येन सैवेयमिति न संभाव्यत इति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १४ ॥

इस सूत्रसे समासान्त कप् प्रत्यय । परपुरुषदर्शनं = परश्चाऽसौ पुरुषः (क० धा०), तस्य दर्शनं, तत् (ष० त०) ।

यदीति । व्यक्तं = वि + अञ्ज + क्तः । परस्परगता = परस्परं गता (द्वि० त०) । रूपतुल्यता = तुल्यस्य भावस्तुल्यता (तुल्य + तल् + टाप्) । रूपस्य तुल्यता (ष० त०) ॥ १४ ॥

किसी स्त्रीको न्यास (धरोहर) के रूपमें रखा था । उनके पति प्रवासमें हैं इस कारणसे वे परपुरुषको नहीं देखती हैं । इस कारणसे मेरे साथ आई हुई उन आर्याको आर्यपुत्र देखकर पहचानिए ।

राजा—

ब्राह्मणकी बहन है तो जरूर दूसरी ही होगी । क्योंकि संसारमें परस्परमें रूपकी समानता देखी जाती है ॥ १४ ॥

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा ।' 'एसो उज्जइणीओ वह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो । [जयतु भर्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः ।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

पद्मावती—होदव्वं । [भवितव्यम् ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

प्रतीहारीति । एषः=समीपतरवर्ती, प्रतीहारस्थ इति भावः । उज्जयिनीयः= उज्जयिनीवास्तव्यः, भट्टिन्याः=स्वामिन्याः, पद्मावत्या इति भावः । प्रतिग्रहीतुं= पुनरादातुं, प्रतीहारं=द्वारम् ।

राजेति । सः=पूर्वोक्तः ।

पद्मावतीति । भवितव्यं=भाव्यं, तेनैव ब्राह्मणेनेति शेषः ।

राजेति । अभ्यन्तरसमुदाचारेण=राजभवनसदाचारेण, पाद्यार्घ्यादिसमर्पण-रूपेणेति भावः ।

प्रतीहारी—उज्जयिनीयः=उज्जयिन्यां भवः, "तत्र भवः" इस सूत्रसे छ (ईय) प्रत्यय । भट्टिन्याः="देवी कृताऽभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी ।" अमरसिंहकी इस उक्तिके अनुसार अभिषेकयुक्त रानीको "देवी" (महारानी) और उनसे भिन्नको "भट्टिनी" कहना चाहिए। परन्तु नाटकोंमें प्रायः इस बातका विचार न कर सभीके लिए "भट्टिनी" शब्दका प्रयोग देखा जाता है ।

पद्मावती—भवितव्यम्=भू+तव्यत् (भाववाच्यमें), यहाँ "तेन" इसका अध्याहार करना चाहिए ।

राजा—अभ्यन्तरसमुदाचारेण=अभ्यन्तरे समुदाचारः, तेन (स० त०) । प्रवेश्यतां=प्र+विश्+णिच्+लोट् (कर्ममें) ।

द्वारपालिका—स्वामीकी जय हो । ये उज्जयिनीके ब्राह्मण "महारानीके पास मेरी बहनको धरोहरके रूपमें रक्खा था" ऐसा कहकर उन्हें लेनेके लिए दरवाजेके पास उपस्थित हैं ।

राजा—पद्मावति ! क्या वही ब्राह्मण हैं ।

पद्मावती—होना चाहिए ।

राजा—भीतरके आचारके अनुसार उन ब्राह्मणको प्रविष्ट कराओ ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]
राजा—पद्मावति ! त्वमपि तामानय ।
पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]
(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)
यौगन्धरायणः—भोः । (आत्मगतम्)

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ १५ ॥

राजेति । ताम् = आगन्तिकाम् ।

यौगन्धरायण इति । आत्मगतं=स्वगतम् ।

अन्वयः—नृपतेः हिताऽर्थं राजमहिषीं प्रच्छाद्य मया हितम् इति अवेक्ष्य इदं काम कृतम् । मम कर्मणि सिद्धे अपि असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितं नाम ॥ १५ ॥

प्रच्छाद्येति । नृपतेः = राज्ञः, उदयनस्येति भावः । हिताऽर्थं=कल्याणार्थं, राजमहिषीं = महाराज्ञीं, वासवदत्तामिति भावः । प्रच्छाद्य=संगोप्य, वासवदत्ता-लावाणके वह्निदाहेन दग्धेति प्रचार्य पद्मावतीसमीपे न्यासरूपेणेति शेषः । मया= यौगन्धरायणेन, हितं=कल्याणकरं, पद्मावतीपरिणयेन शत्रुहृतराज्यप्रत्याहरण-

---

राजा—आनय=आङ्+नी+लोट्+सिप् ।

यौगन्धरायणः—आत्मगतम्=आत्मानं गतं यथा तथा (द्वि० त०), यह क्रियाविशेषण है ।

प्रच्छाद्येति—नृपतेः=नृणां पतिः, तस्य (ष० त०) समास होनेसे "पतिः; समास एव" इस सूत्रसे घि संज्ञा होनेसे गुण होकर पूर्वरूप हुआ है । हिताऽर्थं=

द्वारपालिका—स्वामी जैसी आज्ञा करते हैं । (निकल जाती है ।)
राजा—पद्मावति ! तुम भी उन्हें ले आओ ।
पद्मावती—आर्यपुत्र जैसी आज्ञा करते हैं ।
(तब यौगन्धरायण और द्वारपालिका प्रवेश करते हैं ।)
यौगन्धरायण—ओह ! (मन ही मन)
राजाके हितके लिए महारानी (वासवदत्ता) को छिपाकर मैंने राजाका कल्याण होगा

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु।

राजा—श्रुतपूर्वं इव स्वरः। भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका।

रूपमिति भावः। इति=इत्थम्, अवेक्ष्य=विचार्य, इदम्=एतत्, पद्मावतीसविधे वासवदत्ताया न्यासरूपेण स्थापनं राज्ञः पद्मावतीपरिणयश्चेति कार्यद्वयमिति भावः। कामं=स्वैरं यथा तथा, कृतं=विहितम्। इत्थं च मम=यौगन्धरायणस्य, कर्मणि=कार्ये, सिद्धेऽपि=सफलीभूतेऽपि, असौ=परोक्षस्थः, पार्थिवः=राजा, उदयन इति भावः। किं वक्ष्यति=किं कथयिष्यति, इति=इत्थं, विचार्येति शेषः। मे=मम कामचारिणो मन्त्रिण इति भावः। हृदयं=चित्तं, परिशङ्कितं=परितः शङ्कायुक्तं, वर्तते इति शेषः, नाम=प्राकाश्ये। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ९५ ॥

यौगन्धरायण इति। उपसृत्य=उपगम्य।

राजेति। श्रुतपूर्व=पूर्वं श्रुतः, स्वरः=शब्दः। स्वसा=भगिनी। निक्षिप्ता=

हिताय इदं यथा तथा (च० त० क्रि० वि०)। राजमहिषी=राज्ञो महिषी, ताम् (ष० त०)। प्रच्छाद्य=प्र+छद्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्)। अवेक्ष्य=अव+ईक्ष+क्त्वा (ल्यप्)। पार्थिवः=पृथिव्या ईश्वरः, पृथिवी+अञ् "राशिराट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः।" इत्यमरः। वक्ष्यति=वच्+लृट्+तिप्।

प्रतीहारी—उपसर्पतु=उप+सृप्+लोट्+तिप्।

राजा—श्रुतपूर्वः=पूर्वं श्रुतः, "सह सुपा" इससे समास हुआ है। 'त्वर्यतां=

ऐसा विचार कर यह कार्य अपनी इच्छासे किया। अब मेरा कार्य सिद्ध (सफल) हो गया है तो भी "राजा क्या कहेंगे" ऐसा सोचकर मेरा हृदय शङ्कित हो रहा है ॥ ९५ ॥

द्वारपालिका—ये महाराज हैं। आर्य उनके पास जायँ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) आपकी जय हो ! जय हो !

राजा—यह स्वर तो पहले सुना हुआ-सा लग रहा है। हे ब्राह्मण ! क्या आपकी बहनको पद्मावतीके पास धरोहरके तौरपर रक्खा गया है ?

यौगन्धरायण—और क्या ?

राजा—तब इनकी बहनको लानेके लिए शीघ्रता करो।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च।)

पद्मावती—एदु एदु अय्या। पिअं दे णिवेदेमि। [एत्वेत्वार्या। प्रियं ते निवेदयामि।]

आवन्तिका—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—भादा दे आअदो। [भ्राता ते आगतः।]

आवन्तिका—दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि। [दिष्टयेदानीमपि स्मरति।]

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो। एसो ण्णासो। [जयत्वार्यपुत्रः। एष न्यासः।]

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः। इहात्रभवान् रैभ्यः अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः।

निहिता। त्वर्यतां=त्वरा कार्यताम्।

पद्मावतीति। प्रियम्=अभीष्टम्। निवेदयामि।

राजेति। निर्यातय=न्यासमर्पय। साक्षिमत्=साक्षाद् द्रष्टृयुक्तं यथा तथा। निर्यातयितव्यः=प्रत्यर्पणीयः। अधिकरणम्=आधारः, द्रष्टृत्वाऽऽधारः;

त्वरा + णिच् + लोट् (कर्ममें) + त।

आवन्तिका—स्मरति=स्मृ + लट् + तिप्।

राजा—निर्यातय=निर् + यत् + णिच् + लोट् + सिप्। "निर्यातनं वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च।" इत्यमरः। साक्षिमत्=साक्षी यस्मिन् अस्ति तत् यथा तथा, साक्षिन् + मतुप्, यह क्रियाविशेषण है। निर्यातयितव्यः=निर् + यत् +

द्वारपालिका—स्वामी जैसी आज्ञा करते हैं (निकल जाती है।)

(तब पद्मावती, आवन्तिका और द्वारपालिका प्रवेश करती हैं।)

पद्मावती—आर्या आ जायँ आ जायँ। आपको प्रियवचन कहती हूँ।

आवन्तिका—क्या ? क्या ?

पद्मावती—आपके भाई आये हैं।

आवन्तिका—भाग्यसे अभी भी याद कर रहे हैं।

पद्मावती—(पास जाकर) आर्यपुत्रकी जय हो। यह न्यास (धरोहर) है।

राजा—पद्मावति ! लौटा दो। साक्षी (गवाह) के सामने धरोहर लौटाना चाहिए। यहाँ माननीय रैभ्य और माननीया वसुन्धरा देवी साक्षी (चश्मदीद गवाह) होंगे।

पद्मावती—अय्य ! णीअदाँ दाणिं अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानीमार्या ।]

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ? [अम्भो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ?]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥ १६ ॥

साक्षीति भावः ।

पद्मावतीति । नीयतां=प्राप्यतां, स्वगृहमिति शेषः ।

धात्री । निर्वर्ण्य=दृष्ट्वा ।

यौगन्धरायण इति । प्रवेष्टव्यं=प्रवेश्यम् ।

अन्वयः—भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवान् शुचिः राजधर्मस्य देशिकः, (त्वम् असि), तत् बलात् हर्तुं न अर्हसि परकीयन्यासमिति शेषः ॥ १६ ॥

भारतानामिति । भारतानां=भरतवंशोत्पन्नानां राज्ञां, पाण्डवादीनामिति

णिच् + तव्यत् ।

धात्री—निर्वर्ण्य=निर् + वर्ण + णिच् क्त्वा (ल्यप्), "निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम् ।" इत्यमरः ।

यौगन्धरायणः—प्रवेष्टव्यं=प्र + विश् + तव्यत् ।

भारतानामिति । भारतानां=भरतानामपत्यानि पुमांसो भारताः, तेषाम्

पद्मावती—आर्य ! अब आर्याको ले जाइए ।

धाय—(आवन्तिकाको देखकर) अरे ! राजकुमारी वासवदत्ता !

राजा—कैसे महासेनकी पुत्री ? महारानी ! तुम पद्मावतीके साथ भीतर (अन्तःपुरमें) जाओ ।

यौगन्धरायण—नहीं, अन्तःपुरमें प्रवेश नहीं करना चाहिए । यह मेरी बहन है ।

राजा—आप क्या कहते हैं ? ये महासेनकी पुत्री हैं ।

यौगन्धरायण—हे राजन् !

आप भरतवंशी राजाओंके कुलमें उत्पन्न नम्र, ज्ञानी, पवित्र तथा राजधर्मके आचार्य

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् । संक्षिप्यतां जवनिका ।

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

भावः । कुले=वंशे, जातः=उत्पन्नः विनीतः=नम्रः, ज्ञानवान्=शिक्षितः, शुचिः=पवित्रः, आचारसम्पन्न इति भावः, एवं च राजधर्मस्य=नृपाचारस्य, देशिकः=आचार्यः, प्रवर्तक इति भावः । तादृशस्त्वमसीति शेषः । तत्=तस्मात्कारणात्, बलात्=बलमाश्रित्य, हर्तुं=ग्रहीतुं, परकीयन्यासमिति शेषः । न अर्हसि=न योग्यो भवसि । परिकराऽलङ्कारः, अनुष्टुब् वृत्तम् ।। १६ ।।

राजेति । भवतु=अस्तु । रूपसादृश्यम्=आकृतिसाम्यम् । पश्यामः=विलोकयामः, सर्वे वयमिति शेषः । जवनिका=प्रतीसीरा, अवगुण्ठनवस्त्रमिति भावः । संक्षिप्यतां=निवार्यताम् ।

'भरत' शब्दसे "ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय । विनीतः=वि+नी+क्तः । ज्ञानवान्=ज्ञान+मतुप् । राजधर्मस्य=राज्ञो धर्मः, तस्य (ष० त०) । देशिकः="गुरौ देश्ये च देशिकः ।" इति कोशः । बलात्=बलमाश्रित्य "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इससे कर्ममें पञ्चमी । हर्तुं=हृञ्+तुमुन् । स्वर्गीय अनन्तरामशास्त्रीने 'उदयन भरतवंशमें उत्पन्न हैं यह बात विष्णुपुराणसे ज्ञात है' ऐसा लिखा है । विशेषणोंके साभिप्राय होनेसे परिकर अलङ्कार है । "उक्तैर्विशेषणैः साऽभिप्रायः परिकरो मतः (सा० द० १०–५७)" यह लक्षण है ।

राजा—रूपसादृश्यं=रूपस्य सादृश्यं, तत् (ष० त०) । जवनिका=यद्यपि "प्रतीहारी जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा ।" इस अमरकोशके अनुसार जवनिकाका अर्थ परदा है, परन्तु यहाँपर मुखका पर्दा "घूंघटके" के अर्थमें प्रयुक्त है ।

यौगन्धरायणः—स्वामि=स्वम् (धनम्) अस्याऽस्तीति, "स्वामिन्नैश्वर्ये" इस सूत्रसे आमिनच्प्रत्यय हुआ है ।

भी हैं इसलिए मेरी बहनको जबर्दस्ती हरण करना उचित नहीं है ।। १६ ।।

राजा—अच्छा, रूपकी समानता को देख लें । घूँघट हटाओ ।

यौगन्धरायण—स्वामीकी जय हो ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्रकी जय हो ।

राजा—अरे ! ये यौगन्धरायण हैं और ये महासेनकी पुत्री हैं ।

किन्नु सत्यमिदं, स्वप्नः ? सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥ १७ ॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तद् क्षन्तुमर्हति स्वामी । (इति पादयोः पतति ।)

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥ १८ ॥

अन्वयः—इदं किं सत्यं, स्वप्नो नु ? सा मया भूयो दृश्यते । अहं तदा अपि एवम् एव दृष्टया अनया वञ्चितः ॥ १७ ॥

किन्नु सत्यमिति । इदम्=एतत्, निकटस्थं, वासवदत्तादर्शनमिति भावः, सत्यं =तथ्यं, स्वप्नः=स्वापः, नु=वितर्के । सा=पुरा, समुद्रगृहे दृष्टा, वासवदत्तेति भावः, मया=उदयनेन, भूयः=पुनरपि, दृश्यते=अवलोक्यते । अहम्=उदयनः, तदा=तस्मिन् समये, समुद्रगृहे अपि, एवम् एव=इत्थम् एव, दृष्टया=अवलोकितया, अनया=वासवदत्तया, वञ्चितः=प्रतारितः, अन्तर्द्धानेनेति शेषः । अतः किञ्चिन्निश्चेतुं न शक्यत इति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

यौगन्धरायण इति । देव्यपनयेन=गोप्यरूपेणाऽन्यत्र प्रापणेन, कृतापराधः= अपराद्धः ।

अन्वयः—मज्जमाना वयं मिथ्योन्मादैः युद्धैः शास्त्रदृष्टैः मन्त्रितैश्च भवद्यत्नैः समुद्धृताः खलु ॥ १८ ॥

मिथ्योन्मादैरिति । मज्जमानाः=मज्जन्तः, विपत्समुद्रे इति शेषः, वयम्=

किन्नु सत्यमिति । स्वप्नः=स्वप्+नन् । तदा=तद्+दा ।

यौगन्धरायणः—देव्यपनयेन=देव्या अपनयः (ष० त०), तेन हेतुमें तृतीया। कृताऽपराधः=कृतः अपराधो येन सः (बहु०) । क्षन्तुम्=क्षम्+तुमुन् ।

मिथ्योन्मादैरिति । मिथ्योन्मादैः=मिथ्याकल्पिता उन्मादाः तैः (मध्यम-

---

यह सत्य है या स्वप्न है ? उस (वासवदत्ता) को फिर भी देख रहा हूँ । उस समय देखी गई इनसे मैं इसी तरह ठगा गया था ॥ १७ ॥

यौगन्धरायण—स्वामिन ! महारानीको छिपाकर मैंने अपराध (कसूर) किया है । इसलिए स्वामीको मुझे क्षमा करना चाहिए । (ऐसा कहकर पैरोंपर गिरते हैं ।)

राजा—(उठाकर) आप यौगन्धरायण हैं ।

विपत्तिरूप समुद्रमें डूबे हुए हमलोग मिथ्या कल्पित उन्मादों (पागलपनों) से,

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सोसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

उदयनादयः, मिथ्योन्मादैः=मृषाकल्पितैश्चित्तविभ्रमैः, युद्धैः=संग्रामैः, शास्त्रदृष्टैः=राजनयज्ञातैः, मन्त्रितैश्च=गुप्तविचारैश्च, एतादृशैः भवद्यत्नैः=भवत्प्रयासैः, समुद्धृताः=बहिर्निष्कासिताः, खलु=निश्चयेन । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

यौगन्धरायण इति । स्वामिभाग्यानां=राजदैवानाम् अनुगन्तारः=अनुगामुकाः ।

पद्मावतीति । आर्या=पूज्या । अजानन्त्या=ज्ञानरहितया, मयेति शेषः । सखीजनसमुदाचारेण=वयस्याव्यवहारेण, समुदाचारः=शिष्टाचारः, अतिक्रान्तः=

पदलोपी समास), "उन्मादश्चित्तविभ्रमः ।" इत्यमरः । शास्त्रदृष्टैः=शास्त्रेषु दृष्टानि तैः (स० त०) । मन्त्रितैः=मन्त्रणानि मन्त्रितानि, "मन्त्रिगुप्तपरिभाषणे" धातुसे "नपुंसके भावे क्तः" इस सूत्रसे क्त प्रत्यय । भवद्यत्नैः=भवतो यत्नाः, तैः (ष० त०) । सर्वत्र हेतुमें तृतीया है । मज्जमानाः=मज्जन्तीति मज्जन्तः, "टुमस्जो शुद्धौ" धातु परस्मैपदी है, यहाँपर आत्मनेपदमें प्रयोग च्युतसंस्कृतिदोष युक्त है । समुद्धृताः=सम्+उद्+धृञ् क्तः ।

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानां=स्वामिनो भाग्यानि, तेषाम् (ष० त०) । "अनुगन्तारः" पदके योगमें कर्ममें षष्ठी । अनुगन्तारः=अनु+गम्+तृच् ।

पद्मावती—अजानन्त्या=न जानन्ती, तया, नञ्+ज्ञा+लट्+शतृ+ङीप्+टा । सखीजनसमुदाचारेण=सखी चाऽसौ जनः (क० धा०), तस्य समुदाचारः, तेन (ष० त०) । अतिक्रान्तः=अति+क्रम्+क्तः । शीर्षेण=करणमें तृतीया, "उत्तमाऽङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम् ।" इत्यमरः ।

युद्धोंसे, शास्त्रोंमें जानेगये गुप्त विचारोंसे इस प्रकारके आपके प्रयत्नोंसे उतारे गये हैं ॥ १८ ॥

यौगन्धरायण—हमलोग महाराजके भाग्योंका अनुगमन करनेवाले हैं ।

पद्मावती—अहो ! ये तो आर्या (वासवदत्ता) हैं । अरे ! न जानती हुई मैंने सखीके सदृश व्यवहार करनेसे सदाचारका उल्लङ्घन किया है । इस कारण शिरसे प्रणाम कर मानती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ! उट्ठेहि। अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ। [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ। अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति।]

पद्मावती—अणुग्गहिदह्मि। [अनुगृहीताऽस्मि।]

राजा—वयस्य ! यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति।

उल्लङ्घितः। शीर्षेण=शिरसा, प्रसादयामि=अनुनयामि।

वासवदत्तेति। अविधवे=हे सौभाग्यवति। अर्थिस्वं=याचकधनं, शरीरं=देहः, यौगन्धरायणन्यासधनरूपशरीरमिति भावः। अपराध्यति=अपराधं करोति।

पद्मावतीति। अनुगृहीता=कृताऽनुग्रहा।

राजेति। वशस्य=मित्र !, देव्यपनये=वासवदत्तादूरीकरणे, ते=तव, का=कीदृशी।

यौगन्धरायण इति। कौशाम्बीमात्रं=वत्सराजधानीम् एव। परिपालयामि=परिरक्षामि। राजधानीं विनाऽन्यराज्यप्रदेशाः शत्रुभिरपहृताः, वासवदत्ताया अभावे कौशम्ब्या सममन्यप्रदेशानामपि पुनरधिकारार्थमित्थमाचरितमिति भावः।

प्रसादयामि=प्र+सद्+णिच्+लट्+मिप्।

वासवदत्ता—उत्थाप्य=उद्+स्था+णिच्+क्त्वा (ल्यप्)। अविधवे=विगतो धवो यस्याः सा विधवा (बहु०)। "धवः धियः पतिर्भर्ता" इति "विश्वस्ताविधवे समे" इत्युभयत्राऽप्यमरः। अर्थिस्वम्=अर्थिनः स्वम् (ष० त०)।

राजा—देव्यपनये=देव्या अपनयः, तस्मिन् (ष० त०)।

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं=कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी, 'कुशाम्ब' शब्दसे "तेन निर्वृत्तम्" इससे अण् होकर स्त्रीत्व विवक्षामें ङीप्। कौशाम्बी एव

वासवदत्ता—(पद्मावतीको उठाकर) उठो, उठो, सौभाग्यवति ! उठो। याचक (यौगन्धरायण) का धनरूप (मेरा) शरीर ही अपराधका हेतु है।

पद्मावती—मैं आपसे अनुगृहीत हूँ।

राजा—मित्र ! यौगन्धरायण ! देवी (वासवदत्ता) को मेरे पाससे हटानेमें तुम्हारी कैसी बुद्धि थी ?

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बीकी रक्षा कर सकूँ जिससे पीछे अपहृत अन्य राज्य प्रदेशको भी ले सकूँ।)

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासस्य कारणम् ?

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ?

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्ततामत्र-

---

राजेति । अथ = वासवदत्ताऽपनयाऽनन्तरं, न्यासकारणं = निक्षेपहेतुः ।

यौगन्धरायण इति । पुष्पकभद्रादिभिः = पुष्पकभद्रप्रभृतिभिः, आदेशिकैः = दैवज्ञैः । स्वामिनः = प्रभोः, देवी = महाराज्ञी, आदिष्टा = सूचिता, पद्मावतीति शेषः । ततः पद्मावतीभ्रातुः सहायेन द्विषदपहृतराज्यप्रत्याहरणार्थमेष उपायोऽवलम्बित इति भावः ।

राजेति । इदमपि = एतदपि, कारणमिति शेषः ।

यौगन्धरायण इति । सर्वैरेव = सकलैरेव मन्त्रिभिः, न केवलं रुमण्वतेति भावः । ज्ञातं = विदितम् ।

राजेति । शठः = वञ्चकः ।

यौगन्धरायण इति । देव्याः = वासवदत्तायाः, कुशलनिवेदनाऽर्थं = जीवना-

---

कौशाम्बीमात्रं, तत् "मयूरव्यंसकादयश्च" इस सूत्रसे समास । आदेशिकैः = आदेशेन चरन्तीति आदेशिकाः, तैः, "चरति" इस सूत्रसे ठक् (इकः) । कुशल-निवेदनाऽर्थं = कुशलस्य निवेदनम् (ष० त०) । "भावुकं भविकं भव्य कुशलं

राजा—फिर पद्मावतीके हाथमें धरोहर रखनेका क्या कारण है ?

यौगन्धरायण—पुष्पक भद्र आदि ज्यौतिषियोंने "पद्मावती महाराजकी रानी होंगी" ऐसी भविष्यवाणी की थी (पद्मावतीके भाई मगधराजकी सहायतासे नष्ट राज्यकी पुनः प्राप्तिकी कामनाका मूल कारण यही है) ।

राजा—यह भी रुमण्वान्‌ने जाना था ?

यौगन्धरायण—प्रभो ! सब लोगोंने जान लिया था ।

राजा—अहो ! रुमण्वान् वञ्चक है ।

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! महारानी (वासवदत्ता) का कुशल निवेदन करनेके लिए